भारतीय ज्योतिष में बालरोग एवं बालारिष्ट

विषयानुक्रमणिका

प्रथम अध्याय

भारतीय ज्योतिष में बालरोग परिज्ञान के सिद्धान्त

1. भारतीय ज्योतिष का सामान्य परिचय

मनुष्य का भविष्य, विधाता की भाँति उसके लिए अज्ञेय एवं ज्ञातव्य रहा है। इस समस्या के समाधान के लिए उसने अपनी दृष्टि नीले अनन्त अन्तरिक्ष की ओर उठाई और सतत साधना के अनन्तर वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि हजारों लाखों मील दूर भ्रमण कर रहे, ग्रह-उपग्रह उसके जीवन को प्रभावित करते हैं। ग्रहों-उपग्रहों की गति के सन्दर्भ में मानव जीवन का अध्ययन करना ही ज्योतिष शास्त्र है। ज्योतिष का सिद्धान्त है कि मनुष्य का जन्मक्षण उसके सम्पूर्ण जीवन का नियामक होता है।

ज्योतिष-शास्त्र एक विज्ञान है - इस विषय में कोई मतवैभिन्य नहीं है, क्योंकि ज्योतिष का आधार गणित है। ज्योतिष शास्त्र की सबसे प्रमुख विशेषता है - प्रत्यक्षता। इस शास्त्र में प्रत्यक्षता का अर्थ है - ''गणितागत परिणाम का ज्यों का त्यों दिखलाई पड़ना।'' उदाहरणार्थ एक व्यक्ति की कुण्डली की गणना कर यह बतलाया जाए कि यह सुशिक्षित सम्पन्न एवं प्रतिष्ठित व्यक्ति बनेगा या इस व्यक्ति के जीवनक्रम में इस समय में इस प्रकार की कठिनाई आयेगी, जीवन के किस आयुकाल में वह रोगग्रस्त होगा? कब तक रोग रहेगा - इस प्रकार गणितीय परिणामों का यथावत् घटित होना प्रत्यक्षता कहलाती है जो भारतीय ज्योतिष की सबसे बड़ी विशेषता है।

ज्योतिष शास्त्र की व्युत्पत्ति

''ज्योतिषांसूर्यादिग्रहाणांबोधकं शास्त्रम्'' इस पंक्ति से स्पष्ट होता है, कि सूर्यादिग्रहों और काल की जानकारी कराने वाले शास्त्र को ज्योतिष कहते हैं, इसमें मुख्यतः ग्रह नक्षत्र आदि ज्योतिः पदार्थों का स्वरूप, सञ्चरण, परिभ्रमणकाल, ग्रहण

और स्थिति प्रभृति समस्त घटनाओं का निरूपण एवं ग्रहों-नक्षत्रों की गति एवं स्थिति के अनुसार शुभाशुभ फल का कथन किया जाता है।

भारतीय वैदिक इतिहास में सूर्य चन्द्रमा आदि को देव रूप में माना गया है। इसी कारण वेदों में अनेक जगह पर नक्षत्र सूर्य एवं चन्द्रमा के स्तुतिपरक मन्त्र आए हैं। निश्चित ही प्राचीन वैदिक इतिहास में भारतीयों ने इनके रहस्यों से प्रभावित होकर ही इन्हें देव रूप में माना होगा। ब्राह्मण और आरण्यक काल में यह परिभाषा और विकसित हुई तथा उस काल में नक्षत्रों की आकृति, स्वरूप गुण एवं प्रभाव का परिज्ञान होने से इस शास्त्र की उपयोगिता का आभास हुआ। नक्षत्रों के शुभाशुभ फलानुसार कार्यो का विवेचन तथा ऋतु, अयन, मास, पक्ष, दिनमान लग्नादि के शुभाशुभफलानुसार कार्यों को करने का ज्ञान प्राप्त करना भी इस शास्त्र की परिभाषा में परिणत हो गया है। यह परिभाषा ज्ञानोन्नति के साथ-साथ विकसित हुई। राशि एवं ग्रहों के स्वरूप, रंग, दिशा, तत्त्व, धातु इत्यादि के विवेचन भी इसके अन्तर्गत आ गए।

आदिकाल के अन्त में ज्योतिष के गणित, सिद्धान्त और फलित ये तीन भेद स्वतन्त्र रूप से प्रस्फुटित हो गए थे। पूर्वमध्यकाल की अन्तिम शताब्दियों में सिद्धान्त ज्योतिष के स्वरूप में भी विकास हुआ तथा इस काल में ज्योतिष का अर्थ स्कन्धत्रय होरा, सिद्धान्त और संहिता के रूप में ग्रहण किया गया। परन्तु इसी समय होरा शास्त्र का विकास हुआ तथा यह पञ्चरूपात्मक हो गया। यथा -

---
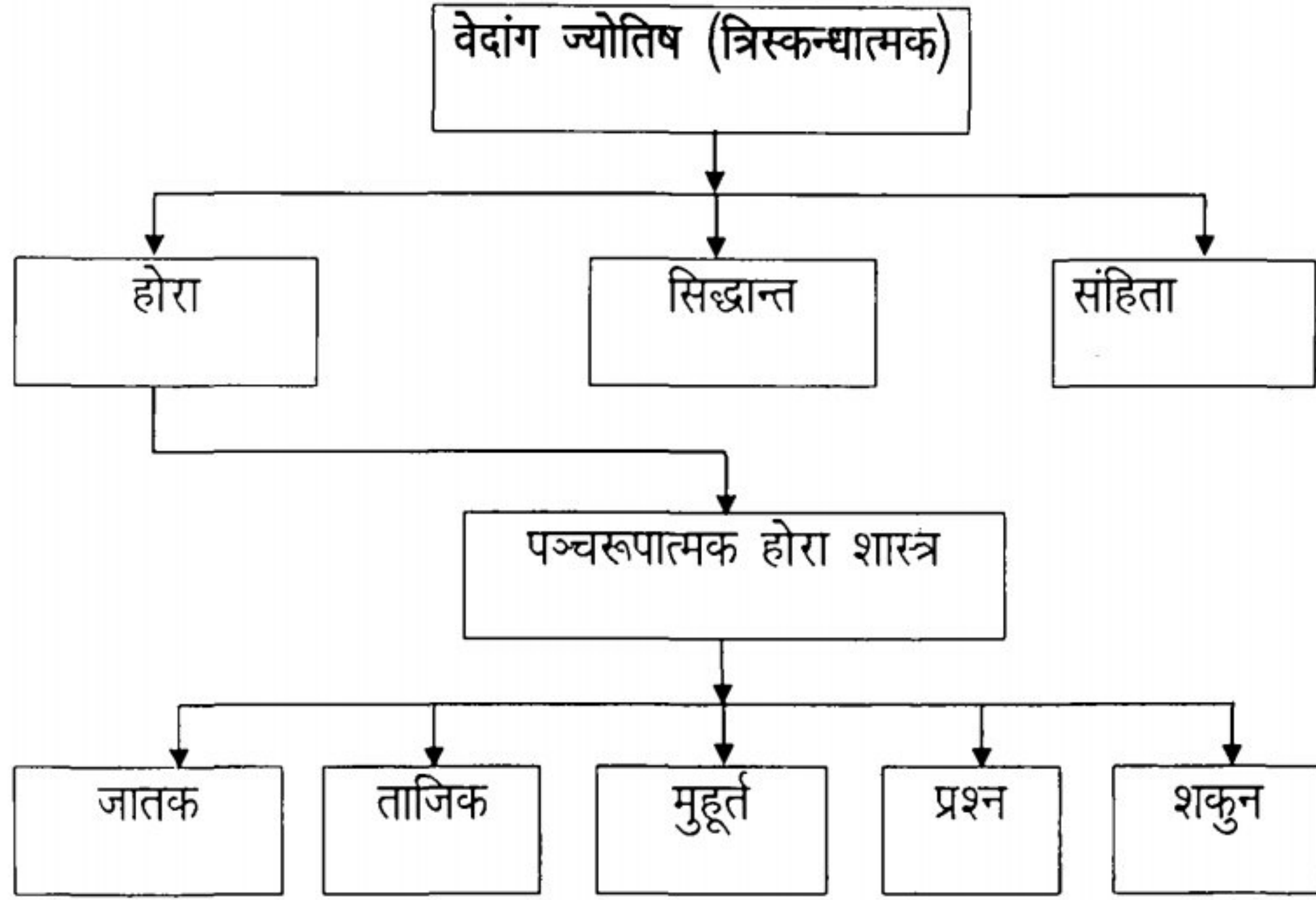
ज्योतिष शास्त्र भारतीय वैदिक साहित्य का महत्त्वपूर्ण अंग है। इसलिए इसे वेदांग कहते हैं। वेदांगों में इसे चक्षु कहा गया है। ज्योतिष शास्त्र की विशेषताओं का यदि व्यवस्थित रूप से पृथक-पृथक विचार एवं विवेचन किया जाए तो यह शोध का महत्त्वपूर्ण विषय हो सकता है।[1]

वस्तुतः यह शास्त्र कर्मवाद, पुनर्जन्मवाद, सत्कार्यवाद, कारणकार्यवाद जैसे दार्शनिक सिद्धान्तों की पृष्ठभूमि पर गणित, वेध एवं सर्वेक्षण जैसी वैज्ञानिक प्रविधियों द्वारा जीव एवं ब्रह्माण्ड के घटनाचक्र का विवेचन करता है। इसलिए इस शास्त्र का मानव जीवन में सर्वाधिक महत्त्व है। मनुष्य स्वभाव से ही अन्वेषक प्राणी है। वह सृष्टि की प्रत्येक वस्तु के साथ अपने जीवन का तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है। उसकी इसी प्रवृत्ति ने ज्योतिष के साथ जीवन का सम्बन्ध स्थापित करने के लिए बाध्य किया है। फलतः वह अपने जीवन के भीतर ज्योतिष तत्त्वों का प्रत्यक्ष

---

1 पाणिनीय **शिक्षा** - **श्लोक** 41-42

दर्शन करना चाहता है। इसी कारण वह शास्त्रीय एवं व्यवहारिक ज्ञान द्वारा प्राप्त अनुभव को ज्योतिष की कसौटी पर कसकर देखना चाहता है कि ज्योतिष का जीवन में क्या स्थान है?

समस्त भारतीय ज्ञान की पृष्ठभूमि दर्शनशास्त्र है, यही कारण है कि भारत अन्य प्रकार के ज्ञान को दार्शनिक मापदण्ड द्वारा मापता है। इसी अटल सिद्धान्त के अनुसार वह ज्योतिष को भी इसी दृष्टिकोण से देखता है। वैदिक दर्शनों में ''यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे का सिद्धान्त सुदूर प्राचीनकाल से प्रचलित है। यह सिद्धान्त बतलाता है कि सौर-जगत् में सूर्य चन्द्र आदि ग्रहों की विभिन्न गतिविधियों या क्रियाकलापों में जो नियम काम करते है ठीक वे ही नियम प्राणीमात्र के शरीर में स्थित सौर-जगत् की इकाई का संचालन करते हैं।

इस सिद्धान्त को अच्छी तरह जानने एवं पहचानने के लिए हमें प्राणी और पदार्थ की आन्तरिक संरचना के आधार पर ध्यान देना चाहिए। प्रत्येक प्राणी एवं पदार्थ की सूक्ष्म तथा प्राथमिक संरचना का आधार परमाणु हैं। यह परमाणु देखने में अतिसूक्ष्म किन्तु सौर - जगत् के समान आकार-प्रकार वाला होता है। इसके मध्य में एक घन विद्युत बिन्दु होता है, जिसे केन्द्र कहते हैं। इसका ब्यास एक इंच के दस लाखवें भाग का भी दस लाखवाँ भाग होता है। परमाणु के जीवन का सारतत्त्व इसी केन्द्र में रहता है। इस केन्द्र के चारों ओर अनेक सूक्ष्मातिसूक्ष्म विद्युतकण चक्कर लगाते रहते हैं और इस प्रक्रिया में वे सौर-जगत् के प्रत्येक क्रिया-क्लाप का अनुकरण करते हैं। इस प्रकार के अनन्त परमाणुओं के समाहार में पंचमहाभूत, पंचमहाभूतों के माध्यम से कोशिकाएं और इन कोशिकाओं के द्वारा हमारा शरीर बनता है। अथवा यों

कहे कि इन परमाणुओं की ईटों को जोड़कर पदार्थ का विशाल भवन निष्पन्न होता है और यह परमाणु और जगत् के समान आकार-प्रकार वाला है।

तात्पर्य यह है कि वास्तविक सौर-जगत् में सूर्य चन्द्र आदि ग्रहों के भ्रमण करने में जो नियम कार्य करते है वे ही नियम प्राणिमात्र के शरीर में स्थित सौर-जगत के ग्रहों के भ्रमण करने में भी कार्य करते हैं। हमारे शरीर की कोशिकाएँ "बन्धुतानियम" के अनुसार दलबद्ध होकर शरीर के उतक और उनके द्वारा अंग संस्थान का निर्माण करती है। उनके परस्पर मिलने से हमारा भौतिक-शरीर बनता है। इस प्रकार हमारा शरीर एवं शरीर के अवयव उन कोशिकाओं से बने है। अनायास ही यह समझ में आ जाता है कि इन कोशिकाओं द्वारा निर्मित हमारा शरीर भी सौर-जगत् की गतिविधियों का अनुसरण करता है।

प्रथम दृष्टि में सम्भवतः यह विश्वास करना हमारे लिए कठिन हो सकता है कि हमारे और ग्रह-नक्षत्रों के बीच कोई सीधा सतत् सम्पर्क एवम् आदान-प्रदान है। हमें यह बात दृष्टि से ओझल नहीं होने देनी चाहिए कि विद्युत एवं ब्रह्माण्ड की रश्मियों द्वारा हमारा सौर-जगत् में स्थित ग्रह-नक्षत्र के पिण्डों से सीधा एवं सतत सम्पर्क होता है। यह रसायनिक बनावट निरन्तर परिवर्तित होती हुई हम पर निरन्तर प्रभाव डालती है। यह बात निर्विवाद रूप से सत्य है कि ब्रह्माण्ड एवम् उसके वासियों के बीच सतत् एवं सहज सम्बन्ध मानने का पूरा श्रेय भारतीय महर्षियों को जाता है, जिन्होंने इस सम्बन्ध को स्वीकार कर बाल-रोग के मान्य सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया।

ग्रहों का मानव जीवन पर प्रभाव

सौर-जगत् में स्थित ग्रह नक्षत्रों के पिण्डों के साथ हमारा सतत् सम्बन्ध उनकी गति, स्थिति एवं रसायनिक परिवर्तनों के अनुरूप हमें प्रभावित करता रहता है। इस प्रसंग में जलवायु के परिवर्तन को साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। यह जलवायु का परिवर्तन सूर्य एवं सौर परिवारीय ग्रहों की राशि विशेष में गति अथवा सूर्य की स्थिति हमसे निकट अथवा दूर होने से होता है।[1] ग्रीष्मऋतु में वृष या मिथुन राशि में स्थित सूर्य की किरणों में प्रचण्डता और हेमन्त ऋतु में वृश्चिक या धनु राशि में स्थित सूर्य की किरणों में मृदुता का हेतु पृथ्वी तथा सूर्य का आसन्नत्व तथा दूरत्वभाव है।[2] तात्पर्य यह है कि ग्रीष्म ऋतु में सूर्य हमारे निकट होता है तथा हेमन्त ऋतु में दूर। जब सूर्य हमारे पास होता है तो तब हम उसकी किरणों में प्रचण्डता और जब यह हमसे दूर होता है तो हम स्वाभाविक रूप से उसकी किरणों में मृदुता का अनुभव करते हैं। सूर्य की तेज किरणों से वाष्पीकरण होने के कारण वर्षा तथा उसकी मात्रा भी पूर्णरूपेण सूर्य पर आधारित रहती है। फलतः जलवायु में जो परिवर्तन होता है और इस का मानव जीवन पर जो प्रभाव पड़ता है, वह प्रकारान्तर से सौर-परिवार या ग्रहों का ही प्रभाव माना जाएगा।

मनुष्य की आकृति और उसकी मनोवृत्तियों का यदि कोई ऐसा कारक है, जो उसे कर्मशील आलसी सबल निर्बल प्रखर अथवा मन्द बनाता है तो वह जलवायु है। मनुष्य की शारीरिक एवं बौद्धिक क्षमताओं का उतार-चढ़ाव जलवायु के परिवर्तन के

---

1 ज्योतिष तत्त्वप्रकाश, अध्याय-प्रथम श्लोक-32

2 सूर्य सिन्द्धान्त - भूगोलाध्याय श्लोक-46

साथ-साथ होता है। शरद् काल में मनुष्य की शारीरिक एवं बौद्धिक क्षमता बढ़ जाती है, जबकि ग्रीष्म काल में यह क्षमता न्यूनतम बिन्दु पर आ जाती है। कारण यह है कि जब वायु का दबाव धीरे-धीरे बढ़ता है तो मानव की शारीरिक एवं बौद्धिक क्रियाशीलता बढ़ जाती है और जब वायु का दबाव अपने निम्न-बिन्दु पर होता है, तो उसकी क्रियाशीलता भी न्यून हो जाती है। वस्तुतः शरीर एवं मस्तिष्क की कोशिकाएँ जो स्पंज की तरह छिद्रपूर्ण होती है वे दबाव के घटने से शरीर के पानी को चूस लेती है और फूल जाती है। इस चूसने और फूलने की प्रक्रिया से मनुष्य की क्रियाशीलता एवं कार्यकुशलता में उतार-चढ़ाव आ जाता है। इसीलिए ग्रीष्म ऋतु में वायु का दबाव कम हो जाने से हमारी शारीरिक एवं बौद्धिक क्रियाशीलता घट जाती है। जबकि हेमन्त ऋतु में वायु का दबाव बढ़ने पर हमारे शरीर की कोशिकाऐं न तो पानी चूसती हैं और न ही फूलती है प्रत्युत् वे स्वतन्त्र एवं सहज रूप से अपना विहित कार्य करती है। फलतः हेमन्त ऋतु में वायु का दबाव बढ़ने से हमारी शारीरिक एवं बौद्धिक क्रियाशीलता उन्नत रहती है।

आज के वैज्ञानिक, मनुष्य एवं अन्य प्राणियों पर ग्रहों के प्रभाव में आस्था रखें या न रखें, किन्तु वे इस बात से आश्चर्यान्वित हुए बिना नहीं रहते कि समुद्र की समतलता में वायु मण्डल के दबाव में, ऋतुओं के परिवर्तन में और भूकम्प आदि की आवृत्तियों में जो घटना-चक्र दिखलाई देता है, उसका सूर्य एवं चन्द्रमा आदि ग्रहों की गतिविधियों से सीधा सम्बन्ध हैं। पूर्णिमा एवं अमावस्या को समुद्र में ज्वार-भाटे से लहरें बहुत ऊँची हो जाती है, तथा वायुमण्डल में अन्य अवसरों की अपेक्षा अधिक संक्षोभ होता है या भूकम्प के झटके लगते हैं। आखिरकार ऐसा क्यों होता है? जब

आकाश में सूर्य एवं चन्द्रमा पास-पास होते हैं - जैसा कि अमावस्या को अथवा जब वे एक-दूसरे से विपरीत दिशा में या आमने-सामने होते है - जैसा कि पूर्णिमा[1] के समय में उस समय वे अपने आकर्षण-विकर्षण द्वारा समुद्र की समतलता में वायु मण्डलीय दबाव में और पृथ्वी के सन्तुलन में एक विलक्षण संक्षोभ पैदा कर देते हैं, जिसके फलस्वरूप ज्वार-भाटा, तूफान एवं भूकम्प जैसे घटनाएँ घटित होती है।

पूर्व एवं पश्चिम, उत्तर एवं दक्षिण के लोगों की जीवन शक्ति में जो अन्तर पाया जाता है, वह मात्र खान-पान के भेद या जाति अथवा संस्कृति के भेद के कारण नहीं, अपितु यह भेद जलवायु की भिन्नता के कारण है। जलवायु की दशाओं और उसके परिवर्तनों का - मनुष्य के शारीरिक एवं बौद्धिक विकास, जीवन शक्ति, क्षमता, अपराधवृत्ति, समृद्धि स्वास्थ्य एवं सफलता आदि पर - सीधा प्रभाव पड़ता है। जलवायु के परिवर्तन एवम् उसकी विविधता के माध्यम से मानव मात्र पर पड़ने वाले प्रभाव को एक प्रकार से ग्रहों का ही प्रभाव माना जा सकता है।

बालरोगोत्पत्ति हेतु कालाऽवयवों का परिचय

भारतीय ज्योतिष एक ऐसी विद्या है, जिसमें वैदिक दर्शन के कार्यकारणवाद एवं सत्कार्यवाद जैसे सिद्धान्तों के आधार पर बालक के जीवन में कौन-कौन सा रोग या अरिष्ट कब होगा? इसका सहैतुक मनन एवं चिन्तन कर उसके फलितार्थ के आधार पर बाल-रोगों का प्रतिपादन किया जाता है।

---

1 सूर्य सिद्धान्त, भूगोलाध्याय, श्लोक-37

भारतीय ज्योतिष में बाल रोगों को जानने के लिए अनेक अवयव एवम् उनके भेदोपभेद माने गए हैं। शरीर में अनेक अवयव या अंग होने पर भी पाँच ज्ञानेन्द्रिय (आंख, कान, नाक जिह्वा एवं त्वचा) पांच कर्मेन्द्रिय (हाथ, पैर, वाणी, लिंग एवं गुदा) एवं मन इन ग्यारह अंगों को मुख्य माना जाता है। ठीक उसी प्रकार भारतीय ज्योतिष में बाल रोगों को जानने के लिए अर्थात् बालरोग कब होगा? इसका निर्धारण करने के लिए प्रमुख अंग-वर्ष, अयन, ऋतु, मास, पक्ष, बार, तिथि, नक्षत्र, योग, करण एवं लग्न ये ग्यारह अवयव है। शरीर के ग्यारह अवयवों में भी पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ (आँख, कान, नाक, जिह्वा एवं त्वचा) एवं छठा मन सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। तात्पर्य यह है कि शरीर में जो भूमिका ज्ञानेन्द्रियों की है बाल रोग निर्धारण में वही भूमिका पंचांग की होती है। शरीर में जो भूमिका मन की होती है, बालरोग निर्धारण में वही भूमिका लग्न की स्वीकार की गई है। बाल रोगों की पृष्ठभूमि को जानने के लिए इन अवयवों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है -

1. वर्ष

बाल रोगों को जानने के लिए मुख्य अवयव है वर्ष। इसके आधार पर एक ओर जीवन की अनेक गतिविधियाँ चलती है तो दूसरी ओर इसके आधार पर यह जाना जाता है कि कौन-सा रोग किस वर्ष में होना है अथवा कौन-सा ग्रह किस वर्ष में अरिष्ट देता है। वर्ष नौ प्रकार के माने गए है।[1] परन्तु भारतीय ज्योतिष में तीन प्रकार के वर्षों का उपयोग किया जाता है -

1. सौर वर्ष

---

1 वृहज्जयौतिषसार-प्रकरण - 1, श्लोक-20

2. चान्द्र वर्ष

3. बार्हस्पत्‌य वर्ष

1. सौर वर्ष

मेष आदि बारह राशियों में सूर्य के भोग काल को सौर वर्ष कहते हैं। इस वर्ष में लगभग 365 दिन होते हैं।[1] एक सौर वर्ष में उत्तरायण एवं दक्षिणायन के भेद से दो अयन छह ऋतु एवं बारह मास होते हैं। इसका प्रारम्भ मेष संक्रान्ति से होता है।

2. चान्द्रवर्ष

शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से लेकर अमावस्या तक चैत्र आदि बारह मासों से मिलकर एक चान्द्र वर्ष होता है। इसमें लगभग 354 दिन होते हैं।[2]

3. बार्हस्पत्य वर्ष

जितने समय में बृहस्पति अपनी मध्यम गति से एक राशि का भोग करता है उसे बार्हस्पत्य वर्ष कहते हैं।[3] इसमें 361 दिन होते हैं। इसे संवत्सर भी कहते हैं। ये संवत्सर विजय आदि साठ होते हैं।

वर्ष की गणना के लिए हमारे देश में तीन प्रकार के सम्वत् प्रचलित हैं - 1. विक्रमी, 2. शक् सम्वत, 3. ईस्वी सन्। कलियुग के लगभग 3,000 वर्ष व्यतीत होने के बाद उज्जैन में विक्रमादित्य नाम के एक प्रतापी राजा हुए थे। उन्होंने विदेशी शकों को परास्त कर अपनी विजय के उपलक्ष्य में विक्रमी सम्वत् चलाया था। यह सम्वत्

---

1 वृहज्जयौतिषसार - प्रकरण-1, श्लोक-1

2 वृहद्दैवज्ञरञ्जनम् - प्रकरण-18, श्लोक-3

3 वृहज्जयौतिषसार - प्रकरण-1, श्लोक-19

क्राईस्ट के जन्म से 57 वर्ष पहले से चलाया गया था और यह शक् सम्वत् से 135 वर्ष पहले से प्रचलित है। इसलिए सन् में 57 वर्ष और शक् सम्वत् में 135 वर्ष जोड़ने से विक्रम सम्वत् आ जाता है। उदाहरणार्थ - इस वर्ष विक्रमी सम्वत् 2068, शक् सम्वत् 1933 तथा सन् 2011 है। अतः सन् 2011+57=2068 तथा शाके 1933+135=2068 विक्रम सम्वत् बन जाता है।

विक्रमादित्य के 135 वर्ष बाद तथा क्राइस्ट के 78 वर्ष बाद भारत में शालिवाहन नामक एक प्रतापी राजा हुए थे। उन्होंने शक् सम्वत् चलाया है। शक् सम्वत् जानने के लिए विक्रम सम्वत् में से 135 और सन् में से 78 घटाने पर शक् सम्वत् आ जाता है, यथा-विक्रम सम्वत् 2068-135=1933 तथा सन् 2011-78=1933 इस प्रकार शक् सम्वत् का ज्ञान किया जाता है।

ईस्वी सन् पूरे विश्व में प्रचलित सम्वत् है। यह क्राईस्ट के जन्म के उपलक्ष्य में प्रचलित हुआ था। ईसाई धर्म के प्रवर्तक सन्त क्राइस्ट का जन्म कलियुग के 3101 वर्ष व्यतीत होने पर हुआ था। यह घटना विक्रम सम्वत् के 57 वर्ष बाद एवं शक् सम्वत् से 78 वर्ष पहले की है। अतः विक्रम सम्वत् में से 57 घटाने पर और शक् सम्वत में 78 जोड़ने पर ईस्वी सन् आ जाता है। यथा -

विक्रम् सम्वत् = 2068-57 = 2011
शक् सम्वत् = 1933+78 = 2011

इन तीनों सम्वतों में विक्रम सम्वत् चान्द्र वर्ष पर तथा शक् सम्वत् एवम् ईस्वी सन् सौर वर्ष पर आधारित हैं।[1]

---

1 ''वृहद्दैवज्ञरञ्जनम्'' में ''कालादिमान'' प्रकरण के आधार पर

अयन

एक सौर वर्ष में दो अयन होते हैं - 1. उत्तरायण 2. दक्षिणायन। मकर से छह राशियों में सूर्य के रहने पर उत्तरायण और कर्क से छह राशियों में सूर्य के रहने पर दक्षिणायन होता है। अयन की गणना सायन संक्रान्ति से होती है।[1]

ऋतु

प्रत्येक अयन में तीन-तीन और पूरे वर्ष में छह ऋतुएँ होती है। भिन्न-भिन्न ऋतुओं में भिन्न-भिन्न बाल रोगों का निर्धारण किया जाता है। इनकी गणना सायन संक्रान्ति से होती है। ऋतु का निर्धारण विभिन्न राशियों में सूर्य की स्थिति के अनुसार होता है अर्थात् मीन मेष में जब सूर्य होता है तो बसन्त, वृष मिथुन में सूर्य होने से ग्रीष्म, कर्क-सिंह में सूर्य होने से वर्षा, कन्या तुला में सूर्य होने से शरद, वृश्चिक धनु में सूर्य होने से हेमन्त, मकर कुम्भ में सूर्य होने से शिशिर ऋतु होती है।[2]

सूर्य की राशियाँ	ऋतु
मीन एवं मेष	वसन्त
वृष एवं मिथुन	ग्रीष्म
कर्क एवं सिंह	वर्षा
कन्या एवं तुला	शरद
वृश्चिक एवं धनु	हेमन्त
मकर एवं कुम्भ	शिशिर

---

1 सूर्य सिद्धान्त-अध्याय-14-श्लोक-9

2 वही, श्लोक-10

मास

एक वर्ष में 12 मास होते हैं - चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ एवं फाल्गुन। मास दो प्रकार के होते हैं - 1. चान्द्रमास, 2. सौरमास।

चान्द्रमास

दो अमावस्याओं के मध्य का काल अर्थात् शुक्ल प्रतिपदा से अमावस्या की समाप्ति पर्यन्त चान्द्रमास होता है। या ऐसा कहें कि चन्द्रमा द्वारा 30 तिथियों के भोग काल को चान्द्रमास कहते हैं।

अधिक एवं क्षयमास

बाल रोगों पर विचार करने के लिए चान्द्रमास के इन भेदों को भी जान लेना आवश्यक है। जिनको हम अधिक मास एवं क्षयमास कहते है। ''सिद्धान्त शिरोमणि'' में कहा गया है कि - जिस चान्द्रमास में सूर्य की संक्रान्ति नहीं होती, उस चान्द्रमास को अधिकमास कहते हैं।[1] इसी को अधिमास या मलमास भी कहते हैं। यह मास सभी शुभ कार्यों के लिए वर्जित माना गया है। जिस मास में सूर्य की दो संक्रान्तियां पड़ती है उस मास को क्षयमास कहते हैं। इन मासों में बाल रोग एवं बालारिष्ट की सम्भावना अधिक हुआ करती है।

सौरमास

जैसे एक चान्द्रवर्ष में चैत्र आदि बारह महीने होते हैं, उसी प्रकार सौर वर्ष में भी बारहमास होते हैं। इनको सौरमास कहते हैं। इनकी अवधि एक संक्रान्ति से दूसरी

---

1 ''सिद्धान्तशिरोमणि'' मध्यमअधिकार-श्लोक-6

संक्रान्ति तक होती है अर्थात् एक राशि को जब सूर्य भोग कर लेता है तो सौर-मास होता है।[1] इनके भी नाम चैत्र, वैशाख आदि चान्द्रमासों के समान है।

पक्ष

एक चान्द्रमास में दो पक्ष होते हैं - 1. शुक्लपक्ष, 2. कृष्ण पक्ष। जिस पक्ष में चन्द्रमा के बिम्ब में शुक्लता बढ़ती है उस पक्ष को शुक्ल पक्ष और जिस पक्ष में चन्द्र बिम्ब में कृष्णता (कालिमा) बढ़ती है उसको कृष्ण पक्ष कहते हैं। प्रत्येक पक्ष में 15 तिथियाँ होती है। शुक्लपक्ष की 15वीं तिथि को पूर्णिमा एवं कृष्ण पक्ष की 15वीं तिथि को अमावस्या कहते हैं।

सिद्धान्तसार के अनुसार सूर्य चन्द्र की युति के छह राशि अन्तराल को पक्ष कहते हैं। सूर्य चन्द्र की युति अमावस्या को होती है। इसमें चन्द्रमा अधिक गतिशील होने से सूर्य से आगे छह राशि पर होता है तो प्रतिपदा से पूर्णिमा के अन्त तक शुक्ल और उसके अग्रिम संगम तक कृष्ण पक्ष होता है।[2] चन्द्रमा की स्थिति बालरोग एवं बालारिष्ट में विशेष रूप से देखी जाती है।

तिथि

महर्षि वसिष्ठ के अनुसार सूर्य से संयोग करके चन्द्रमा का प्रतिदिन का गमन तिथि संज्ञक होता है। जब सूर्य चन्द्रमा एक राशि में अंश कलादि से समान होते हैं तो अमावस्या अर्थात् दर्श होता है। इसके अनन्तर अधिक गतिमान् चन्द्रमा जब 12 अंश अधिक होता है तो एक तिथि होती है अर्थात् 12, 12 अंश के अन्तर से एक-एक

---

1 ''बृहद्दैवज्ञरञ्जनम्'' मास प्रकरण - श्लोक-2

2 वही, मास प्रकरण - 21, श्लोक-1

तिथि होती है। चान्द्रमास के दोनों पक्षों में 15-15 तिथियाँ होती हैं। इनके नाम है - 1. प्रतिपदा, 2. द्वितीया, 3. तृतीया, 4. चतुर्थी, 5. पञ्चमी, 6. षष्ठी, 7. सप्तमी, 8. अष्टमी, 9. नवमी, 10. दशमी, 11. एकादशी, 12. द्वादशी, 13. त्रयोदशी, 14. चतुर्दशी तथा शुक्लपक्ष में 15वीं तिथि पूर्णिमा एवं कृष्ण पक्ष में अमावस्या होती है।[1] इन तिथियों को पाँच भागों में बाँटा गया है - 1. नन्दा, 2. भद्रा, 3. जया, 4. रिक्ता, 5. पूर्णा

इन 15 तिथियों में से 1,6 एवं 11 तिथियाँ नंदा, 2,7,12 तिथियां भद्रा, 3,8 एवं 13 तिथियां जया, 4,9 एवं 14 तिथियां रिक्ता, एवं 5, 10 एवं 15 तिथियां पूर्णा कहलाती हैं।[2]

दग्ध विष एवं हुताशन तिथियाँ

रवि आदि वारों में - दग्ध, विष एवं हुताशन संज्ञक तिथियों का निश्चय किया जाता है[3] यथा

दग्ध विष एवं हुताशन तिथियाँ

वार	रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
दग्धतिथियाँ	12	11	5	3	6	8	9
विषतिथियाँ	4	6	7	2	8	9	7
हुताशनतिथियाँ	12	6	7	8	9	10	11

1 वृहद्दैवज्ञरञ्जनम् प्रकरण-22, श्लोक-1

2 मुहूर्त चिन्तामणि प्रकरण-1, श्लोक-4

3 तत्रैव, श्लोक-5

मृत्यु-क्रकच एवं सम्वर्तक योग

रविवार को नन्दा, सोमवार को भद्रा, मंगल को नन्दा, बुध को जया गुरु को रिक्ता, शुक्र को भद्रा एवं शनिवार को पूर्णा तिथि हो तो मृत्यु योग होता है। यह योग बालारिष्ट को जन्म देता है। रविवार आदि में यथाक्रमेण 12, 11, 10, 9, 8, 7 एवं 6 तिथियाँ हों तो क्रकच या अधम योग होता है। रविवार को सप्तमी एवं बुधवार को प्रतिपदा हो तो सम्वर्तक योग होता है।[1] ये सभी योग बाल रोग एवं बालारिष्ट के कारक होते हैं।

वार

यह सर्वविदित है कि वार सात होते है। जिनको रवि, सोम, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र एवं शनिवार कहा जाता है। वारों के ये नाम एवम् उनका सही क्रम पूरे विश्व में प्रचलित है। इस प्रसंग में जानने योग्य बात ये है कि वारों का क्रम रविवार के बाद सोमवार और उसके बाद मंगलवार बुधवार ही क्यों है? इस क्रम के पीछे क्या आधार है? क्या कारण है? इसको जानने एवं बतलाने का समस्त श्रेय भारतवर्ष के उन आचार्यो को जाता है जिन्होंने भारतीय ज्योतिष के कालजयी सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है।

भारतीय ज्योतिष के आचार्यो के अनुसार एक अहोरात्र (रात-दिन) में 24 होराएं हुआ करती हैं। ग्रहमण्डल में ग्रहों की कक्षा का क्रम इस प्रकार है - सबसे उपर शनि की कक्षा है। उसके नीचे क्रमशः गुरु मंगल सूर्य शुक्र बुध एवं चन्द्रमा की कक्षाएं हैं।

---

1 मुहूर्त चिन्तामणि प्रकरण-1, श्लोक-8

प्रलय के बाद सृष्टि के प्रारम्भ में सर्वप्रथम सूर्य का उदय होता है। अतः ऋषियों ने पहली होरा सूर्य की ही मानी। उसके बाद कक्षा क्रम से दूसरी तीसरी आदि होराएं शुक्र, बुध आदि की मानी गईं।[1]

नक्षत्र

राशि चक्र के 27वें भाग को नक्षत्र कहते हैं। राशिक्रम में 360 अंश 12 राशियाँ एवं 27 नक्षत्र होते हैं। अतः एक नक्षत्र का मान 13 अंश 20 कला अथवा 8,00 कला होता है। प्रत्येक राशि में (सवा दो) नक्षत्र होते हैं। इन नक्षत्रों के नाम है - 1.अश्विनी, 2. भरणी, 3. कृतिका, 4. रोहिणी, 5. मृगशीर्ष, 6. आर्द्रा, 7. पुनर्वसु, 8. पुष्य, 9. आश्लेषा, 10. मघा, 11. पूर्वाफाल्गुनी, 12. उत्तराफाल्गुनी, 13. हस्त, 14. चित्रा, 15. स्वाति, 16. विशाखा, 17. अनुराधा, 18. ज्येष्ठ, 19. मूल, 20. पूर्वाषाढ़ा, 21. उत्तराषाढा, 22. श्रवण 23. धनिष्ठा, 24. शतभिषा, 25. पूर्वाभाद्रपद, 26. उत्तराभाद्रपद, 27. रेवती। इन नक्षत्रों में से उत्तराषाढा की अन्तिम 15 घटी एवं श्रवण की प्रारम्भ की 4 घटी को मिलाकर अभिजित नक्षत्र होता है। इस प्रकार अभिजित सहित नक्षत्रों की संख्या 28 और उसके बिना नक्षत्रों की संख्या 27 होती है।

---

1 वृहद्दैवज्ञरञ्जनम् प्रकरण-23, श्लोक-4

नक्षत्रों की संज्ञाएँ

नक्षत्रों के नाम	वार	संज्ञा
उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, रोहिणी	रविवार	ध्रुव/स्थिर
स्वाति, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा	सोमवार	चर/चल
पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपद, भरणी, मघा	मंगलवार	उग्र/क्रूर
विशाखा, कृतिका	बुधवार	मिश्र/साधारण
हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित	गुरुवार	क्षिप्र/लघु
मृगशीर्ष, रेवती, चित्रा, अनुराधा	शुक्रवार	मृदु/मित्र
मूल, ज्येष्ठा, आर्द्रा, आश्लेषा	शनिवार	तीक्ष्ण/दारूण

उत्पात, मृत्यु, काण, यमघण्ट एवं यमदंष्ट्र योग

नक्षत्र शुभ होने पर भी विभिन्न वारों के योग से उत्पात, मृत्यु, काण यमघण्ट एवं यमदंष्ट्र योग बनते हैं।[1] ये सभी योग बालरोग एवं बालारिष्ट को उत्पन्न करने वाले हैं।

योग	रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
उत्पातयोग	विशाखा	पू0षा0	धनिष्ठा	रेवती	रोहिणी	पुष्य	उ0षा0
मृत्युयोग	अनुराधा	उ0षा0	शतभिषा	अश्विनी	मृगशीर्ष	आश्लेषा	हस्त
काणयोग	ज्येष्ठा	अभिजित	पू0भा0	भरणी	आर्द्रा	मघा	चित्रा
यमघण्टयोग	मघा	विशाखा	आर्द्रा	मूल	कृतिका	रोहिणी	हस्त
यमदंष्ट्रयोग	मघा धनिष्टा	मूल विशाखा	भरणी कृतिका	पुनर्वसु पू0षा0	आश्विन रेवती	रोंहिणी अनुराधा	श्रवण शतभिषा

1 मुहूर्तचिन्तामणि-प्रकरण-1, श्लोक-30

योग

आचार्य गर्ग ने कहा है कि ये योग दो प्रकार के होते हैं - 1. नित्य, 2. नैमित्तिक। विषकुम्भादि 27 नित्य योग होते हैं और आनन्दादि तिथि, वार नक्षत्र के साहचर्य से नैमित्तिक योग होते हैं।[1]

सूर्य एवं चन्द्रमा दोनों मिलकर जितने समय में 8,00 कलाओं (13 अंश 20 कला) का भोग करते हैं उतने समय को योग कहते हैं। ये योग भी नक्षत्रों के समान 27 होते हैं।[2]

करण

तिथि के आधे मान को करण कहते हैं। ये करण दो प्रकार के होते हैं - 1. स्थिर करण, 2. चरकरण

जो करण कुछ तिथियों में निश्चित रूप से रहते हैं वे स्थिर करण कहलाते हैं। जैसे कृष्ण पत्र की चतुर्दशी के उत्तरार्ध में शकुनि, अमावस्या के पूर्वार्ध में चतुष्पाद, अमावस्या के उत्तरार्ध में नाग एवं शुक्लपक्ष की प्रतिपदा के पूर्वार्द्ध में किंस्तुघ्न करण सदैव रहता है। इसलिए शकुनि, चतुष्पाद, नाग एवं किंस्तुघ्न को स्थिर करण कहा जाता है।[3]

---

1 वृहद्दैवज्ञरञ्जनम् योगप्रकरण श्लोक-2

2 बृहज्यौतिषसार-योगप्रकरण-श्लोक-2,3,4

3 बृहज्यौतिषसार करणप्रकरण-श्लोक-2

जो करण अनेक तिथियों में बार-बार अपने चार के क्रम से आते है वे चर करण कहलाते हैं ये करण सात होते है। यथा - 1. बव, 2. बालव, 3. कौलव, 4. तैतिल, 5. गर, 6. वणिज, 7. विष्टि। विष्टिकरण को भद्रा भी कहते हैं।[1]

बालरोगकारक करण

शकुनि, चतुष्पाद, नाग, किंस्तुघ्न, गर एवं विष्टि-ये छह करण बालरोगकारक होने के कारण अशुभ तथा शेष करण शुभ होते हैं। इन करणों में शकुनि, चतुष्पाद, नाग एवं किंस्तुघ्न ये चार करण चन्द्रमा के क्षीण (अस्त) होने के समय आते हैं। बालरोग एवं बालारिष्ट में मुख्य चन्द्रमा का पीड़ित होना बताया जाता है। बचपन में अकालमृत्यु के सूचक योग बालारिष्ट योग कहलाते हैं। ये बच्चों की बीमारियों के सूचक होते हैं। जबकि गर करण गरल (विष) का सूचक होने से बाल रोग कारक होता है और विष्टि जिसको भद्रा कहते हैं - यह भी बालारिष्ट कारक है।

लग्न

भारतीय ज्योतिष में लग्न स्वास्थ्य एवं समग्र शरीर का प्रतिनिधित्व करता है। इसलिए बालरोगों के सन्दर्भ में लग्न की पृष्ठभूमि को जानना आवश्यक है।

किसी भी समय क्रान्तिवृत (राशिचक्र) का जो बिन्दु पूर्वक्षितिज का स्पर्श करता है, उस समय उस राशि-अंश आदि को लग्न (स्पष्ट लग्न) कहते हैं। एक दिन (अहोरात्र) में 12 लग्नों की आवृति होती है।[2]

---

1 बृहज्यौतिषसार करणप्रकरण-श्लोक-3

2 वही, जातक स्कन्ध-श्लोक-11

शरीर की दसों इन्द्रियाँ (पांच कर्मेन्द्रियाँ एवं पांच ज्ञानेन्द्रियाँ) मन के अधीन एवम् उसके अनुसार ही अपना विहित कार्य करती हैं। उसी प्रकार बाल रोगों को जानने के लिए आवश्यक दस अवयव लग्न के अनुसार ही अपना शुभाशुभ फल देते हैं। इसलिए भारतीय ज्योतिष में लग्न को सबसे महत्वपूर्ण अवयव माना गया है।

बालरोगों को उत्पन करने वाले लग्न

कुछ लग्न स्वभावतः बालरोग एवं बालारिष्ट कारक हुआ करते हैं। यथा - 1. शून्य या दग्ध लग्न, 2. पंगु, अन्ध एवं बधिर लग्न।

1. शून्य या दग्ध लग्न

शुक्ल एवं कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा आदि विषम तिथियों में निम्नलिखित चक्रानुसार शून्य या दग्ध लग्न का निश्चय किया जाता है।[1]

तिथि	प्रतिपदा	तृतीया	पञ्चमी	सप्तमी	नवमी	एकादशी	त्रयोदशी
शून्य	तुला	सिंह	मिथुन	कर्क	कर्क	धनु	वृष
लग्न	मकर	मकर	कन्या	धनु	सिंह	मीन	मीन

2. पंगु, अन्ध एवं बधिर लग्न

दिन, रात्रि एवं संध्या आदि के भेद से निम्नलिखित लग्न पंगु, अन्ध एवं बधिर होती है।

---

1 मुहूर्तचिन्तामणि, विवाह प्रकरण-श्लोक-83

पंगु आदि लग्न	दिन मे	अपराह्न में	संध्या में	रात्रि में
पंगु लग्न	कुम्भ		मकर कुम्भ मीन	मीन
अन्ध लग्न	मेष, वृष, सिंह			मिथुन कर्क कन्या
बधिर लग्न	तुला, वृश्चिक	तुला वृश्चिक धनु		धनु मकर

ये सभी लग्न बालरोग एवं बालारिष्ट को देने वाले हैं।

2. भारतीय ज्योतिष में बाल रोग परिज्ञान

वस्तुतः प्रत्येक प्राणी के जीवन में मृत्यु अनिवार्य है। मृत्यु किसी न किसी रोग या आकस्मिक दुर्घटना के बहाने आती है और प्राणों को अपने साथ ले जाती है। मृत्यु का मुख्य कारण ग्रह का जन्मकुण्डली में विभिन्न स्थितियों में होना बनता है। जैसा कि में बालारिष्ट मुख्य चन्द्रमा का पीड़ित होना बताया जाता है।[1] बचपन में अकाल मृत्यु के सूचक योग बालारिष्ट योग कहलाते हैं। ये बच्चों की बीमारियों के सूचक होते हैं।

---

1 जातक पारिजात, 4/4
विलतनयातस्त्वपि देवमन्त्री विनाशरिण्फारिगतेशशाङ्के।
विलोकिते पापवियच्यरेण विभानुना मृत्युमुपैति बालकः।।

यदि अरिष्ट योग भंग होता हो, तो उस योग से बच्चों को बीमारियाँ होती है। किन्तु उसका जीवन सुरक्षित रहता है - अर्थात् रोग चिकित्सा द्वारा ठीक हो जाते हैं और यदि अरिष्ट योग का भंग न हो, तो इन बीमारियों से बचपन में ही मृत्यु हो जाती है। मृत्यु एक महारोग है। अतः बालारिष्ट कारक ग्रह रोगकारक होता है। यदि हमें रोग की पूर्व सूचना मिल जाए और सावधानीपूर्वक उसका उपचार कर दिया जाए तो रोगजन्य कष्टानुभूति से मानवीय सभ्यता को राहत मिल सकती है, साथ ही आयुष्य की दीर्घता भी बढ़ सकती है। आज का अधुनिकतम विज्ञान बालक के बीमार होने के बाद ही उसकी बीमारी का पता लगा पाता है, बालक की मृत्यु होने के बाद ही मृत्यु के कारणों का पता लगाने की व्यर्थ कोशिश करता है। स्वस्थ बालक में छिपी हुई बीमारी कब प्रकट होगी? कौन-सी बीमारी होगी? क्यों होगी? किन परिस्थितियों में किन कारणों से बालक की मृत्यु होगी? इसके पूर्वानुमान का परिमापन न तो आयुर्वेद के पास है न आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के पास है। संसार के किसी भी चिकित्साविज्ञान के पास इसका कोई उत्तर नहीं हैं। इसका एकमात्र उत्तर यदि कहीं है तो केवल ज्योतिष शास्त्र में है।

बालरोगोत्पत्ति के कारण

ज्योतिषशास्त्र एवं आयुर्वेद दोनों इस बात पर सहमत है कि बालक अपने पूर्वार्जित अशुभ कर्मों के प्रभाववश रोगी बनता है।[1] तथा जीवन के अन्य घटनाओं की तरह बालक को होने वाले रोगों की जानकारी जन्मकुण्डली के द्वारा प्राप्त की जा सकती है।

---

1 प्रश्नमार्ग, अध्याय-13, श्लोक-29, जन्मान्तरकृतं कर्म व्याधि रूपेण जायते।

आयुर्वेद का सिद्धान्तपक्ष है कि कर्मप्रकोप एवं दोषप्रकोप रोगोत्पत्ति के हेतु हैं।[1] सामान्यतया मिथ्या (अनुचित) आहार एवं विहार से रोग उत्पन होते हैं।[2] किन्तु जब ऋतु के अनुसार आहार-विहार किया जाय, तन और मन दोनों सद्‌वृति से कार्य करें, मौसम भी रोगोत्पत्ति का न हो और अचानक इस स्थिति में रोग पैदा हो जाए, तो उस रोग को कर्म-जन्य मानना चाहिए।[3]

आयुर्वेद में कर्मजन्य रोगों का कारण जो कर्म माना गया है, वह संचित कर्म है, जिसके एक भाग को प्रारब्ध कहते हैं, तथा मिथ्या आहार-विहार क्रियमाण कर्म है। इस प्रकार कर्म प्रकोप एवं दोष प्रकोप दोनों के मूल में अशुभ या अनुचित कर्म ही मूल कारण है। इसीलिए ज्योतिषशास्त्र के आचार्यों ने मनुष्य के पूर्व कर्मो, वे चाहे इस जन्म के हों या जन्मान्तरों के कर्मों को रोगोत्पत्ति का प्रमुख कारण माना है।

शातातपीय तन्त्र में कहा गया है कि पूर्वजन्म में किया गया पाप इस जन्म में बालक में कुष्ठ, क्षय, प्रमेह संग्रहणी, मूत्रकृच्छ अश्मरी, कास, अतिसार एवं भगन्दर जैसे - रोगों को उत्पन्न करता है।[4] त्रिशठाचार्य के अनुसार उदर रोग, गुप्त रोग, उन्माद, अपस्मार, पंगुता, कर्णरोग, वाक्‌दोष, प्रमेह, भगन्दर, प्रदर, वातव्याधि, कुष्ठ, क्षय, अन्धता, मुखरोग, नासारोग, अर्श, विपची व्रण, बल्मीक, रक्तार्बुद, विसर्प, देहकम्प, पक्षाघात, गलगण्ड, नपंसुकता एवं दन्तरोग पाप कर्मों के प्रभाववश होते हैं।[5]

---

1 चरक संहिता, अध्याय - 40

2 वही, श्लोक-52, मिथ्याहार विहारभ्यां रोगोत्पत्तिप्रजायते।

3 सुश्रुत संहिता-उतरतन्त्र अध्याय-40, श्लोक-163

4 "शातातपीय तन्त्र", पृष्ट 82

5 वीरसिंहावलोक, पृष्ट 108

बालरोगोत्पत्ति के सम्बन्ध में आयुर्वेद के पम्परागत विद्वानों का कहना है कि आहार-विहार की अनियमितता से रोग पैदा होते है और यदि मनुष्य इन पर समुचित नियन्त्रण रखें, तो वह स्वस्थ एवं दीर्घजीवी हो सकता है।[1] किन्तु ज्योतिषशास्त्र की मान्यता इससे भिन्न है। यह शास्त्र मात्र अनियमित आहार-विहार को ही रोगोत्पत्ति का कारण नहीं मानता। यह बात अनेक बार प्रत्यक्ष रूप से देखने में आती है कि कुछ लोग नितान्त अनियमित जीवन बिताते हुए और खान-पान के सभी नियमों को तोड़ते हुए भी स्वस्थ रहते हैं। कुछ अन्य लोग नियमित जीवन एवं सदाचार के धनी होते हुए भी रोगों के शिकार हो जाते हैं। इस विषय में आचार्य शंकर एवं स्वामी विवेकानन्द का नाम साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है, जिनकी मधुमेह के कारण असामयिक मृत्यु हुई।

इस विषय में एक और ध्यान देने योग्य बात है, कि यदि मात्र आहार-विहार की अनियमितता को ही बालक की रोगोत्पत्ति का कारण मान लिया जाए, तो आनुवंशिक रोग, महामारी जन्य रोग एवम् आकस्मिक रोगों की उत्पत्ति के कारणों की भली-भाँति एवं सटीक व्याख्या नहीं की जा सकती। इस स्थिति में कहीं न कहीं खीचतान या जोड़-तोड़ करना पड़ेगा।

यही कारण है कि आयुर्वेद शास्त्र ने भी रोगोत्पत्ति के कारणों पर विचार करते हुए अन्त में निष्कर्ष के रूप में बतलाया है कि - ''कभी पूर्वार्जित कर्मों के प्रभाव से,

---

1 वाग्भट्ट एवं माधव 'माधव निदान' पृष्ट-68

कभी-कभी दोषों के प्रकोप से और कभी-कभी इन दोनों के मिले-जुले असर से शारीरिक एवं मानसिक रोग होते हैं।[1]

ज्योतिषशास्त्र की मान्यतानुसार प्रत्येक छोटा-बड़ा रोग पूर्वार्जित कर्मों के फलस्वरूप पैदा होता है और जन्मकाल प्रश्नकाल एवं गोचर में प्रतिकूल ग्रहों के द्वारा उसकी जानकारी की जा सकती है। अपने इसी अटल सिद्धान्त के अनुसार वह किसी भी बालक की जन्मकुण्डली के आधार पर वर्षों पहले यह बतला सकता है कि उस बालक को कब-कब और कौन-सा रोगा होगा? उसका परिणाम क्या रहेगा?

बालरोग उत्पत्ति की प्रक्रिया

समस्त भारतीय ज्ञान प्राच्यविद्याओं की पृष्ठभूमि दर्शनशास्त्र है। यही कारण है कि भारत में किसी भी प्रकार के ज्ञान को दर्शन की कसौटी पर कसकर जांचा और परखा जाता है। अपने इसी अटल नियम के अनुसार वह ज्योतिष को भी इसी दृष्टि से देखते हुए जांचता और परखता है।

भारतीय दर्शनों के अनुसार आत्मा अमर हैं, इसका नाश कभी भी नहीं होता। यह केवल कर्मों के अनादि प्रवाह के कारण अनेकानेक योनियों को बदलता रहता है।[2] प्राणिमात्र के शरीर में रहने वाला यह तत्व, नित्य एवं चैतन्य है और कर्मानुबन्ध के कारण यह परतन्त्र एवं विनाशी दिखलाई देता है। कर्म को करने के बाद अनिवार्य एवम् अपरिहार्य रूप से मिलने वाले फल से अनुबन्धित होना कर्मानुबन्ध कहलाता है। यद्यपि आत्मा साक्षात् रूप से कुछ भी नहीं करता।किन्तु आत्मा से चेतना पाकर जड़

1 "वीरसिंहावलोक", पृष्ट 8

2 श्रीमद्भगवद्गीता, पृष्ट 28

मन एवं इन्द्रियां सभी कर्मों को करती है। यदि आत्मा का सम्पर्क न हो, तो शरीर जड़ या शव की अवस्था में चला जाए और तब कर्म करने का प्रश्न ही नहीं उठता। इसलिए मन एवम् इन्द्रियों द्वारा कर्म करने का मुख्य कारण आत्मा का सम्पर्क है, जो इन्हें चेतना प्रदान कर सक्रिय करता है। अतः मन एवं इन्द्रियों के द्वारा किये जाने वाले कर्म का उपचार आत्मा करता है और किये हुए कर्मों के फल का उपभोक्ता है। वैदिक दर्शनों के अनुसार कर्म के तीन भेद होते हैं - 1. संचित, 2. प्रारब्ध एवं 3. क्रियमाण। किसी के द्वारा वर्तमान क्षण तक किए गए कर्म चाहे वे इस जीवन के हों या जन्मान्तरों के संचित कहलाते हैं। संचित के उस भाग को प्रारब्ध कहते हैं, जिसका फल मिलना प्रारम्भ हो चुका है। जिन कर्मों को हम कर रहे हैं या भविष्य में करेंगे वे सब क्रियमाण कहलाते हैं।

फल-परिपाक की दृष्टि से जन्म-जन्मान्तरों से लेकर आज तक के कर्मों का फल संचित-फल कहलाता है। इन संचित कर्मों का फल एक-साथ भोगना संभव नहीं है। इन कर्मों के परस्पर विरोधी या भिन्न होने के कारण उनका फल भी परस्पर विरूद्ध या भिन्न होता है। अतः इनका फल भोगने के लिए एकैक-क्रम अपनाना पड़ता है अन्यथा व्यवस्था भंग हो सकती है। परिणामतः संचित कर्मों में से जितने कर्मों का फल भोगने के लिए जीव को यह जीवन मिला है, केवल उतने ही कर्मों या उसी भाग (अंश) को प्रारब्ध कहते हैं। जो कुछ कर्म आज किए जा रहे हैं या भविष्य में किए जाएंगे उनके परिणाम को क्रियमाण का फल कहा जाता है।

हजारों वर्षों के लिपिबद्ध अनुभव के आधार पर यह कहा जा सकता है कि संसार एवं जीवन की क्रियाएं कुछ विशेष नियमों के अधीन चल रही हैं। सूर्य एवम्

अन्य ग्रह अनुशासनपूर्वक आवृत्ति के नियमों का पालन करते हैं, उनकी गति, स्थिति एवं भगण पूर्ति में पूर्णरूपेण नियमितता है - तो जो जीव इन ग्रहों पर बसते हैं, उनके जीवन की गतिविधियों में भी नियमितता होनी चाहिए। वस्तुतः इस ब्रह्माण्ड में दैवयोग, संयोग या आकस्मिक घटना नाम की कोई चीज नहीं है। यह तो मात्र हमारी अज्ञानता कमजोरी या उपेक्षावृत्ति को छिपाने का सहज साधन है।

भारतीय ज्योतिष के प्रवर्तक ऋषियों या इसका विकास करने वाले आचार्यों ने कहीं भी किसी निरंकुश 'विधाता' की कल्पना नहीं की है। इसके विपरीत हमारे मनीषी चिन्तकों ने स्पष्ट शब्दों में घोषणा की है कि इस ब्राह्माण्ड में घटने वाली प्रत्येक घटना एक सुनिश्चित नियम द्वारा बंधी है।

मनुष्यमात्र को उसके वर्तमान जीवन में जो कुछ भी मिल रहा है, वह कर्म के नियमों द्वारा सुनियोजित एवं सुनिश्चित है। हमारे ऋषियों का मत है कि एक बार कर्म करने के बाद मनुष्य उसका फल अवश्य पाएगा।[1] कर्म-फल भोगे बिना नष्ट नहीं हो सकता।[2]

यद्यपि वह कर्म करने या न करने में अपनी स्वतन्त्र इच्छाशक्ति का प्रयोग या उपयोग कर सकता है। जब एक बार एक कर्म कर दिया जाता है, तो कर्मवाद के अनुसार उसके अनिवार्य एवम् अपरिहार्य फल को भोगने से बचने का कोई रास्ता नहीं है। मनुष्य अपनी स्वतन्त्र बुद्धि द्वारा फल की अनुभूति में बहुत कुछ अंशों तक तारतम्य उत्पन्न कर सकता है। वह अपनी लगन एवं निष्ठा के साथ विविध उपायों के द्वारा फल के क्रम को आगे या पीछे कर सकता है। सबसे बड़ा सामर्थ्य मनुष्य का

---

1 भारतीय दर्शन, पृष्ट 148, अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्,

2 वही, नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि

यह है कि वह प्रतिकूल परिस्थितियों में या संकट के क्षणों में सतत् प्रयास से अपना भविष्य बना सकता है। इस प्रकार मनुष्य कृत कर्मों का फल भोगते हुए भी अपने नए भाग्य का सृजन कर सकता है।

बालरोग परिज्ञान के सिद्धान्त को निम्न उदाहरण के माध्यम से समझा जा सकता है - जन्म से पूर्व जातक के कुछ कर्म होते हैं, जिनके फलस्वरूप वह विशेष प्रकार के वातावरण में विशेष प्रकार की आकृति एवं प्रकृति के साथ एक विशेष परिवार में जन्म लेता है - यह पूरी घटना संचित कर्मों का फल कहलाती है। प्रारब्ध फल वह है जो जन्म के साथ और उसके बाद जीवनभर चलता है। जन्म लेते ही शिशु कुछ क्रियाएँ करता है। इनमें से कुछ क्रियाओं का कारण सहजातवृत्ति और कुछ अन्य क्रियाओं का कारण उसकी स्वतन्त्र इच्छाशक्ति होती है। बच्चे की यह सहजातवृत्ति उसे पिछले कर्मो के फलस्वरूप मिली है, जब कि उसकी स्वतन्त्र इच्छा आंशिकरूप में पिछले कर्मों पर और आंशिक रूप से स्वतन्त्र भी होती है। चूंकि सहजातवृति पूर्व कर्मों का परिणाम है। अतः सहजातवृत्ति के कारण होने वाले समस्त क्रिया-कलाप प्रारब्ध का परिणाम होते हैं और स्वतन्त्र इच्छा के कारण होने वाले क्रिया-कलाप क्रियमाण कर्म होते हैं, जो संचित एवं प्रारब्ध की प्रेरणा से संचालित होते हैं।

बालरोग परिज्ञान की रीति

बालक के जीवन में उत्पन्न होने वाले रोग संचित, क्रियमाण एवं प्रारब्ध कर्मो के परिणाम हैं। बालक को होने वाले जन्मजात रोग या वंशानुक्रम से प्राप्त रोग हमारे संचित कर्मो के परिणाम है। जब कि महामारी, संक्रमण या अन्य दुर्घटना से होने वाले रोग या अंगभंग आदि प्रारब्ध कर्मों के परिणाम होते हैं और अनुचित आहार एवम् अनियमित दिनचर्या द्वारा पैदा होने वाले रोग क्रियमाण कर्मों का फल कहलाते हैं। ज्योतिषशास्त्र में इन त्रिविध कर्मों और उनके फलों का विचार करने के लिए तीन

भिन्न-भिन्न प्रविधियों का आश्रय लिया जाता है। संचित कर्मों के फल का विचार आधान कुण्डली एवं जन्मकुण्डली के योगों द्वारा, प्रारब्ध के फल का विचार दशाओं द्वारा तथा क्रियमाण कर्मो का विचार गोचर द्वारा किया जाता है :
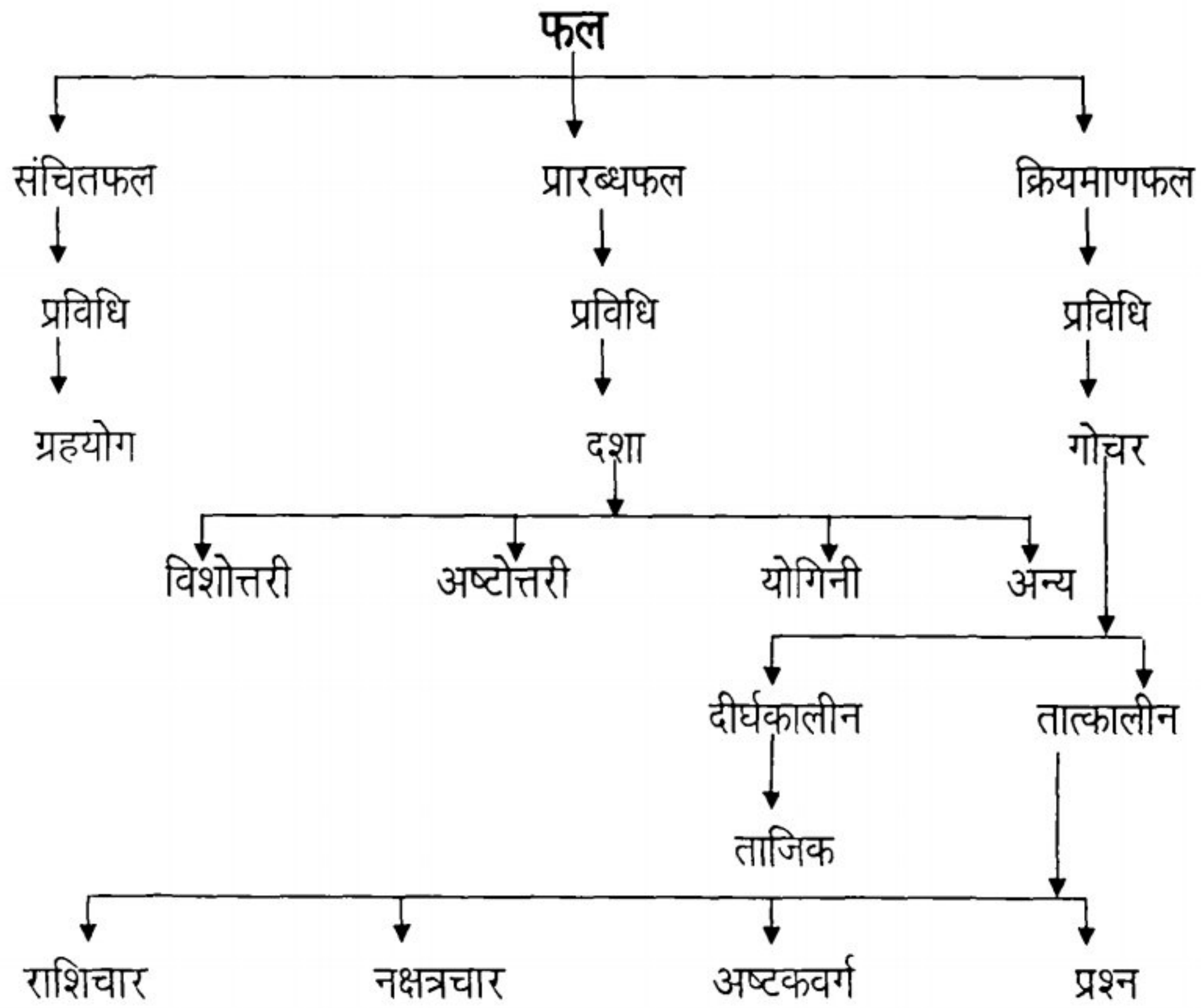
यही कारण है कि अन्धापन, कानापन, गूंगापन, बहरापन, लंगड़ा एवं लूलापन आदि जन्मजात रोगों का विचार करते समय होराशास्त्र के आचार्यों ने गर्भाधान एवं जन्मकुण्डली के योगों को महत्त्व दिया है।[1] ये जन्मजात रोग दशा, अन्तर्दशा एवं गोचर से सापेक्षता नहीं रखते। जब कि वात, पित्त एवं कफ के विकार से उत्पन्न होने वाले शारीरिक एवं मानसिक रोग तथा अंगों में पैदा होने वाली बीमारियों का विचार योगों के साथ-साथ दशा-अन्तर्दशा के आधार पर किया जाता है।[2] ये रोग प्रारब्ध का फल

---

1 शातातपीयतन्त्र पृष्ट 84

2 वीरसिंहावलोक, पृष्ट 136

है और प्रारब्ध संचित का एक भाग है। अतः इनका विचार करते समय हमारे आचार्यों ने योग एवं दशा-इन दोनों प्रविधियों का आश्रय लिया है। असन्तुलित खान-पान, अनियमित दिनचर्या, महामारी एवं संक्रमणजन्य रोगों को क्रियमाण कर्मों का फल माना है। क्रियमाण कर्म, संचित एवं प्रारब्ध के प्रभाववश होते हैं। अतः ऐसे रोगों का विचार करते समय योग एवं दशा के साथ-साथ गोचर का भी सूक्ष्मतया अध्ययन किया जाता है।[1]

ग्रहों की भिन्न-भिन्न स्थितियों के आधार पर बालरोग

भिन्न-भिन्न ग्रह स्थितियाँ मिलकर बालरोगों को उत्पन्न किया करती है। इनको पांच प्रकारों में बांटा जा सकता है।

1. सामान्य प्रकार द्वारा बालरोग विचार
2. ग्रहयोग द्वारा बालरोग विचार
3. ग्रहों की स्वाभाविक स्थिति के आधार पर बालरोग विचार
4. दशाओं के आधार पर बालरोग विचार
5. गोचर के आधार पर बालरोग विचार

1. सामान्य प्रकार द्वारा बालरोग विचार

ग्रहों की स्थिति, युति, दृष्टि, बल एवम् अवस्था आदि के अनुसार बालरोगों का जो निर्धारण किया जाता है - वह ग्रहों का सामान्य प्रकार कहलाता है। यह चालीस सामान्य आधारों के अनुसार चालीस प्रकार का ही होता है। ग्रहों के इन 40 प्रकारों

---

1 प्रश्न मार्ग - सं0 शुकदेव चतुर्वेदी, पृष्ट 128

के आधार पर बालरोगों को जन्मपत्री (जन्मकुण्डली) से जाना जा सकता है। बालरोग के निर्णायक आधार हैं - 1. परमोच्च, 2. उच्च, 3. आरोही, 4. अवरोही, 5. परमनीच, 6. नीच, 7. मूलत्रिकोण, 8. स्वगृही, 9. अतिमित्रगृही, 10. मित्रगृही, 11. समगृही, 12. शत्रुगृही, 13. अतिशत्रु गृही, 14. उच्चनवांश स्थित, 15. नीचनवांशस्थ, 16. वर्गोत्तमस्थ, 17. शत्रुनंवाशस्थ, 18. शुभषष्ठ्यंशस्थ, 19. पापषष्ठ्यंशस्थ, 20. पारावतांशस्थ, 21. क्रूरदेष्काणस्थ, 22. शुभदेष्काणस्थ, 23. उच्चस्थ के साथ, 24. नीचस्थ के साथ, 25. शुभग्रह के साथ, 26. पापग्रह के साथ, 27. शुभदृष्ट, 28. पापदृष्ट, 29 स्थानबल, 30 दिग्बली, 31. कालबली, 32. चेष्टाबली, 33. भावबली, 34. क्रूराक्रान्त, 35. निर्बल, 36. मार्गी, 37. वक्री, 38. अवस्थानुसार, 39. राशि में स्थितिवश, 40. भाव में स्थिति वश।

ग्रहयोग द्वारा बालरोग विचार

ग्रह योग को ज्योतिष की आम बोलचाल की भाषा में योग कहा जाता है। जिस बालक की कुण्डली में जो-जो योग होते हैं - उनका फल उस बालक को उन ग्रहों की दशा-अन्तर्दशा में मिलता है। इन योगों के आधार पर होने वाले बाल रोगों का फल बालक को इन योगों के कारकग्रहों की दशा-अन्तर्दशा में प्राप्त होता है। यह 30 प्रकार का होता है। इस फल के निर्णायक आधार हैं - 1. प्रमुख योग (लगभग=832), 2. द्विग्रह योग, 3. त्रिग्रह योग, 4. चतुर्ग्रह योग, 5. पंचग्रह योग, 6. षष्ठग्रह योग, 11. सप्तग्रह योग, 8. अष्टग्रहयोग, 9. अरिष्टयोग, 10. अरिष्टभंग योग, 11. षोडशवर्गयोग, 12. राजयोग, 13. संन्यास योग, 14. स्त्रीजातक योग, 15. रोग योग, 16. अल्पायु योग, 17. मध्यायु योग, 18. दीर्घायुयोग 19. धनयोग, 20. दरिद्रीयोग,

21. भिक्षुयोग, 22. रेका योग, 23. व्यवसाय योग, 24. कारकांश योग, 25. स्वांश योग, 26. पदयोग, 27. उपपद योग, 28. अर्गलादि योग, 29. मारक एवं मरणकालीन योग, एवं 30 अन्य योग।

ग्रहों की स्वाभाविक स्थिति के आधार पर बाल रोग विचार

ग्रहों के सामान्य फल एवं योगफल में बहुधा विरोधाभास मिलता है। कोई ग्रह उच्च राशि में होते हुए नीच नवांश में और मित्र राशि में होते हुए शत्रुनवांश में हो सकता है। इसी प्रकार केन्द्र में स्थित होने के कारण पंचमहापुरुष योग बनाने के साथ-साथ रेका योग या केमद्रुम योग बना सकता है।[1] किसी भी कुण्डली में मालिका योग के साथ-साथ कालसर्प योग भी बना सकता है।

सामान्यफल एवं योग फल के इन विरोधाभासों को ध्यान में रखकर ग्रहों के यथार्थफल का निर्धारण करने के लिए उनके स्वाभाविक फल का विचार विंशोत्तरी दशा के आधार पर किया जाता है। वस्तुतः सामान्य फल एवं योगफल के द्वारा बालक के रोगों का यथार्थ ज्ञान प्राप्त नहीं किया जा सकता। इसलिए ग्रहों की स्वाभाविक स्थिति के आधार पर बालरोग के विषय में जाना जा सकता है। ग्रहों के स्वाभाविक फल की यह विशेषता है कि उसमें परिवर्तन तो होता है, किन्तु वह सकारण होता है और उसकी तर्कसंगत व्याख्या की जा सकती है। ग्रहों के सामान्य एवं योगफल में जैसा संयोगिक विरोधाभास है, वैसा उनके स्वाभाविक फल में नहीं मिलता।

---

1 सारावली, पृष्ट 85, अध्याय-13, श्लोक-2

स्वाभाविक फल में विरोधाभास लगता है पर होता नहीं है, जैसे - ''योगकारक ग्रहों से सम्बन्ध होने पर पापी ग्रह भी अपनी अन्तर्दशा में योगज फल देते हैं।''[1] यहाँ प्रथम दृष्टि में यह लगता है योग कारक ग्रह की दशा में पापीग्रह की अन्तर्दशा में योगफल मिलना एक विरोधाभास है, क्योंकि योगकारक एवं पापीग्रह आपस में विरुद्धधर्मी है। वास्तविकता में इन दोनों का पारस्परिक सम्बन्ध इस विरोधाभास को दूर करने की क्षमता रखता है।

ग्रहों का आत्मभावानुरूप या स्वाभाविक फल वह है - जो ग्रहों के भाव-स्वामित्व, उनके आपसी सम्बन्ध एवं सधर्म आदि पर आधारित होता है। इस फल की यह विशेषता है कि इसमें बहुधा परिवर्तन नहीं होता हैं समय एवं परिस्थितियों के दबाव में कभी-कभी व्यक्ति की मानसिकता में कुछ अन्तर पड़ने के अतिरिक्त भी उसके स्वभाव में अन्तर नहीं पड़ता। लगभग उसी तरह ग्रहों की स्थिति एवं बल आदि के भेद के होने पर भी ग्रहों के स्वाभाविक फल में अन्तर नहीं पड़ता।

इस स्वाभाविक फल का निर्णय करने की प्रक्रिया में कभी-कभी कुछ अन्तर दिखलाई पड़ते हैं, किन्तु वे प्रक्रिया की गतिशीलता के अंग या प्रक्रिया की अवस्था के गुण-धर्म हैं। वस्तुतः निर्णय की समग्र प्रक्रिया से निकलकर निर्णीत होने के बाद ग्रह का स्वाभाविक फल नहीं बदलता। यह अलग बात है कि स्वाभाविक फल जब मिश्रित के रूप में निर्णीत हो तो कुछ लोग उसमें विरोधाभास की कल्पना कर पारस्परिक विरोध ढूँढने लगें। मिश्रित की प्रकृति ही मिली-जुली होती है। उसमें भी मिश्रण एक सुनिश्चित मात्रा में होता है और उसकी मात्रा तर्क पर आधारित होती है - न कि

---

1 लघुपाराशरी, पृष्ट 73

संयोग पर। तात्पर्य यह है कि प्रथमदृष्टि में यह लगता है कि योगकारक ग्रह की दशा में पापीग्रह की अन्तर्दशा में योगजफल मिलना एक विरोधाभास है, क्योंकि योगकारक एवं पापीग्रह आपस में विरूद्धधर्मी है। किन्तु वास्तविकता में इन दोनों का पारस्परिक सम्बन्ध इस विरोधाभास को दूर करने की क्षमता रखता है।

दशाओं के आधार पर बालरोग विचार

बालरोग की प्रक्रिया में दशापद्धति की निर्णायक भूमिका होती है। बालक को रोग होने की स्थिति कब-कब बनती है? इसका पता लगाने के लिए दशापद्धति का विकास किया गया है।

पाराशर एवम् अन्य आचार्यों के होराग्रन्थों में दशाओं के अनेक भेद मिलते हैं इनमें नक्षत्र दशा के दस भेद प्रमुख हैं - 1. विंशोतरी दशा, 2. अष्टोत्तरी दशा, 3. षोडशोत्तरी दशा, 4. द्वादशोत्तरी दशा, 5. द्विसप्तति समादशा, 9. षष्ठिहायनीदशा, 10. षड्त्रिंशत्समादशा। इसके अतिरिक्त कालचक्र आदि दशा का वर्णन फल की सूक्ष्मता एवं निश्चितता के लिए किया जाता है। महर्षि जैमिनी ने राशियों की दशा के साथ-साथ मण्डूक, रूद्र ग्रह, ब्रह्म ग्रह एवं शूल आदि की दशा का भी विचार किया है।

इन दशाओं में से विंशोत्तरी दशा उत्तर भारत में, अष्टोत्तरी दशा गुजरात, महाराष्ट्र सहित दक्षिण भारत में और योगिनी दशा गढ़वाल, कुमाँयू एवं हिमाचल जैसे पर्वतीय प्रदेशों में प्रचलित है।

सारांश यह है कि जन्मकुण्डली के योगों से बालक के जीवन में कब-कब और क्या-क्या अच्छा अथवा बुरा फल मिलेगा? इसको पहले से जाने या पूर्वानुमान करने की सशक्त एवं सक्षम प्रविधि को दशा कहते हैं और दशा, अन्तरदशा, प्रत्यन्तर दशा,

सूक्ष्मदशा एवं प्राणदशा के माध्यम से बालक के जीवन में होने वाले रोगों का निर्धारण किया जाता है।

गोचर के आधार पर बाल रोग विचार

ग्रहों के राशि एवं नक्षत्र चार के आधार पर निर्णीत फल, गोचर फल कहलाता है। यह क्रियमाण कर्मों के फल का सूचक होने के कारण हमारे वर्तमान जीवन से जुड़ा हुआ है और इसीलिए बालक को अपने जीवन में कब-कब कौन-कौन सा रोग होगा? उस सब का परिणाम जानने और पहचानने में गोचर फल की प्रमुख भूमिका होती है।

यह गोचर दो प्रकार का होता है - 1. दीर्घकालिक एवं 2. तात्कालिक। दीर्घकालिक से अभिप्राय एक वर्ष के भीतर घटने वाले घटनाचक्र से है। इस घटना चक्र को जानने का साधन ताजिक शास्त्र है। इसके अनुसार वर्षकुण्डली, त्रिपताकीचक्र, मुन्था, मुद्दा दशा, वर्षेश एवं इत्थशाल आदि षोडश योगों के माध्यम से एक वर्ष के भीतर घटित होने वाले घटनाक्रम की जानकारी मिल जाती है।

एक वर्ष के भीतर किस दिन क्या घटना घटेगी? इसका निश्चय तात्कालिक गोचर के द्वारा किया जाता है। तात्कालिक गोचर चार प्रकार का होता है। 1. राशिचार, 2. नक्षत्रचार, 3. अष्टकवर्ग एवं 4. प्रश्न। इस प्रकार राशिचार, नक्षत्रचार, अष्टकवर्ग एवं प्रश्न कुण्डली के अनुसार एक वर्ष के भीतर कब-कब कौन-सी अच्छी या बुरी घटना घटित होगी? इसका विचार एवं निर्णय किया जाता है।

वस्तुतः जीवन की प्रत्येक घटना आंशिक रूप से प्रारब्ध और आंशिक रूप से स्वतन्त्र इच्छा शक्ति से प्रभावित होती है। अतः उसका ज्ञान एवं पूर्वानुमान दशा और गोचर - इन दोनों के आधार पर किया जाता है।

बाल रोगों को उत्पन्न करने वाली विभिन्न ग्रहस्थितियाँ

होरा शास्त्र के आधारभूत - सिद्धान्तों के अनुसार बाल रोगों का विचार इस प्रकार किया जाता है। षष्ठ भाव में स्थितग्रह, व्यय एवं अष्टम में स्थित ग्रह, इन भावों के स्वामी, रोगेश एवं रोगेश से युक्त या दृष्ट ग्रह से रोगों का विचार किया जाता है।[1] इसके अतिरिक्त पाप प्रभावयुक्त राशियाँ एवं भाव, नीचराशि, शत्रुराशि एवं निर्बलता, लग्न में स्थिति एवं लग्नेश होना, अवरोही ग्रह, क्रूरषष्ठयंशगत ग्रह एवं अरिष्टकारक और मारकग्रह से भी रोगों का विचार किया जाता है।[2]

इस प्रकार होराशास्त्र में ग्रहों को बाल रोग कारक एक बनाने वाले नौ कारण बतलाये गए हैं जैसे -

1. रोग भाव का स्वामित्व
2. अष्टम एवं व्ययभाव का स्वामित्व
3. रोग भाव में स्थिति
4. लग्न में स्थिति या लग्नेश होना
5. नीचराशि, शत्रुराशि में स्थिति या निर्बलता
6. अवरोहीपन
7. क्रूरषष्ठ्यंश में स्थिति

---

1 फलदीपिका अध्याय-14, श्लोक-21

2 गदावली अध्याय-1, श्लोक-5

8. पाप ग्रहों का प्रभाव

9. अरिष्टकारकता एवं मारकता

1. रोग भाव का स्वामित्व

कुण्डली में षष्ठ भाव रोग का भाव है। अतः षष्ठेश रोगप्रद होता है - यह स्वयं सिद्ध है। यह छठें स्थान में स्थित होकर अपनी प्रकृति के अनुसार रोग देता है, जैसे षष्ठ स्थान में स्थित षष्ठेश चन्द्रमा बालक में कफ-विकार, शीतज्वर, चेचक एवं नेत्र विकार उत्पन्न करता है।[1]

किन्तु यदि इसका अन्य भाव के स्वामी से परिवर्तन हो, तो उस भाव से सम्बन्धित व्यक्ति या अंग में विकार की सूचना देता है, जैसे षष्ठेश चन्द्रमा का चतुर्थेश से परिवर्तन हो तो माता को रोग या मानसिक रोग और अष्टमेश से परिवर्तन हो तो गुप्त रोग या पथरी होती है। यदि यह अन्य दुःस्थानों में सूर्य आदि ग्रहों के साथ हो तो शरीर के विभिन्न अंगों में फोड़ा, गाँठ, घाव या आपरेशन की सूचना देता है जैसे[2]

षष्ठेश की ग्रह से युति		अंग जिसमें फोड़ा आदि होता है।
यदि षष्ठेश	सूर्य के साथ हो	सिर
यदि षष्ठेश	चन्द्रमा के साथ हो	मुख
यदि षष्ठेश	मङ्गल के साथ हो	कण्ठ
यदि षष्ठेश	बुध के साथ हो	नाभि

1 जातकतत्व - पृष्ठ 183

2 बृहत्पाराशर होराशास्त्र - अ0 - 97, श्लोक 4-6

यदि षष्ठेश	गुरु के साथ हो	नाक
यदि षष्ठेश	शुक्र के साथ हो	नेत्र
यदि षष्ठेश	शनि के साथ हो	पैर
यदि षष्ठेश	राहु/केतु के साथ हो	कुक्षि

षष्ठेश पर सूर्य आदि ग्रहों की दृष्टि द्वारा भी बालक के इन अंगों में घाव, फोड़ा या फुन्सी आदि की जानकारी मिलती है।

अष्टम् एवं व्यय भाव का स्वामित्व

कुण्डली में षष्ठेश के अलावा अष्टमेश एवं व्ययेश भी रोगकारक होते हैं। जातक ग्रन्थों में एकमत से अष्टम स्थान को मृत्युभाव तथा व्यय स्थान को स्वास्थ्य का हानिकारक भाव माना जाता है। मृत्यु महारोग है और स्वास्थ्य की हानि रोगों को खुला निमन्त्रण देती है। अतः अष्टमेश एवं व्ययेश रोगकारक होते हैं।

यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए - कि यदि मंगल या शनि जैसे पापी ग्रह इन स्थानों के स्वामी हों तो वे जिस भाव/ राशि को अपनी युति एवं दृष्टि से प्रभावित करते हैं, उस भाव/राशि से सम्बन्धित अंग में रोगोत्पत्ति की सूचना देते हैं। यदि शुभ ग्रह इन स्थानों के स्वामी हो तो वे अपनी युति एवं दृष्टि द्वारा साधारण या अल्पकालीन रोग की सूचना देते हैं।

अष्टमेश एवं व्ययेश के रोग कारकत्व के प्रसंग में यह स्मरण रखना चाहिए कि इन दोनों की युति एवं दृष्टि का प्रभाव बालरोगोत्पत्ति के कारणों को प्रभावित करता है। अतः इन दोनों का प्रभाव साक्षात् न होकर उपचार (प्रकारान्तर) से पड़ता है।

इस विषय में एक और महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यदि कोई ग्रह अष्टमेश के साथ-साथ लग्नेश हो, या सूर्य एवं चन्द्रमा अष्टमेश हों अथवा व्ययेश त्रिकोणेश हो या सूर्य एवं चन्द्रमा व्ययेश होकर त्रिकोणेश हो या सूर्य एवं चन्द्रमा व्ययेश होकर त्रिकोणेश से सम्बन्ध करें, तो वे रोगकारक नहीं होते।[1]

रोग भाव में स्थिति

छठें भाव में स्थित ग्रह भी बाल रोगकारक होता है। यह ग्रह जिस राशि एवं भाव का स्वामी हो वह राशि एवं भाव जिस अंग का प्रतिनिधित्व करते हैं, उनमें विकार या दुर्बलता की सूचना देता है। इस विषय में यह स्मरण रखना चाहिए कि ऐसा ग्रह जब पाप प्रभाव में हो तो रोग पैदा करता है, अन्यथा नहीं। कारण यह है कि किसी भाव का स्वामी 6, 8 या 12 वें भाव में स्थित होकर उस भाव के शुभफल को नष्ट कर देता है।[2] षष्ठ भाव शारीरिक प्रगति, पुष्टि एवं स्वास्थ्य का अवरोधक होने के कारण रोगकारक माना गया है। इसलिए जो ग्रह इस भाव में स्थित होता है, इसके सम्पर्क से रोगकारक बन जाता है।

उदाहरणार्थ - सर्वार्थ चिन्तामणि के इस योग को देखिए - ''जब पंचमेश छटे भाव में पुत्र कारक गुरु एवं सूर्य के साथ हो, तो जातक की पत्नी को गर्भस्राव होता है या मृत सन्तान होती है।[3] आशय स्पष्ट है कि सन्ततिभाव का स्वामी एवं कारक दोनों छठे स्थान में पाप प्रभाव में रहेंगे, तो गर्भ की पुष्टि एवं विकास सम्भव नहीं हैं

---

1 लघुपाराशरी, श्लोक 8, 9 एवं 11

2 जातक परिजात अध्याय - 11, श्लोक - 4

3 सर्वार्थचिन्तामणि अध्याय - 5, श्लोक - 17

अतः उक्त नियमानुसार पंचम भाव का शुभफल नष्ट होने से गर्भस्राव या गर्भस्थ शिशु की मृत्यु होना स्वाभाविक है।

लग्न में स्थिति या लग्नेश होना

फलित शास्त्र में लग्न स्वास्थ्य एवं समग्र शरीर का प्रतिनिधित्व करती है। इसलिए लग्न एवं लग्नेश पर पाप प्रभाव स्वास्थ्य एवं शरीर की पुष्टि के लिए हितकर नहीं होता। यह लग्न निज या स्वयं की बोधक है। अतः जब कोई ग्रह लग्न में स्थित हो जाता है तो वह अपनी अस्थि आदि धातुओं का विशेष या पूर्णरूपेण प्रतिनिधित्व करता है, यथा -

लग्नस्थ ग्रह	**धातुएं**
सूर्य	अस्थि
चन्द्र	रक्त
मंगल	मांस
बुध	त्वचा
गुरु	वसा (चर्बी)
शुक्र	वीर्य
शनि	स्नायु

सूर्य आदि ग्रह जिन अंग, तत्त्व एवं धातुओं का प्रतिनिधित्व करते हैं, लग्नेश होने पर वे उन तत्व या धातुओं के प्रतिनिधि बन जाते हैं जो शरीर में अधिक व्यापक होते हैं। जैसे सूर्य नेत्र, हृदय एवं हड्डी का कारक या प्रतिनिधि है। यह यदि लग्नेश हो तो

हड्डी का विशेष प्रतिनिधित्व करेगा। हड्डी शरीर में आँख एवं हृदय की अपेक्षा अधिक व्यापक है।

ग्रह	**लग्नेश न होने पर अंग एवं धातुएं**	**लग्न होने पर धातुएं**
सूर्य	नेत्र, हृदय, अस्थि	अस्थि
चन्द्र	मन, फेफड़ा, रक्त	रक्त
मंगल	मांस एवं मज्जा	मांस
बुध	वाणी, श्रवण शक्ति, त्वचा	त्वचा
गुरु	उदर, आँतें, जिगर, चर्बी	बसा (चर्बी)
शुक्र	नेत्र, मूत्र, वीर्य	वीर्य
शनि	पैर, स्नायु	स्नायु

सूर्य आदि ग्रह लग्नेश होकर निर्बल एवं पाप प्रभाव में हों, तो अपने विशेष प्रतिनिधित्व के अनुसार निश्चित रूप से बालक को रोग देते हैं[1] यथा -

ग्रह	**रोग**
सूर्य	अस्थि ज्वर, हड्डी टूटना, अस्थि दौर्बल्य
चन्द्र	रक्त विकार, रक्तस्राव, रक्तचाप
मंगल	सूखा रोग
बुध	दाद, खाज, खुजली, फोड़ा एवं कुष्ठ

1 गदावली अध्याय - 1, श्लोक-18

गुरु	स्थौल्य (मोटापा) एवं दुर्बलता
शुक्र	प्रमेह, मधुमेह, वीर्यविकार, धातुक्षय
शनि	लकवा, स्नायु-दुर्बलता

लग्नेश का नीच राशि में होना भी रोग का सूचक है। क्योंकि लग्नेश बालक के शरीर का प्रतिनिधि है और उसका नीचत्व दुर्बलता का द्योतक है। इस नियम में भी यह अनिवार्य है कि नीच राशि में स्थित लग्नेश पर पाप प्रभाव होने से ही रोग पैदा होता है, अन्यथा शरीर अंग एवं धातुओं में दुर्बलता रहती है।

नीच राशिस्थ लग्नेश	**रोग**[1]
सूर्य	कर्णरोग
चन्द्र	जलोदर
मंगल (मेष लग्न का स्वामी)	हृदयरोग एवं फेफड़ों में विकार
मंगल (वृश्चिक लग्न का स्वामी)	नितम्ब एवं ऊरू में व्रण
बुध (मिथुन लग्न का स्वामी)	घुटनों में दर्द
बुध (कन्या लग्न का स्वामी)	मूत्ररोग
गुरु (धनु लग्न का स्वामी)	मुख रोग
गुरु (मीन लग्न का स्वामी)	कर्ण रोग, फाईलेरिया
शुक्र (वृष लग्न का स्वामी)	उदर विकार
शुक्र (तुला लग्न का स्वामी)	नेत्र रोग

---

1 फलदीपिका - रोगनिर्णयाध्याय

शनि (मकर लग्न का स्वामी)	हृदयशूल
शनि (कुम्भ लग्न का स्वामी)	श्वासनली में विकार, गलरोग

नीच राशि, शत्रु राशि में स्थिति या निर्बलता

नीच राशि, शत्रु राशि या अन्य प्रकार से निर्बल ग्रह शरीर में अपनी धातु की अपेक्षित-पूर्ति में कमी का सूचक होता है और वह बालक के शरीर के जिस अंग का प्रतिनिधित्व करता उसके सम्यक् विकास में बाधा की सूचना देता है। परिणामतः इस स्थिति में ग्रह कभी-कभी अपनी धातु की कमी और अपनी अंग के विकास में बाधा या विकार पैदा होने का सूचक होने के कारण बाल रोग कारक माना जाता है।

नीच राशिगत, शत्रुराशिगत या निर्बल

ग्रह	**बालक को होने वाला रोग**
सूर्य	पित्तज्वर, दाह, नेत्रपीड़ा, हृदयदौर्बल्य
चन्द्र	शीतज्वर, कफ, जलोदर, उन्माद
मंगल	जलना, चोटलगना, गुप्तरोग, रक्तस्राव
बुध	त्रिदोष, चर्मरोग, कर्णरोग
गुरु	सूजन, कमर एवं पैर में पीड़ा
शुक्र	मूत्ररोग, वीर्यरोग, नेत्रविकार
शनि	स्नायु विकार, वायुविकार एवं दर्द

अवरोहीपन

जो ग्रह अपने परमोच्च से आगे और परम नीच से पहले अर्थात् परमोच्च एवं परमनीच के बीच में छह राशियों में कहीं भी हो - वह अवरोही कहलाता है। अवरोही

ग्रह की दशा को अवरोहिणी कहते हैं।[1] प्रत्येक ग्रह की अवरोहिणी दशा सामान्यतया रोगदायक होती है।[2]

क्रूरषष्ठयंश में स्थिति

प्रत्येक राशि में 30 अंश एवं 60 षष्ठयंश होते है। इसलिए प्रत्येक षष्ठ्यंशों के स्वामियों के नाम इस प्रकार है - 1. घोर, 2. राक्षस, 3. देव, 4. कुबेर, 5. यक्षोगण, 6. किन्नर, 7. भ्रष्ट, 8. कुलध्न, 9. गरल, 10. अग्नि, 11. माया, 12. यम, 13. वरूण, 14. इन्द्र, 15. कला, 16. सर्प, 17. अमृत, 18. चन्द्र, 19. मृदु, 20. कोमल, 21. पदम्, 22. विष्णु, 23. गुरु, 24. शिव, 25. देव, 26. आर्द्र, 27. कलिनाश, 28. क्षितीश, 29. कमलाकर, 30. मन्दात्म, 31. मृत्युकर, 32. काल, 33. दावाग्नि, 34. घोरा, 35. अधम, 36. कण्ठक, 37. सुधा, 38. अमृत, 39. पूर्णचन्द्र, 40. विषदग्ध, 41. कुलनाश, 42. मुख्य, 43. वंशक्षय, 44. उत्पातक, 45. काल, 46. सौम्य, 47. मृदुष्ट, 48. सुशीतल, 49. दंष्ट्राकराल, 50. इन्दुमुख, 51. प्रवीण, 52. कालाग्नि, 53. दण्डायुध, 54. निर्मल, 55. शुभाकर, 56. अशोभन, 57. शीतल, 58. सुधासमुद्र, 59. भ्रमण एवं 60. इन्दुरेखा। विषम राशियों में षष्ठ्यंश की गणना घोर से इन्दुरेखा तक यथाक्रमेण और समराशियों में षष्ठ्यंश के स्वामियों की गणना इन्दुरेखा से घोर तक व्युत्क्रम से की जाती है। इन साठ षष्ठ्यंशों के स्वामियों में जिनके नाम शुभ है - उन्हें शुभ षष्ठ्यंश और जिनक नाम क्रूर हैं, उन्हें क्रूर षष्ठ्यंश

---

1 बृहज्जातक, अध्याय - 8, श्लोक-6

2 तत्रैव - अध्याय - 8

कहा जाता है।[1] क्रूर षष्ठ्यंश में स्थित ग्रह की दशा में बालक को रोग होते हैं।[2] इसलिए क्रूर षष्ठ्यंश में स्थित ग्रह रोगकारक कहलाता है।

पापग्रहों का प्रभाव

पापग्रहों के साथ होना, अर्थात् ज्योतिष ग्रन्थों में सूर्य मंगल, शनि राहू और केतु को पाप ग्रह माना गया है।[3] पापग्रहों से सम्बन्ध होना - पाप प्रभाव कहलाता है। सम्बन्ध चार प्रकार का हुआ करता है।

1. दृष्टि सम्बन्ध - किसी ग्रह का पाप ग्रह से दृष्ट होना।
2. युति सम्बन्ध - ग्रह का पाप ग्रहों से युत होना।
3. एकान्तर सम्बन्ध - ग्रहों का एक-दूसरे के भाव में होना।
4. स्थिति सम्बन्ध - किसी भाव में पाप ग्रहों की स्थिति।

जिस भाव के स्वामी पर पाप ग्रहों का प्रभाव हो, वह अपने भाव राशि के अंग में विकार या रोग का सूचक होता है।[4]

मारक/ अरिष्टकारक ग्रह	**बाल रोग**
सूर्य	अग्निदाह, उष्णज्वर, पित्तक्षोभ एवं ब्रेन हैमरेज।
चन्द्र	हैजा, जलोदर, प्ल्यूरेसी, तपेदिक एवं निम्न रक्तचाप।
मंगल	जलना, दुर्घटना, रक्तविकार, बवासीर, सुजाक, अतिसार, संग्रहणी, रक्तस्राव, उच्चरक्त चाप,

1 जातक पारिजात, अध्याय -1, श्लोक 38-43

2 सर्वार्थचिन्तामणि, अध्याय - 13

3 साराबली, अध्याय - 4, श्लोक - 9

4 गदावली, अध्याय - 1, श्लोक - 13

	करन्ट लगना।
बुध	पाण्डु, भ्रान्ति, यकृत् एवं त्रिदोष।
गुरु	कफ रोग किन्तु मृत्यु के समय कष्ट नहीं होता।
शुक्र	प्रमेह, मधुमेह, वीर्य विकार एवं मूत्र रोग।
शनि	सन्निपात, लकवा एवं कैंसर।
राहु	कुष्ठ, छूतरोग विष एवं कीटाणुजन्य रोग।
केतु	दुर्घटना, सैप्टिक, हृदयगति रूकना, वायरसजन्य रोग।

अष्टम स्थान को मृत्यु स्थान कहा जाता है, इसमें स्थित ग्रह जब पाप प्रभाव युकत होता है, तो उसको भी मारक कहते हैं। जातक पारिजात में ऐसे मारक ग्रहों की विभिन्न स्थिति में बालक के मृत्यु योगों के प्रसंग में उनके हेतुभूत बालरोग इस प्रकार बतलाये हैं[1] -

	योग	**रोग**
1.	सूर्य एवं मंगल बलहीन तथा मारक हों धन स्थान में पाप ग्रह हों।	पित्त रोग।
2.	चन्द्रमा या गुरु मारक स्थान में जल राशि में पाप दृष्ट हों	क्षय रोग।
3.	शुक्र अष्टम में पाप दृष्ट हो	वातरोग, प्रमेह या क्षय।
4.	राहु, अष्टम में पाप दृष्ट हो	चेचक, उष्णता जन्य रोग, सर्पदंश।
5.	केतु अष्टम में पाप दृष्ट हो	मसूरिका या पित्त रोग।

1 जातक पारिजात - आयुर्दायाध्याय श्लोक-87, 88, 91-92

अरिष्टकारकता एवं मारकता

बचपन में अकाल मृत्यु के सूचक योग बालारिष्ट योग कहलाते हैं। ये बच्चों की बीमारियों के सूचक होते हैं। यदि अरिष्ट योग भंग होता हो, तो उस योग से बच्चों को बीमारियां होती हैं। किन्तु अनका जीवन सुरक्षित रहता है - अर्थात् रोग चिकित्सा द्वारा ठीक हो जाते हैं। यदि अरिष्टयोग का भंग न हो, तो इन बीमारियों से बचपन में मृत्यु हो जाती है।

होरा शास्त्र में मुख्य रूप से तीन कुल हैं - 1. पाराशर, 2. जैमिनी एवं 3. वराहमिहिर। पराशर के अनुसार द्वितीयेश एवं सप्तमेश ग्रह मारक होता है।[1] यह मत फलित ज्योतिष में प्रायः सर्वसम्मत है। जैमिनी के अनुसार ब्रह्म, छिद्र, रूद्र एवं शूल ग्रह मारक होते हैं। किन्तु इनकी दशाओं में कौन-कौन से रोगों से मृत्यु होती है? यह जैमिनीसूत्र के किसी भी प्रकाशित संस्करण में देखने को नहीं मिलता। वराहमिहिर के कुल में अष्टम स्थान को मारक स्थान माना गया है। इसीलिए इस स्थान को मृत्यु भाव कहते हैं।[2]

मृत्यु एक महारोग है। अतः मारक एवं बालारिष्ट कारकग्रह रोगकारक होता है। आचार्य मन्त्रेश्वर के अनुसार सूर्य आदि ग्रह मारक या अरिष्टकारक ग्रह रोगकारक हो, तो निम्नलिखित रोगों से बालक को मृत्यु देता है[3]-

---

1 लघुपाराशरी - अध्याय - 3, श्लोक - 1

2 बृहज्जातक - अध्याय - 3

3 फलदीपिका - रोग निर्णयाध्याय, श्लोक - 14-15

मारक/ अरिष्टकारक ग्रह	बाल रोग
सूर्य	अग्नि दाह, उष्णज्वर, पित्त क्षोभ एवं ब्रेन हैमरेज।
चन्द्र	हैजा, जलोदर, प्ल्यूरेसी, तपेदिक एवं निम्न रक्तचाप।
मंगल	जलना, दुर्घटना, रक्तविकार, बवासीर, सुजाक अतिसार, संग्रहणी, रक्तस्राव, उच्चरक्तचाप।

भाव एवं राशियों की रोग कारकता का परिज्ञान

जातक ग्रन्थों में भाव एवं राशियों को बालरोगकारक बनाने वाले दस हेतु बतलाये गए हैं। इन दस कारणों में से पहले नौ कारण राशि या भाव के नैसर्गिक फल में विकार की सूचना देते हैं। इस प्रकार इन कारणों से जिस राशि एवं भाव में विकार का कारण स्पष्ट रूप से दिखलाई दे, तो वह राशि एवं भाव शरीर के जिस शीर्ष आदि अंग[1] अस्थि आदि धातु[2] पित्त आदि दोष[3] का प्रतिनिधित्व करता हो, उस अंग, धातु एवं दोष के माध्यम से बालक को रोग उत्पन्न होता है।

शुभ ग्रहों की युति-दृष्टि को शुभ प्रभाव कहते हैं। यह शुभ प्रभाव ''पारसमणि'' के समान होता है। पारस के स्पर्श मात्र से लोहा खरा सोना बन जाता है, वैसे ही शुभ प्रभाव से समस्त अशुभ योग - चाहें वे रोगकारक हों या अरिष्टकारक - प्रभावहीन हो जाते हैं। यही कारण है कि होराशास्त्र के सभी कुलों में शुभ ग्रहों की युति-दृष्टि से अरिष्ट, अनिष्ट एवम् अशुभ प्रभाव के दूर होने की बात

---

1 बृहत्पाराशर होरा शास्त्र अध्याय - 42, श्लोक - 42

2 वही, श्लोक - 5-6

3 वही, श्लोक - 5-6

पग-पग पर रेखांकित की गई है। जैमिनी सूत्र में "शुभदृग्योगान्न" अर्थात् "शुभ ग्रहों की दृष्टि-युति से ऐसा नहीं होता" - इस सूत्र की बार-बार आवृत्ति को, बृहत्पाराशर होराशास्त्र, बृहज्जातक एवम् अन्य होरा ग्रन्थों के अरिष्टभंगाध्याय आदि में इसी बात की अनेक बार पुनरावृत्ति को साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। इसीलिए राशि एवं भाव को रोगकारक बनाने वाले उक्त नौ कारणों के पूरे के पूरे परिणाम को शुभग्रहों का प्रभाव दूर करने में समर्थ है। अतः रोग विचार के प्रसंग में दसवां कारण सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। यदि राशि एवं भाव पर शुभ प्रभाव न हो, तभी रोग उत्पन्न हो सकता है, अन्यथा नहीं।

भाव एवं राशियों की रोग कारकता के दस हेतु -

1. षष्ठ भाव।
2. अष्टम एवं व्यय भाव।
3. पाप ग्रहों के मध्य में स्थिति।
4. पाप ग्रहों की युति या दृष्टि।
5. त्रिक स्थान से सम्बन्ध।
6. स्वामियों की अनिष्ट स्थान में स्थिति।
7. भाव, राशि एवं इनके स्वामियों की दुर्बलता।
8. भाव से त्रिक या त्रिकोण में पापग्रहों का होना।
9. रोग कारक ग्रहों से सम्बन्ध।
10. शुभ ग्रहों का प्रभाव न होना।

1. षष्ठ भाव

षष्ठ भाव का नाम ही रोग भाव है। इस भाव पर शुभ ग्रहों का प्रभाव बाल रोगों में वृद्धि का कारक और पाप ग्रहों का प्रभाव बाल रोगों का ह्रास करता है। जातक ग्रन्थों में भाव फल का विश्लेषण करते हुए सिद्धान्त-पक्ष इस प्रकार निरूपित

किया गया है - "कि जो भाव शुभ ग्रह या अपने स्वामी से दृष्ट-युत हो, उस भाव के नैसर्गिक फल की वृद्धि होती है और जो भाव पाप ग्रह से दृष्ट-युत हो, उसके प्राकृतिक फल का ह्रास होता है।[1] षष्ठभाव रोग भाव है ओर इसका प्राकृतिक फल रोगोत्पत्ति है। अतः इस पर शुभ प्रभाव रोगों को बढ़ाता है, जब कि पापप्रभाव रोगों को घटाता है।

इस भाव में मेषादि राशियां निम्नलिखित बाल रोगों को उत्पन्न करती है।

राशियाँ	**बाल रोग**
मेष	पित्तज्वर, दाह, व्रण, जलना, लू लगना।
वृष	त्रिदोष, सन्निपात, नपुंसकता, अग्नि दाह।
मिथुन	खांसी, दमा, उष्णशूल, कामरोग।
कर्क	उन्माद, वालरोग, अरूचि, जलोदर।
सिंह	ज्वर, स्फोट, शिर-शूल स्नायनिक-तनाव।
कन्या	गुप्तरोग, स्त्रीसंसर्गजन्य रोग, गर्भाशय विकार।
तुला	धीज्वर, सन्निपात, प्रमेह, गिरना।
वृश्चिक	प्लीहा, तिल्ली, संग्रहणी, पाण्डुरोग।
धनु	आन्त्रविकार, उपर से गिरना, पैर में चोट।
मकर	उदर-शूल, अरूचि, बुद्धिभ्रम स्नायविक रोग।
कुम्भ	खांसी, ज्वर, प्रतिश्याय, क्षय।
मीन	जलोदर, कफ एवं शीतविकार, डूबना।

---

1 क. बृहत्पाराशर होरा शास्त्र अध्याय - 11, श्लोक - 14

ख. जातक पारिजात, अध्याय - 11, श्लोक - 1

ग. षट्पंचाशिका, श्लोक - 5

2. अष्टम् एवं व्यय भाव

अष्टमभाव मृत्यु या नाश का भाव होने के कारण शरीर एवं स्वास्थ्य का भी नाशक है। व्ययभाव लग्न से 12 वां भाव होने से स्वास्थ्य के ह्रास का द्योतक है। इसलिए इन दोनों भावों तथा इनमें स्थित राशियों को रोग-सूचक माना जाता है। परिणामतः इनमें स्थित ग्रह एवं राशियां रोग कारक हो जाते हैं।

होराशास्त्र के आचार्यों ने इन दोनों स्थानों की इस विलक्षणता को ध्यान में रखकर एक सर्वसम्मत नियम घोषित किया - "कि सभी ग्रह अष्टम एवं व्यय स्थान में नेष्ट होते है।"[1] षष्ट एवं व्यय भाव को स्वास्थ्य के लिए हानिकारक एवं रोगोत्पादक मानते हुए आचार्यों ने कहा कि - "यदि लग्नेश पाप ग्रह के साथ 6, 8 या 12 वें स्थान में हो तो शारीरिक - सुख नहीं मिलता है।[2]
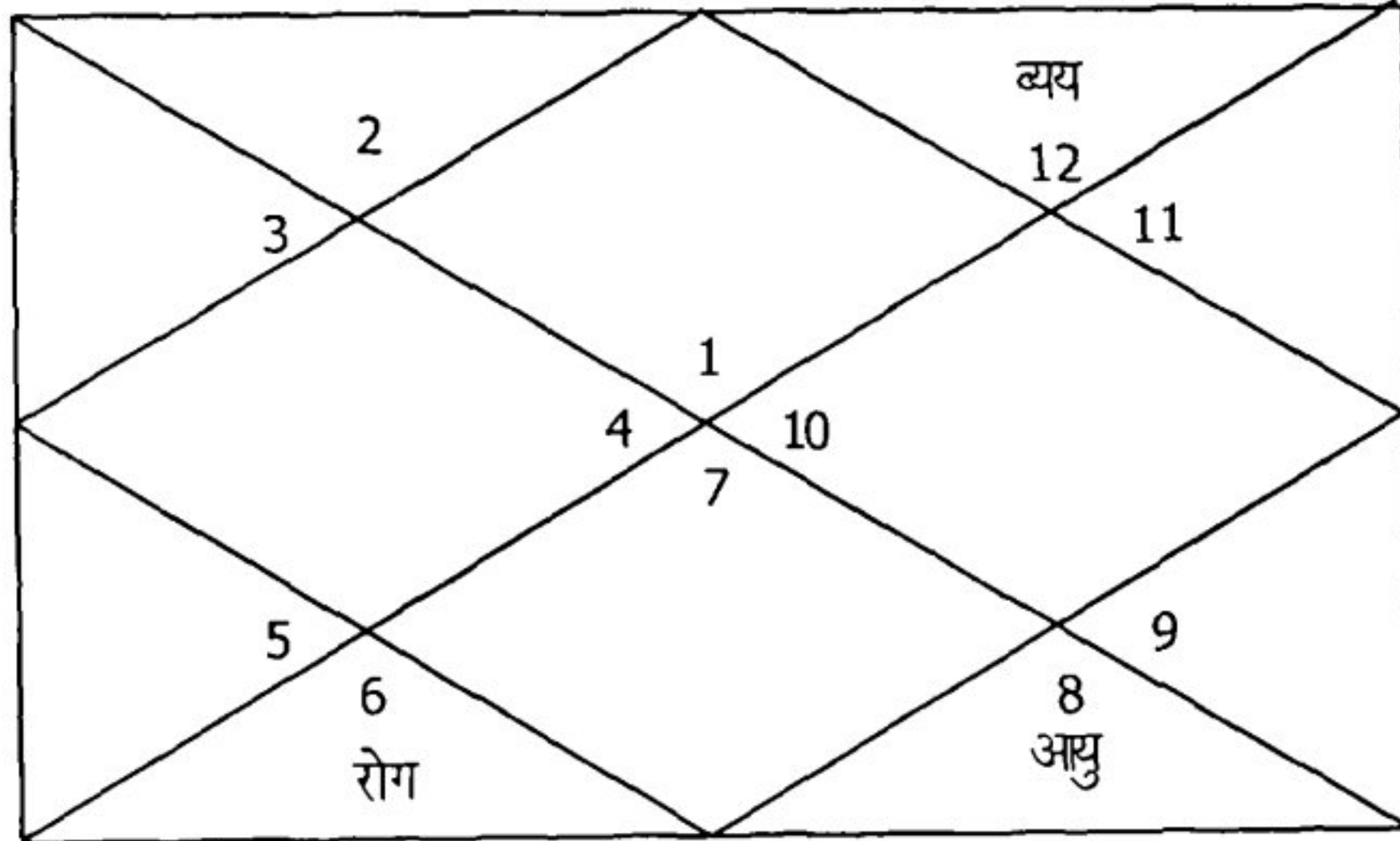
1 "सर्वे नेष्टा : व्ययाष्टमगाः।"

2 जातक पारिजात - आ0-11 श्लोक-33

क. सक्रूरो देहयोदेहसोरेव्यहाऽन्त्यारिरन्ध्रगः

ख. देहाधीशः सपापः व्ययरिपुमृतिगश्चेत्तदा देहसौख्यं नस्यात्।

3. पापग्रहों के मध्य में स्थिति

जो भाव एवं राशि दो पापग्रहों के बीच में हो, वह जिस अंग का प्रतिनिधित्व करती है, पाप प्रभाववश उसमें विकार होने की सूचना देती है। यदि भाव एवं राशि से बारहवें स्थान में स्थित पापग्रह मार्गी और दूसरे भाव में स्थित ग्रह वक्री हो, तो पापकर्ती योग होता है। इस पाप कर्त्री में अनुलोम एवं विलोम गति से चलने वाले पाप ग्रहों की कैंची। उस राशि एवं भाव से सम्बन्धित अंग के स्वास्थ्य एवं विकास को छिन्न-भिन्न कर देती है। जो राशि एवं बालक के शरीर के जिस अंग का प्रतिनिधित्व करती है उससे सम्बन्धित रोग को उत्पन्न करती है।

उदाहरण स्वरूप कुण्डली द्रष्टव्य है -
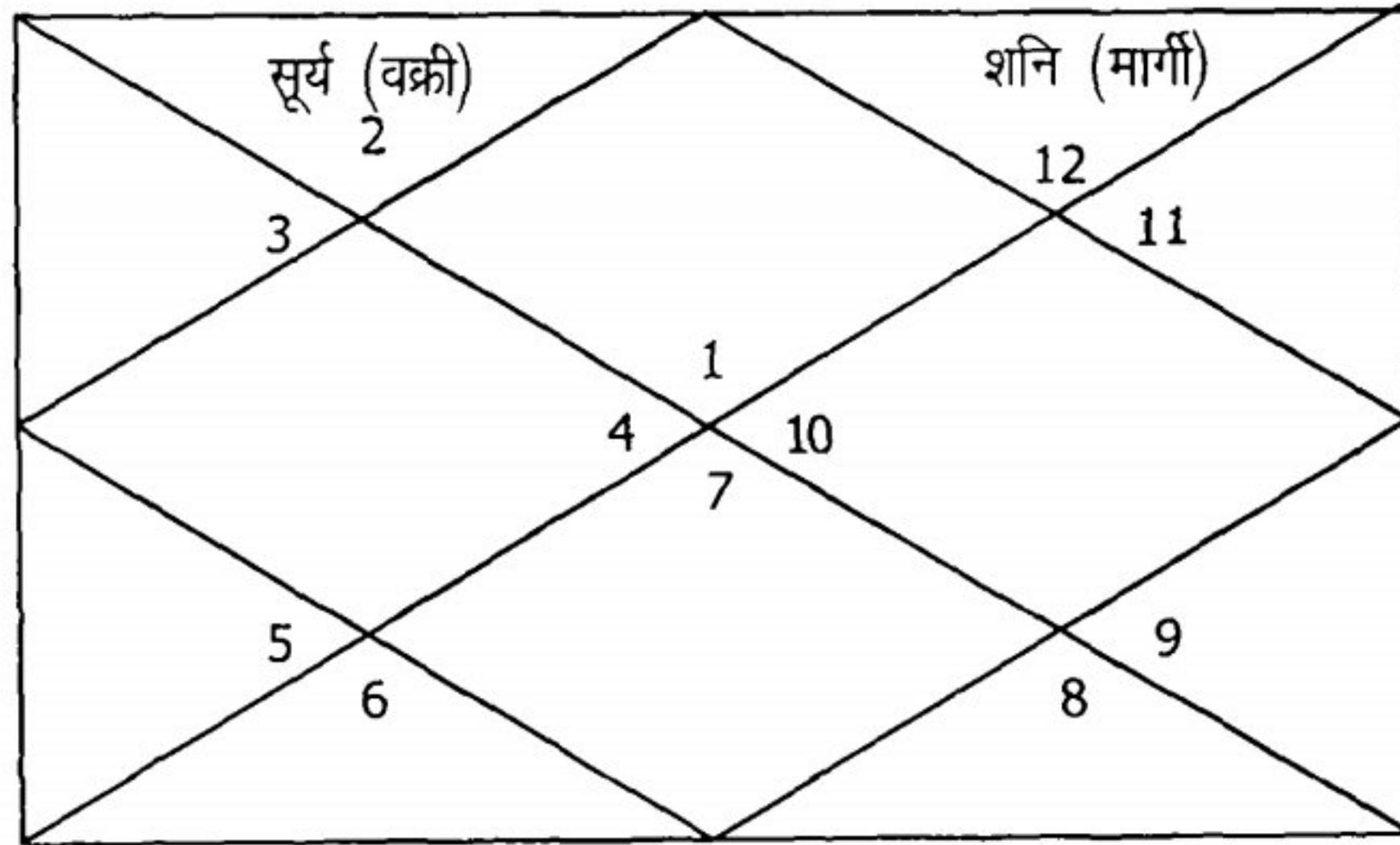
प्रस्तुत उदाहरण में मेष राशि एवं लग्न (प्रथम) भाव मार्गी शनि जिसकी अनुलोम गति है और वक्री सूर्य जिसकी गति विलोम है के मध्य में स्थित है। अतएव मेष राशि बालक के जिस अंग का प्रतिनिधित्व करती है उसमें रोग को उत्पन्न करती है। बालक के शरीर के अंग की प्रतिनिधि राशियां एवं भाव और उससे सम्बन्धित रोगों का परिचय अग्रिम अध्याय में दिया गया है।

4. पापग्रहों की युति या दृष्टि

पाप ग्रहों की युति-दृष्टि को पापप्रभाव कहते हैं। यह बाल रोगों की उत्पत्ति का प्रमुख घटक होता है। कारण यह है कि जो भाव शुभ ग्रहों से युत या दृष्ट होता है, उसके फल की वृद्धि और जो भाव पापग्रहों से युत या दृष्ट होता है, उसके फल का ह्रास होता है।[1] इसलिए जिस राशि/भाव में पाप ग्रह स्थित हो अथवा जिस राशि/ भाव पर पापग्रहों की दृष्टि हो, वे राशि/भाव जिस अंग का प्रतिनिधित्व करते हैं, शरीर के उस अंग में पाप प्रभाव वश विकार की सूचना मिलती है। इसी कारण राशि या भाव का पाप ग्रहों से युत अथवा दृष्ट होना बालरोगोत्पत्ति का प्रमुख कारण माना जाता है। उदाहरण कुण्डली -
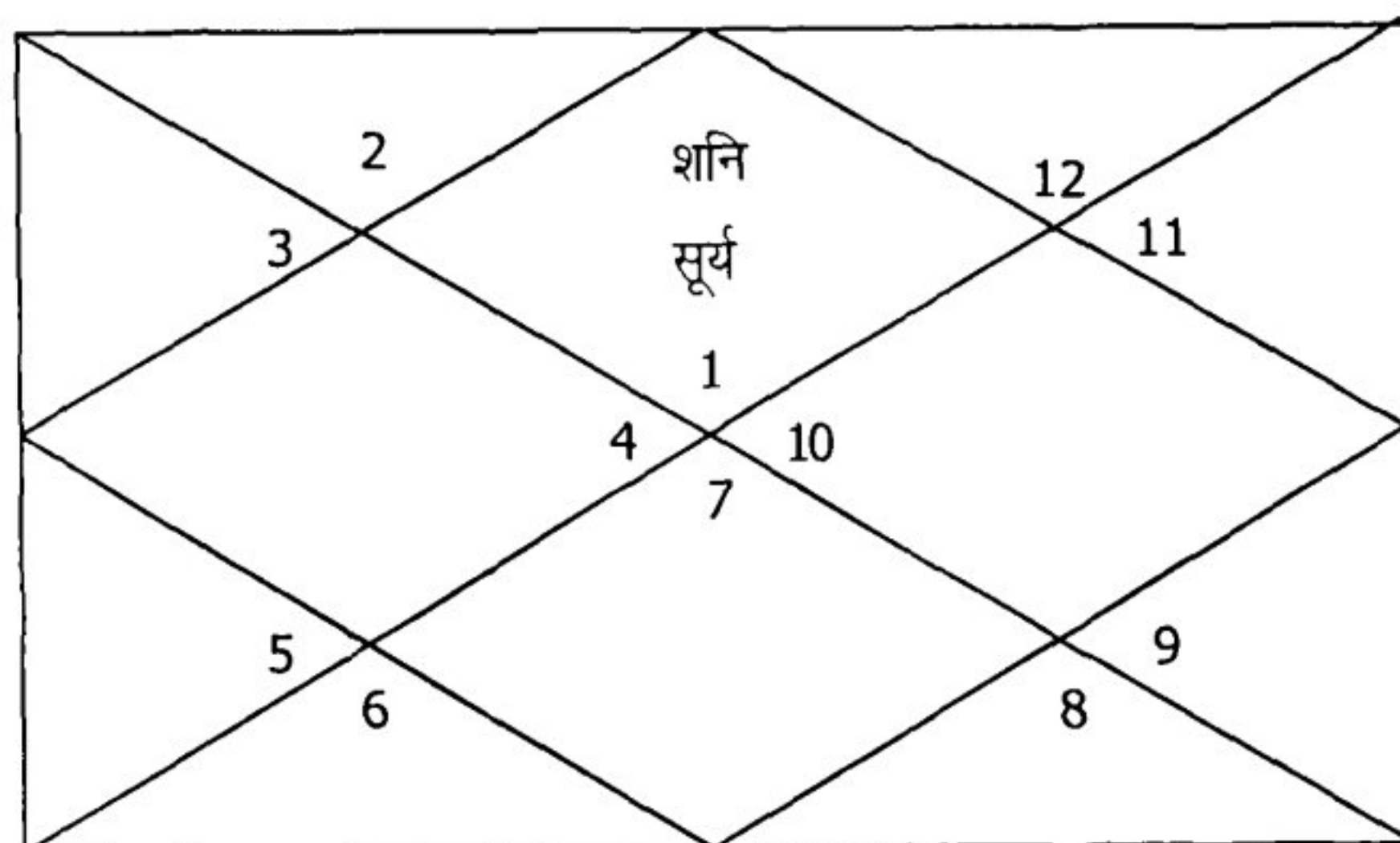
1 क. जातक पारिजात - अध्याय - 11, श्लोक - 1

ख. प्रश्न मार्ग, अध्याय - 14, श्लोक - 25, 26

प्रस्तुत उदाहरण में पाप ग्रहों शनि एवं सूर्य से प्रथम भाव युत है और सप्तम भाव दृष्ट है। ये ग्रह स्थिति प्रथम भाव से एवं सप्तम से सम्बन्धित अंग में रोग को देता है।

5. त्रिकस्थान से सम्बन्ध

षष्ट, अष्टम एवं द्वादश स्थानों की त्रिक संज्ञा मानी जाती है।[1] इसमें से षष्ठ स्थान रोग का, अष्टम मृत्यु का और द्वादश स्थान स्वास्थ्य के ह्रास का सूचक होता है। जिस भाव का स्वामी इन भावों में हो, या त्रिकेश जिस भाव/राशि में हो उसका फल नष्ट होता है।[2] इसलिए आचार्यों ने त्रिक स्थान या त्रिकेश से सम्बन्धित भाव/राशि को अनिष्टदायक/ बालरोगकारक माना है।[3] सारांश यह है कि -

(i.) जिस राशि / भाव का स्वामी त्रिक स्थान में हो।

(ii.) जिस राशि/ भाव का स्वामी त्रिकेश से युत/ दृष्ट हो।

(iii.) जिस राशि / भाव में त्रिकेश बैठा हो।

उससे सम्बन्धित अंग में विकार / रोग होता है।

(i.) जिस राशि / भाव का स्वामी त्रिक स्थान में हो।

(ii.) जिस राशि/ भाव का स्वामी त्रिकेश से युत/ दृष्ट हो।

(iii.) जिस राशि / भाव में त्रिकेश बैठा हो।

---

1 सारावली, अध्याय - श्लोक -

2 जातक पारिजात - अध्याय - 21, श्लोक - 4

3 प्रश्नमार्ग, अध्याय - 11, श्लोक - 29

1. जिस राशि/ भाव का स्वामी त्रिक स्थान में हो।
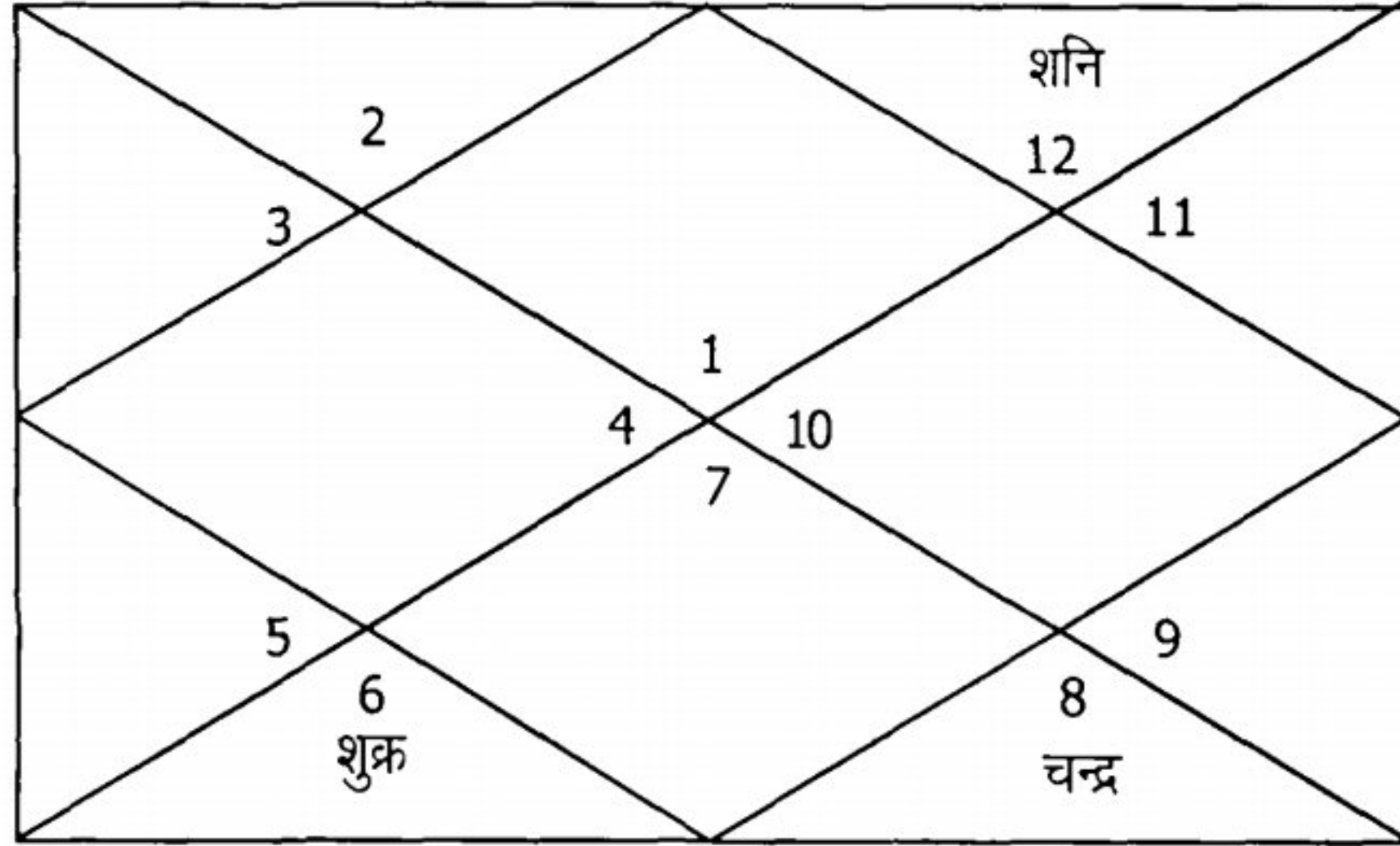
2. जिस राशि/ भाव का स्वामी त्रिकेश से युत/देखा जाता हो।
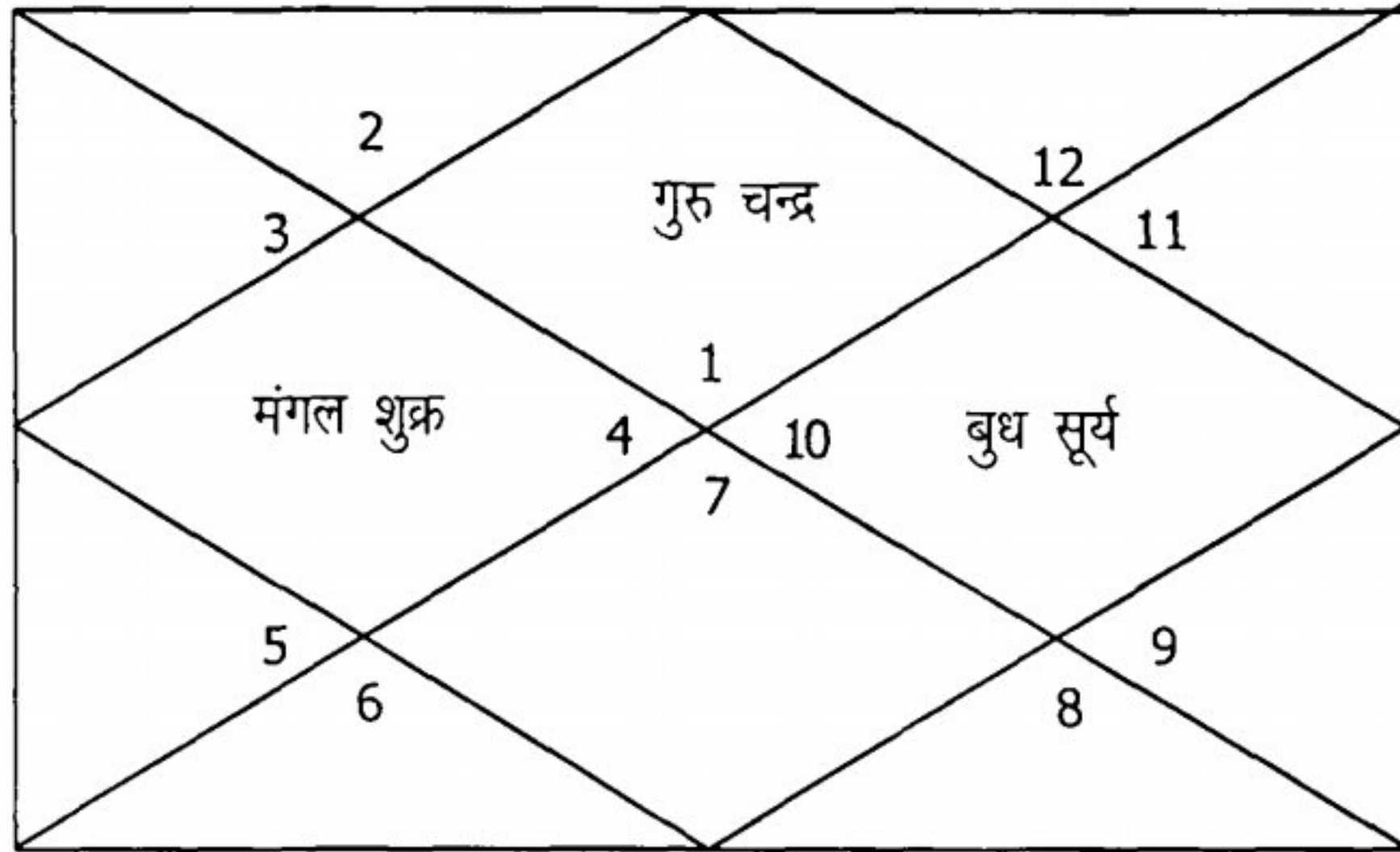
3. जिस राशि/ भाव में त्रिकेश बैठा हो।
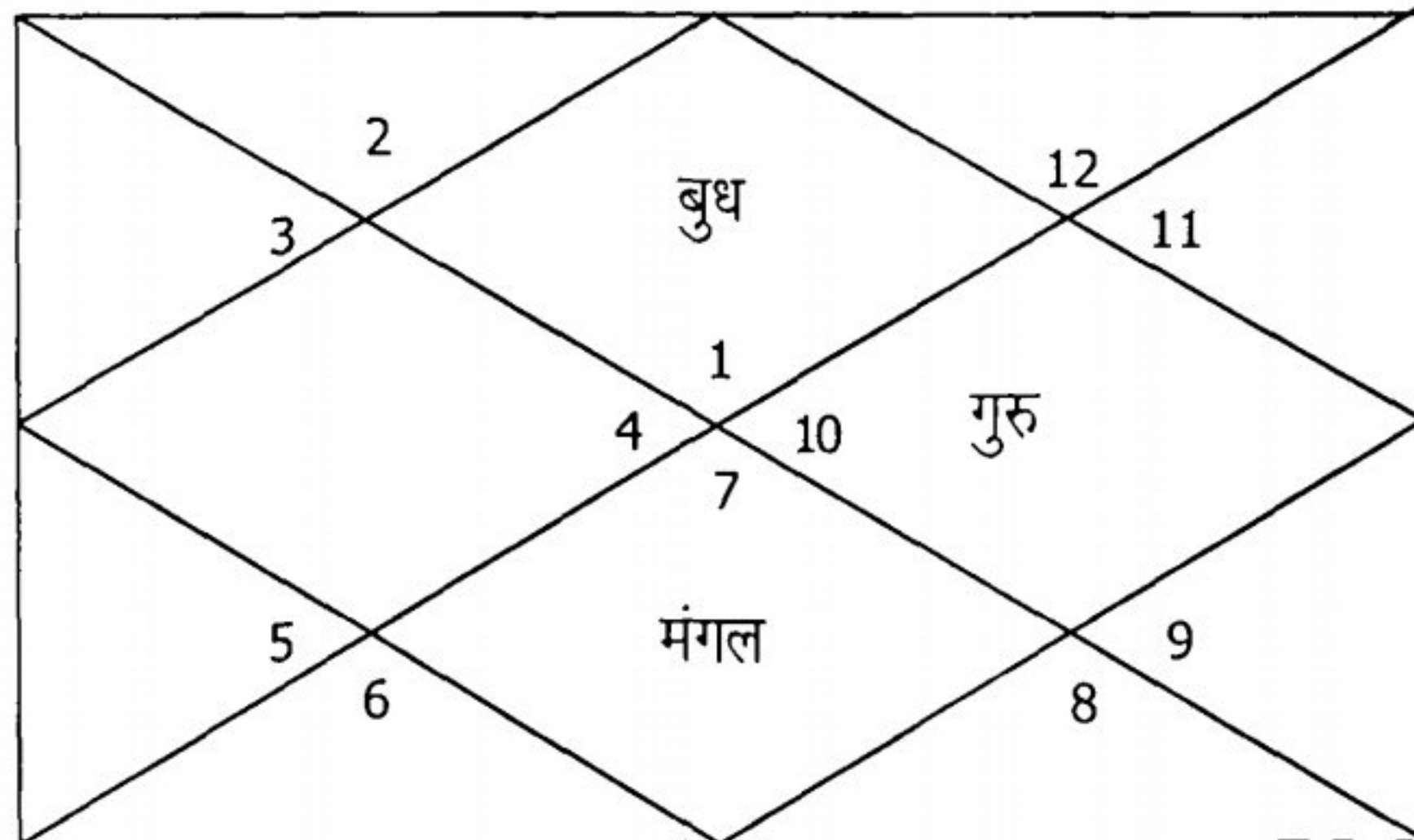
6. स्वामियों की अनिष्ट स्थान में स्थिति

जिस प्रकार किसी राशि / भाव के स्वामी की त्रिकस्थान में स्थिति से वह रोग कारक हो जाता है। उसी प्रकार किसी राशि/ भाव का स्वामी अनिष्ट स्थान में हो, तो वह भी रोग कारक हो जाता है।

कुण्डली में दो प्रकार के स्थान होते हैं। - 1. इष्ट स्थान एवं 2. अनिष्ट स्थान। ये शुभ एवं पाप ग्रहों के लिए भिन्न-भिन्न होते हैं - जैसे शुभ ग्रहों के लिए - तृतीय, षष्ठ, अष्टम एवं द्वादश स्थान अनिष्ट स्थान और पाप ग्रहों के लिए तृतीय, षष्ठ एवम् एकादश के अतिरिक्त सभी स्थान अनिष्ट स्थान होते हैं।[1]

इसलिए किसी भी कुण्डली में तृतीय, षष्ठ, अष्टम या द्वादश में स्थित शुभ ग्रह और त्रिषडाय के अलावा अन्यत्र स्थित पाप ग्रह अपने अंग, धातु, एवं दोषों के माध्यम से बालरोगोत्पत्ति की सूचना देता है।

7. भाव, राशि एवम् इनके स्वामियों की दुर्बलता

जो भाव या राशि निर्बल हो अथवा जिस भाव या राशि का स्वामी निर्बल हो उससे सम्बन्धित अंग में दुर्बलता या रोग होता है। इसका कारण यह है कि राशि, भाव या भावेश की दुर्बलता तत्सम्बन्धी अंग के विकास में अवरोधक होने से बाल रोगकारक होती है।[2]

---

1 प्रश्नमार्ग, अध्याय - 14, श्लोक - 44

2 प्रश्नमार्ग, श्लोक - 28 एवं 30

8. भाव से त्रिक या त्रिकोण में पाप ग्रहों का होना

फलित के आचार्यों का मत है कि जिस भाव से 6, 8 या 12वें स्थान में अथवा 5 एवं 9वें स्थान में पाप ग्रह हो उस भाव के फल का ह्रास होता है।[1] इसलिए जिस भाव से त्रिक या त्रिकोण में पाप ग्रह होते हैं, उस भाव से सम्बन्धित अंग में विकार के सूचक होते हैं।

9. रोगकारक ग्रहों से सम्बन्ध

इस अध्याय के प्रारम्भ में बालरोग कारक ग्रह और उसके कारणों की चर्चा की जा चुकी है। इन रोग कारक ग्रहों से जिस राशि या भाव का सम्बन्ध हो, वह शरीर के जिस अंग का प्रतिनिधित्व करती है, उसमें विकार या रोग पैदा होता है।

10. शुभ ग्रहों के प्रभाव का न होना

शुभ ग्रहों की युति एवं दृष्टि को शुभ प्रभाव कहते हैं। जिस राशि या भाव पर शुभ ग्रहों की युति या दृष्टि हो उस राशि/भाव से सम्बन्धित अंग पुष्ट एवं स्वस्थ रहता है।[2] इसलिए जिस राशि या भाव पर शुभप्रभाव न हो, उससे सम्बन्धित अंग में बाल रोगोत्पत्ति की संभावना होती है।

---

1 प्रश्नमार्ग, अध्याय - 14, श्लोक - 30

2 लघुजातक, अध्याय - 1, श्लोक - 3
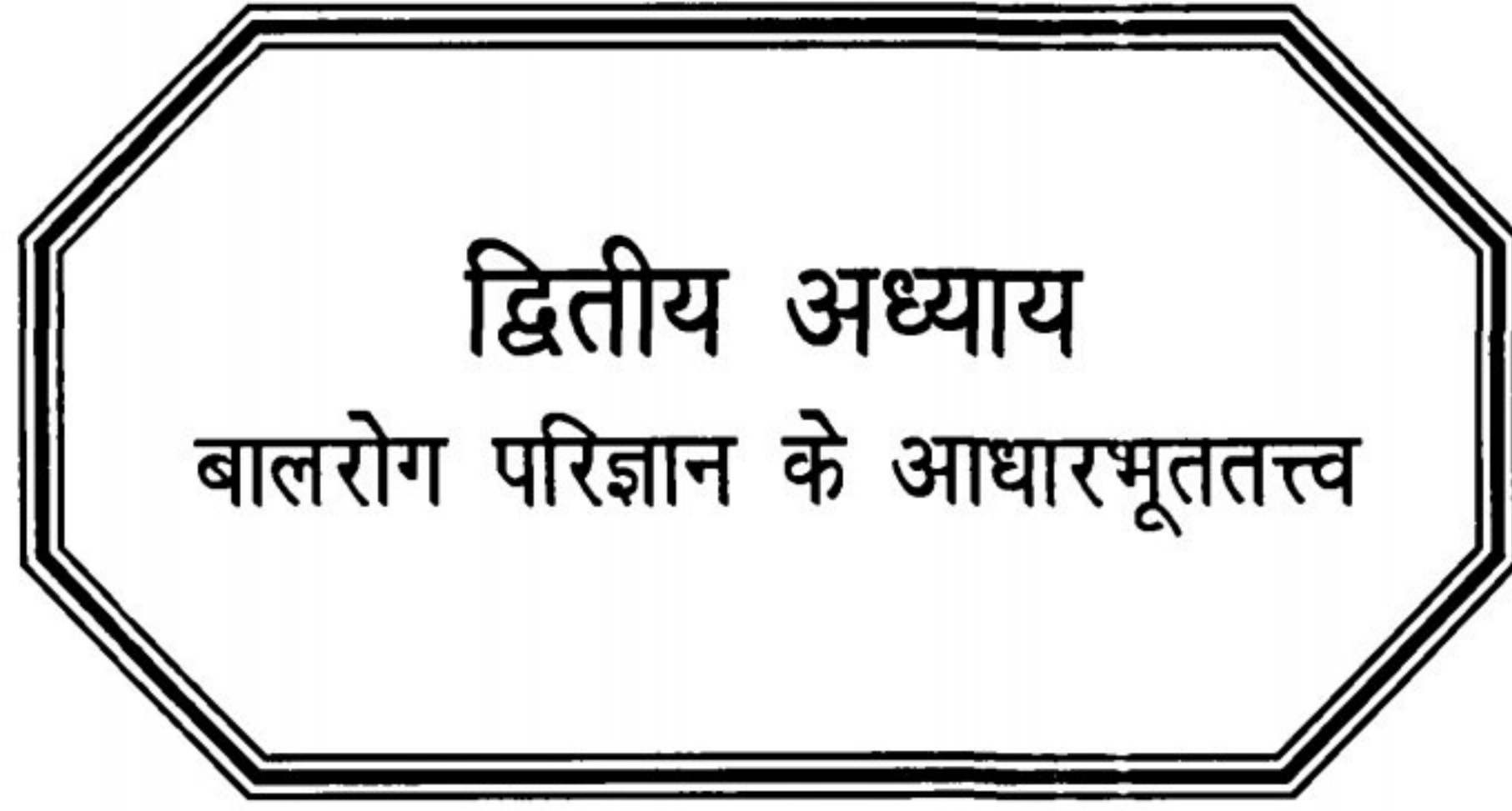
द्वितीय अध्याय

बालरोग परिज्ञान के आधारभूततत्त्व

1. बालरोग परिज्ञान के उपकरण

भारतीय-ज्योतिष का मानना है कि बालक अपने पूर्वार्जित अशुभ अथवा अनुचित कर्मों के प्रभाव-वश रोगी बनता है।[1] आयुर्वेद का सिद्धान्त पक्ष है कि सामान्यतया मिथ्या (अनुचित) आहार एवं विहार से रोग उत्पन्न होते है।[2] इस जन्म के अनुचित कर्मों (आहार एवं विहार) की अनियमितता कह सकते है, जबकि जन्मान्तरों के अनुचित कर्मों को परम्परया अशुभ या पाप-कर्म कहा जाता है।

पूर्व, वर्तमान और भविष्य के सभी कर्मों को तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया जाता है - 1. संचित, 2. प्रारब्ध एवं 3. क्रियमाण। इन कर्मों के फल को जानने की ज्योतिष शास्त्र में तीन प्रविधियाँ आविष्कृत एवं विकसित की गयी है। बाल-रोगों के परिज्ञान के तीन उपकरण माने जाते हैं - 1. योग, 2. दशा एवं 3. गोचर।

होरा शास्त्र की मुख्य विशेषता यह है कि जन्म जन्मान्तरों में अर्जित कर्मों का इस जन्म में कब-कब, क्या-क्या और कैसा-कैसा फल मिलेगा? इसको यह शास्त्र ठीक उसी प्रकार साफ-साफ बतला देता है, जैसे दीपक अन्धकार में रखे हुए पदार्थों को अभिव्यक्त कर देता है।[3] अतः जन्मान्तरों में अर्जित कर्मों के परिणाम स्वरूप होने वाले रोगों का ज्ञान होराशास्त्र में प्रतिपादित योग, दशा एवं गोचर विधि से किया जाता है।

---

1 प्रश्नमार्ग - सम्पादक शुकदेव चतुर्वेदी अध्याय - 13, श्लोक - 29

2 चरक संहिता - उत्तरतन्त्र, श्लोक - 52

3 लघुजातक, अध्याय - 1, श्लोक - 2

बालरोग ज्ञान का प्रमुख उपकरण - ग्रहयोग

पूर्वार्जित कर्मों के प्रभाववश उत्पन्न होने वाले रोगों का परिज्ञान होराशास्त्र मे प्रतिपादित ग्रह योगों के द्वारा किया जाता है।[1] यथा - सूर्य आदि ग्रह बालक के शरीर के अंग, धातु एवं दोषों का प्रतिनिधित्व करते हैं। जब ये ग्रह अनिष्ट स्थान एवं पापप्रभाववश अनिष्टकारी हो जाते है, तब वे शरीर के जिस अंग, धातु या दोष का प्रतिनिधित्व करते हैं, उसमें विकार या रोग की सूचनायें देते है। वे ही ग्रह इष्ट स्थान एवं दोष आदि के द्वारा आरोग्यता की सूचना देते हैं। इस प्रकार ग्रहयोगों के माध्यम से यह शास्त्र विविध-शारीरिक एवं मानसिक बाल रोगों का विचार करने की सशक्त एवं समर्थ प्रविधि बतलाता है।

योग एवं उसके सात भेद

ग्रहयोग को ज्योतिष की आम भाषा में योग कहा जाता है। यह बालक को पूर्वार्जित कर्मों के फल से मिलाता है, इसलिए योग कहलाता है[2] वस्तुतः योग पूर्वार्जित कर्म को उसके फल से जोड़ने वाला सेतु है। यह योग ग्रहों की राशि एवं भाव में स्थिति या परस्पर युति के द्वारा बनता है।

ग्रह, राशि एवं भाव - इन तीन तत्वों के द्वारा बनने वाले योग-आधार के भेद से सात प्रकार के होते हैं[3] -

---

1 प्रश्नमार्ग, अध्याय - 12, श्लोक - 30

2 वही, अध्याय - 9, श्लोक - 48

3 प्रश्नमार्ग, अध्याय - 6, श्लोक - 49-50

1. स्थान (राशि)
2. भाव
3. ग्रह
4. स्थान एवं भाव
5. स्थान एवं ग्रह
6. भाव एवं ग्रह
7. स्थान, भाव एवं ग्रह

1. स्थान से बनने वाले योग

मेष आदि द्वादश राशियां उनके भेद और राशियों के वर्ग को ग्रहों का स्थान कहते हैं। इनसे बनने वाले योगों को स्थान से बनने वाला योग कहा जाता है यथा -

क. मिथुन लग्न में उत्पन्न व्यक्ति भोगी, बन्धुरत, दयालु धनवान् एवं रोगी होता है।[1]

ख. वृश्चिक के नवांश में उत्पन्न व्यक्ति दुःखी, दरिद्री दुर्बल एवं रोगी होता है।[2]

2. भाव से बनने वाले रोग

कुण्डली में लग्न से प्रारम्भ कर 12 भाव होते हैं, जिनके नाम हैं - 1. तनु, 2. धन, 3. सहज, 4. सुख, 5. पुत्र, 6. रोग, 7. जाया, 8. मृत्यु, 9. धर्म, 10. कर्म, 11. आय एवं 12. व्यय। इन भावों में से कुछ को केन्द्र, त्रिकोण, पणफर, आपोक्लिम, त्रिक, त्रिषडाय, द्विर्द्वादश, मारक, उपचय एवम् अनुपचय कहते हैं। इनके द्वारा बनने वाले योगों को भाव से बनने वाला योग कहा जाता है, यथा -

---

1 जातक परिजात, अध्याय - 9, श्लोक - 106

2 वही, अध्याय - 9, श्लोक - 97

क. चन्द्रमा से द्वितीय एवं द्वादश में कोई ग्रह न हो, तो केमद्रुम योग होता है।[1]

केमद्रुम
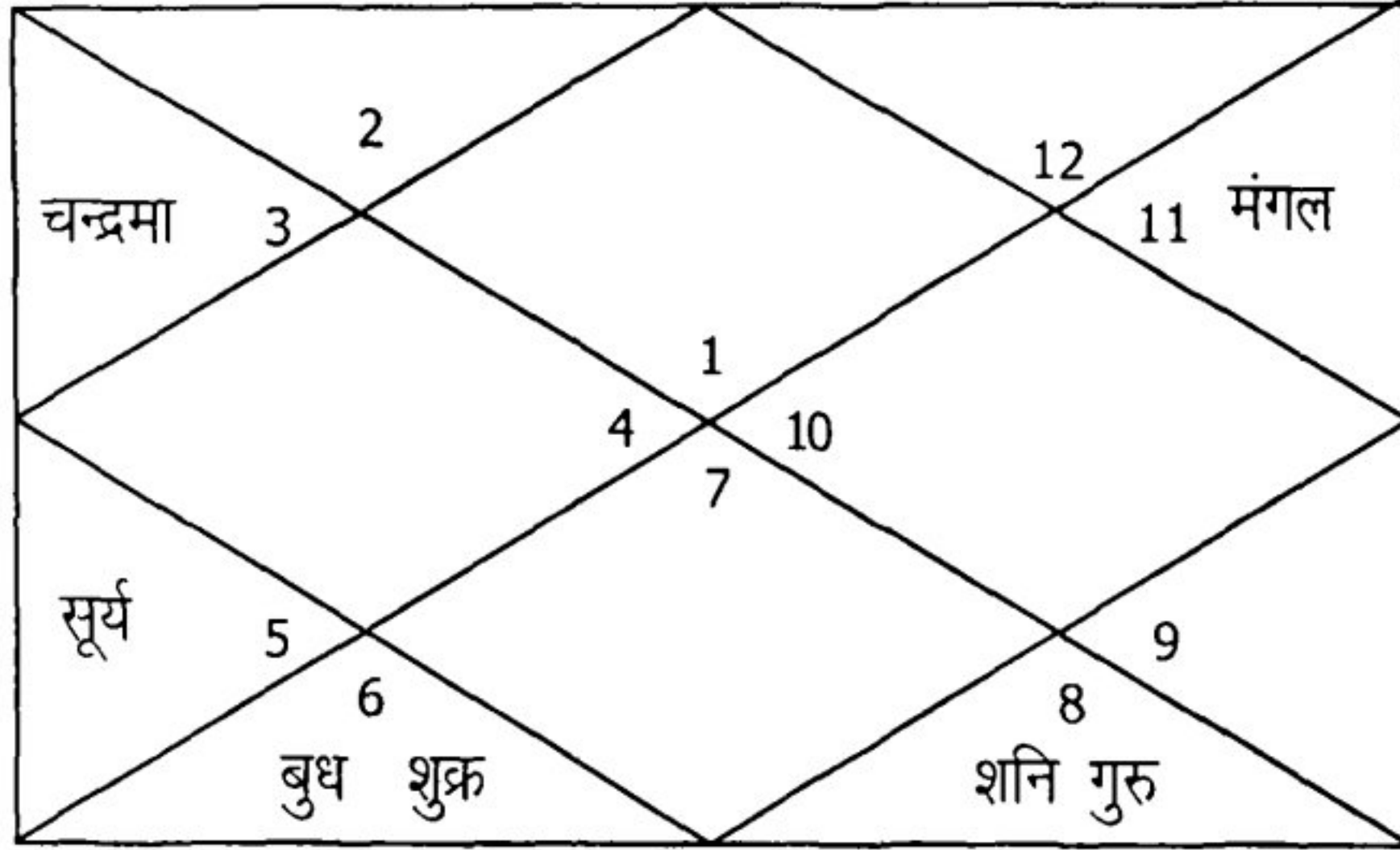
ख. लग्न पर चन्द्रमा की दृष्टि न हो, तो पिता के परोक्ष में जन्म होता है।[2]

3. ग्रहों से बनने वाले योग

होरा शास्त्र में शुभ एवम् अशुभ फल के सूचक नौ ग्रह माने गए हैं। इन ग्रहों की युति से बनने वाले योगों को ग्रहों से बनने वाला योग कहा जाता है, यथा -

क. जिसके जन्म के समय चन्द्रमा पूर्ण बली तथा पूर्णकला वाला हो, वह राजा बनता है।[3]

ख. केन्द्रेश एवं त्रिकोणेश के आपसी सम्बन्ध राजयोग कारक होते हैं।[4]

---

1 वृहज्जातक, अध्याय - 13, श्लोक - 6
2 वही, अध्याय - 15, श्लोक - 1
3 जातक परिजात, अध्याय - 7, श्लोक - 38
4 लघुपाराशरी, श्लोक - 14-15

ग. यदि बालक के जन्म के समय मेष, वृष, कर्क को छोड़कर शेष राशि का चन्द्रमा लग्न में हो तो पागल, दुष्ट, बहिरा, अशान्त, गूंगा एवं विशेषकर काली देह वाला होता है।[1]

4. स्थान एवं भाव से बनने वाले योग

जातक ग्रन्थों में स्थान एवं भाव से बनने वाले योग पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं। इन योगों में स्थान एवं भाव-दोनों का समान रूप से महत्व होता है, यथा -

क. सप्तम स्थान में द्विस्वभाव राशि हो, तो शत्रुओं द्वारा किये गये अभिचार (तन्त्र क्रिया) से रोगी होता है।[2]

ख. मेष लग्न में उत्पन्न व्यक्ति बन्धु-द्वेषी, दुर्बल-शरीर, क्रोधी मानी, पराक्रमी एवं दुर्बल जानु होता है।[3]

ग. यदि जन्म के समय लग्न में चन्द्रमा शनि हो तो जातक - सेवक, दुष्ट, भयानक, लोभी, हीन, निद्रालू, आलसी तथा पापी होता है।[4]

5. स्थान एवं ग्रह से बनने वाले योग

राशियों एवम् उनके वर्गों में ग्रहों की स्थिति या उन पर ग्रहों की दृष्टि से बनने वाले योगों को स्थान एवं ग्रह से बनने बाला योग कहते है। इन योगों में स्थान एवं ग्रह - इन दोनों का समान महत्व होता है। ये योग इस प्रकार है -

---

1 सारावली, अध्याय - 30, श्लोक - 14

2 जातक परिजातक, अध्याय - 6, श्लोक - 77

3 वही, अध्याय - 9, श्लोक - 105

4 सारावली, अध्याय - 31, श्लोक - 42

क. यदि चन्द्रमा एवं शनि - कर्क, वृश्चिक या कुम्भ के नवांश में हो तो जातक को गुप्त रोग होता है।[1]

ख. यदि शनि कर्क में और चन्द्रमा मकर में हो तो जातक को जलोदर होता है।[2]

ग. यदि जन्म के समय कर्क राशि में शनि हो तो जातक बाल्य-काल में रोगों से दु:खी होता है।[3]

घ. यदि जन्म के समय स्वराशिस्थ (मकर, कुम्भ) शनि, सूर्य से दृष्ट हो तो जातक रोगी होता है।[4]

6. भाव एवं ग्रहों से बनने वालो योग

भाव में ग्रहों की स्थिति या भाव पर ग्रहों की दृष्टि द्वारा बनने वाले योगों को - भाव एवं ग्रहों से बनने वाला योग कहा जाता है। इन योगों में भाव एवं ग्रह इन दोनों का समान महत्व होता है। उदाहरणतया -

क. लग्न में मंगल हो और षष्ठेश दुर्बल हो तो जातक को अजीर्ण गुल्म एवं शूल रोग होता है।[5]

ख. पापग्रह एवं राहु के साथ चन्द्रमा 5, 8 या 12वें भाव में हो तो जातक पागल, क्रोधी एवं कलह प्रिय होता है।[6]

---

1 जातक पारिजात, अध्याय - 6, श्लोक - 82

2 वही, श्लोक - 97

3 सारावली, अध्याय - 29, श्लोक - 7

4 वही, श्लोक - 61

5 जातक पारिजात, श्लोक - 90

6 वही, अध्याय - 6, श्लोक - 83

ग. यदि जन्म के समय चतुर्थ भाव में शनि हो तो जातक बाल्यकाल में रोगी होता है।[1]

घ. सप्तम भाव में सूर्य हो तो जातक कुरूपवान् एवं रोगी होता है।[2]

ङ शत्रु भाव में चन्द्रमा हो तो उदरजन्य रोग होते हैं। यदि कृष्ण पक्ष का निर्बल चन्द्रमा हो तो दीन व रोग से पीड़ित तथा अल्पायु होता है।[3]

च. यदि अष्टम एवं द्वादश भाव में मंगल हो तो जातक कुत्सित देह नेत्र रोगी एवम् अल्पायु होता है।[4]

7. स्थान, भाव एवं ग्रहों से बनने वाले योग

होराग्रन्थों में स्थान, भाव एवं ग्रह इन तीनों आधार पर बनने वाले योगों की पर्याप्त संख्या है। इनमें स्थान, भाव एवं ग्रह - इन तीनों का समान रूप से महत्व होता है और ये तीनों मिलकर विशेष प्रकार के फल की सूचना देते हैं। उदाहरण -

क. कर्क लग्न में चन्द्रमा एवं गुरु हो, केन्द्र में बुध एवं शुक्र हो तो शेष ग्रह त्रिषडाय में हो तो जातक की अमितआयु होती है।[5]

ख. यदि लग्न में शनि हो व अष्टम में भौम हो और गुरु केन्द्र (1-4-7-10) से अन्य भाव में हो तो मृत बालक का जन्म होता है।[6]

---

1 सारावली, अध्याय - 30, श्लोक - 77

2 वही, श्लोक - 8

3 वही, श्लोक - 19

4 वही, श्लोक - 33-37

5 सारावली, अध्याय -30, 96

6 वही, श्लोक - 88

ग. यदि जन्म के समय पाप ग्रहों से युत चन्द्रमा, एकादश, वा तृतीय वा लग्न भाव में पाप ग्रह से दृष्ट हो तो जातक को शीघ्र ही कर्ण (कान) रोग होता है।[1]

घ. शनि से चौथे घर में बुध हो तथा षष्ठेश छठे, आठवें या दसवें स्थानों में हो तो जातक बधिर (बहिरा) होता है।[2]

योगों के प्रमुख तीन तत्व

जीवन के घटनाचक्र, जिसका एक पहलू स्वास्थ्य एवं रोग भी है - का विचार करने का मुख्य उपकरण योग है। जातक ग्रन्थों में प्रतिपादित योगों में प्रमुख रूप से तीन तत्व होते है - 1. ग्रह, 2. राशि एवं 3. भाव

होराग्रन्थों[3] में ग्रहशील का निरूपण करते समय ग्रहों की राशियां, उच्च, नीच, मूलत्रिकोण राशि उनकी नैसर्गिक एवं तात्कालिक मैत्री, उनकी दृष्टि, उनके षडबल[4], उनके शुभाशुभत्व, उनकी षड्अवस्थाएँ [5] एवम् उनके चतुर्विध सम्बन्ध आदि का विस्तृत एवं सोदाहरण विवेचन किया गया है।

इन ग्रन्थों में राशिशील के निरूपण प्रसंग में चर, स्थिर, द्विस्वभाव, षोडशवर्ग, राशिबल पारिजातादि संज्ञा आदि का प्रतिपादन किया गया है। सामान्य जातक ग्रन्थों में लग्नादि द्वादशभाव, उनके विचारणीय विषय, उनके केन्द्र, त्रिकोण, पणफर, आपोक्लिम,

---

1 सारावली, अध्याय - 30, श्लोक - 67

2 ज्योतिष तत्व, अध्याय - 4, श्लोक - 291

3 बृहत्पाराशर होराशास्त्र, बहृजजातक, जातकपारिजात, सारावली आदि।

4 स्थानबल, दिगबल, कालबल, चेष्टाबल, दृग्बल एवं नैसर्गिक बल।

5 बालादि, जाग्रतादि, दीप्तादि, लज्जितादि, गर्वितादि एवं शयनादि।

त्रिक, त्रिषडाय, द्विद्वादश, मारक, उपचय, एवं अनुपचय आदि सज्ञाएँ, भाव बल तथा भावों के स्वभाव के बारे में समग्र जानकारी मिलती है।

बाल रोग परिज्ञान के प्रसंग में आवश्यक ग्रह, राशि एवं भाव के विषय में उन्हीं तथ्यों पर विचार किया जाएगा जिनसे बाल-रोगों का ज्ञान सम्भव है।

4. रोगों के विचार के लिए - ग्रहों का परिचय

कौन-सा ग्रह किस धातु तत्व का प्रतिनिधि है? उसका कद एवं रंग-रूप कैसा है? वह शरीर के किन-किन अंगों को प्रभावित करता है? वह किन-किन रोगों को पैदा कर सकता है? इन सब तथ्यों का होराग्रन्थों[1] में सोदाहरण वर्णन मिलता है। यहाँ उनका संक्षेप प्रस्तुत है -

सूर्य

यह अग्नि तत्त्व तथा मध्यम कदवाला शुष्क ग्रह है। यह मनुष्यों के (पुरुषों के दायें तथा स्त्रियों के बायें) नेत्र, आयु, हड्डी, शिर, हृदय, प्राणशक्ति, मेदा, रक्त तथा पित्त का प्रतिनिधित्व करता है। इसके बली होने पर हड्डियाँ मजबूत और शरीर सुदृढ़ होता है। तथा इसके निर्बल अशुभ या रोग कारक होने पर क्षय, पित्त रोग, नेत्र रोग, अस्थि रोग, शिरोरोग, हृदय रोग, उष्णवात, ज्वर, मूर्च्छा, रक्तस्राव, चर्मरोग, मिरगी एवं शूल होता है।

---

1 क. जातक परिजातक, अध्याय - 2, श्लोक 75-81
ख. फलदीपिका, अध्याय - 4, श्लोक - 2-9
ग. गदावली, अध्याय - 2, श्लोक - 6-18

चन्द्रमा

यह जल तत्त्व तथा दीर्घ कद वाला जलीय ग्रह है। यह व्यक्ति के पुरुष के बाँये तथा स्त्री के दाहिने) नेत्र, स्तन, वक्ष, फेफड़ा, मन, मस्तिष्क, उदर, मूत्राशय, रक्त, रस-धातु, शारीरिक पुष्टि एवं कफ का प्रतिनिधित्व करता है। इसके बली होने पर तन एवं मन दोनों चुस्त रहते हैं। स्वास्थ्य का विकास एवं मनोबल उन्नत रहता है। इसके निर्बल, अशुभ या रोग-कारक होने पर कफ-रोग, निमोनिया, एलर्जी, दमा, मूत्रविकार, जलोदर, मुखरोग, नासारोग, पाण्डुरोग, क्षय, मन्दाग्नि, अतिसार, स्त्रीसंसर्गजन्य रोग, प्रदर, अपस्मार, वात, श्लेष्मा एवं मानसिक रोग होते हैं।

मंगल

यह अग्नि तत्व तथा छोटे कदवाला शुष्क ग्रह है। यह शरीर में कपाल (खोपड़ी), कान, स्नायु, जननेन्द्रिय, मज्जा, शारीरिक शक्ति, धैर्य, संघर्षशीलता, उत्तेजना एवं पित्त का प्रतिनिधित्व करता है। इसके बली होने पर शरीर मजबूत होता है, शरीर में प्रतिरोध शक्ति बढती है तथा धैर्य एवं साहस उन्नत रहता है। इसके निर्बल, अशुभ या रोगकारक होने पर रक्तविकार, रक्तचाप, व्रण (फोड़ा-फुंसी) सूजन, चोट, रक्तस्राव, कुष्ठ, ज्वर, वातपित्त विकार, शीत-पित्त, महामारी एवं दुर्घटना-जन्य रोग, गुप्त रोग, अग्निदाह, मुष्क वृद्धि, निराशा एवं वे रोग-जिनमें शल्य-क्रिया होती है - होते हैं।

बुध

यह पृथ्वी तत्त्व तथा सामान्य कद वाला जलीय ग्रह है। यह जिह्वा, वाणी, स्वरचक्र, श्वास नली, अगला मस्तिष्क, फुफ्फुस, मज्जातन्तु, केश, हाथ एवं त्रिधातु का प्रतिनिधित्व करता है। इसके बलवान् होने पर मस्तिष्क सन्तुलित एवं विकसित, व्यक्तित्व आकर्षक एवं बोलचाल प्रभावोत्पादक होती है। इसके निर्बल, अशुभ या रोगकारक होने पर मूर्च्छा, हिस्टीरिया, मनोरोग, चक्कर आना, तनाव, निराशा, न्यूमोनिया, विषमज्वर, टाइफाइड, पाण्डु, संग्रहणी, शूल, मन्दाग्नि, हकलाहट, उदर बिकार, कुष्ठरोग, नासा रोग एवं स्नायु रोग होते हैं।

गुरु

यह आकाश (मतान्तर से वायु) तत्त्व तथा मध्यम कद (मतान्तर से ह्रस्वकद) वाला जलीय ग्रह है। शरीर में यह चर्बी, वीर्य, उदर, यकृत, रक्तधमनी, त्रिदोष एवं कफ का प्रतिनिधित्व करता है। इसके बली होने पर शरीर पुष्ट होता है, विचारशक्ति तीव्र, मन में सन्तुष्टि एवं मनोयाग बना रहता है। इसके निर्बल, अशुभ या रोगकारक होने पर मूत्र-विकार, वीर्य-विकार, मधुमेह, प्रमेह, प्रदर, गुप्तरोग, मादकद्रव्यों के सेवन से होने वाले रोग, विषजन्य रोग, उपदंश, कफ विकार, पाण्डु, जिगर एवं पीलिया होता है।

शुक्र

यह जलतत्त्व तथा मध्यम कद (मतान्तर से छोटा कद) वाला जलीय ग्रह है। यह शरीर में जननेन्द्रिय, शुक्राणु, नेत्र, कपोल, चिबुक, स्वर, रस, गर्भाशय एवं संवेग

शक्ति या प्रतिनिधित्व करता है। इसके बलवान् होने पर शरीर सुडौल, व्यक्तित्व आकर्षक, मन-मस्तिष्क में चुस्ती एवं वीर्य पुष्ट होता है। इसके निर्बल होने पर वीर्य विकार, मूत्ररोग, स्त्रीसंसर्गजन्य रोग, शीघ्रपतन, विषजन्य रोग, प्रमेह, मधुमेह, कफ-वायु विकार, नेत्र विकार, चर्मरोग, पाण्डु एवं कामला होता है।

शनि

यह वायु तत्त्व तथा लम्बे कदवाला शुष्क ग्रह है। यह शरीर में अंग संन्धि, पैर, घुटने, वात-संस्थान, स्नायुमण्डल, मज्जा, हिम्मत, क्रियाशक्ति तथा वात को प्रभावित करता है। इसके बलवान् होने पर स्नायुमण्डल पुष्ट तथा कद अच्छा होता है। इसके निर्बल, अशुभ या रोगकारक होने पर वायु विकार, स्नायु विकार, गठिया, सन्धिवात, जोड़ों में दर्द, पक्षाघात, पागलपन, दाढ़ में दर्द, दन्त रोग, अपचन, खांसी, दमा, अंगभंग, असन्तोष एवं निराशाजन्य मानसिक रोग होते हैं। यह अपराध, माफिया से लेकर कुण्ठा तथा आत्महत्या करवाने का सामर्थ्य रखता है।

राहु

यह वायु तत्त्व तथा मध्यम कद वाला ग्रह है। यह शरीर के मस्तिष्क, रक्त त्वचा एवं वात का प्रतिनिधित्व करता है। इसके बलवान् होने पर शरीर में फुर्ती, ताजगी एवं चैतन्यता बनी रहती है। और इसके निर्बल अशुभ या रोगकारक होने पर चेचक, कृमि, मिरगी सर्पदंश पशुओं से चोट, कुष्ठ, गैस एवं कैंसर जैसे रोग होते हैं।

केतु

यह वायु तत्त्व तथा छोटे कद वाला ग्रह है। यह शरीर के वात, रक्त तथा चर्म का विशेष रूप से प्रतिनिधित्व करता है। इसके बलवान् होने पर शरीर में श्रम शक्ति, संघर्ष-शक्ति, प्रतिरोध शक्ति एवं सक्रियता बनी रहती है। इसके निर्बल अशुभ या

रोगकारक होने पर सुस्ती, कमजोरी, चोट, घाव, चर्म रोग, चेचक, खसरा, एलर्जी, कृमि, बाल रोग एवं जटिल रोग होते हैं।

5. रोगों के विचार के लिए - नक्षत्रों का परिचय

ज्योतिष शास्त्र में अश्विनी आदि 27 नक्षत्र प्रसिद्ध हैं। फलित ग्रन्थों में अभिजित् नामक 28 वाँ नक्षत्र भी माना गया है। यह उत्तराषाढ़ के बाद और श्रवण के पहिले आता है। यह नक्षत्र मध्यममान से 19 घटी का होता है, जब कि अन्य नक्षत्र मध्यममान से 60 घटी के होते हैं। उत्तराषाढ़ की अन्तिम 15 घटी और श्रवण की प्रारम्भिक 4 घटी को मिलाकर कुल 19 घटी के अभिजित् की कल्पना की गई है। इस नक्षत्र का मुहूर्त आदि में विशेष उपयोग होता है। ज्योतिष शास्त्र के सामान्य व्यवहार में इसका उपयोग नहीं है और रोग विचार में भी इसकी कोई खास भूमिका नहीं होती। अतः 27 नक्षत्रों के आधार पर ही रोगों का विचार किया जाता है।

नक्षत्रों का सामान्य परिचय इस शास्त्र के सामान्यग्रन्थों से किया जा सकता है। यहाँ पर नक्षत्रों का बालरोगों से क्या सम्बन्ध है? किस नक्षत्र में रोग होने पर वह कितने समय तक रहता है। इन बातों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है -

अश्विनी

यह नक्षत्र अर्धाङ्गवात, अनिद्रा, मतिभ्रम आदि रोगों से सम्बन्धित है। इसमें बालक को जो रोग होता है वह 1, 9 या 25 दिन तक चलता है।

भरणी

यह नक्षत्र तीव्र ज्वर, वेदना, शिथिलता एवं मूर्च्छा से सम्बन्धित है। इस नक्षत्र में यदि बालक को रोग हो जाए तो वह 11, 29 या 30 दिन तक चलता है। यम का नक्षत्र होने से कभी-कभी इसमें उत्पन्न रोग मृत्युदायक भी हो जाता है।

कृतिका

यह नक्षत्र दाह, उदरशूल, वेदना, अनिद्रा एवं नेत्ररोग से सम्बन्धित है। इसमें बालक को रोग होने पर वह 9, 10 या 21 दिन तक रहता है।

रोहिणी

यह नक्षत्र सिर-दर्द, उन्माद, प्रलाप एवं कुक्षि-शूल से सम्बन्धित है। इसमें उत्पन्न बाल रोग, 3,7,9 या 10 दिन तक चलता है।

मृगशीर्ष

यह नक्षत्र चर्मरोग एवम् असहिष्णुता (एलर्जी) से सम्बन्धित है। इसमें उत्पन्न बालरोग 3, 5 या 9 दिन तक रहता है।

आर्द्रा

यह नक्षत्र वायु विकार, स्नायु विकार एवं कफरोगों से सम्बन्धित है। इसमें उत्पन्न बालरोग 10 दिन या 1 मास तक रहता है।

पुनर्वसु

यह नक्षत्र कमर-दर्द, सिर-दर्द एवं गुर्दे के रोगों से सम्बन्धित है। इसमें उत्पन्न बाल रोग 7 या 9 दिन तक चलता है।

पुष्य

यह नक्षत्र ज्वर, दर्द एवं आकस्मिक पीड़ादायक है। इसमें उत्पन्न बाल रोग एक सप्ताह तक चलता है।

आश्लेषा

यह नक्षत्र सर्वाङ्गपीड़ा, मृत्युतुल्यकष्ट, विषरोग एवं सर्पदंश आदि से सम्बन्धित है। इसमें उत्पन्न बाल रोग 9, 20 या 30 दिन तक रहता है। यह नक्षत्र मृत्युदायक होता है।

मघा

यह नक्षत्र वायु विकार, उदर विकार एवं मुख रोगों से सम्बन्धित है। इसमें उत्पन्न बाल रोग 20, 30 या 45 दिन चलता है और उसकी पुनरावृत्ति भी हो सकती है।

पूर्वाफाल्गुनी

यह नक्षत्र कर्णरोग, शिरोरोग, ज्वर तथा वेदना से सम्बन्धित है। इसमें उत्पन्न बालरोग 8, 15 या 30 दिन तक चलता है। कभी-कभी इसमें उत्पन्न बाल रोग एक वर्ष तक भी रहता है।

उत्तराफाल्गुनी

यह नक्षत्र पित्त ज्वर, अस्थिभंग एवं सर्वाङ्गपीड़ा से सम्बन्धित है इसमें उत्पन्न बालरोग 7, 15 एवं 27 दिनं तक चलता है।

हस्त

यह नक्षत्र उदर-शूल, मन्दाग्नि एवं उदर विकार से सम्बन्धित है। इसमें उत्पन्न बाल-रोग 7, 8, 9 या 15 दिन रहता है। और कभी-कभी उसकी पुनरावृति हो जाती है।

चित्रा

यह नक्षत्र अत्यन्त कष्टदायक या आकस्मिक दुर्घटनाओं से सम्बन्धित है। इसमें उत्पन्न बाल रोग 8, 11 या 15 दिन चलता है और कभी-कभी उससे मृत्यु भी हो जाती है।

स्वाति

यह नक्षत्र उन जटिल बालरोगों से सम्बन्धित है, जिनका निदान एवम् उपचार नहीं हो पाता। इसमें उत्पन्न बाल रोग 1, 2, 5 या 10 मास तक रहता है।

विशाखा

यह नक्षत्र वातव्याधि, मेदोरोग, कुक्षिशूल एवं सर्वाङ्गपीड़ा से सम्बन्धित है। इसमें उत्पन्न बाल रोग 8, 10, 20 या 30 दिन तक रहता है।

अनुराधा

यह नक्षत्र तीव्रज्वर, सिर-दर्द एवं संक्रामक रोगों से सम्बन्धित है। इसमें उत्पन्न बाल-रोग 6, 10 या 28 दिन तक रहता है।

ज्येष्ठा

यह नक्षत्र कम्प, विकलता एवं वक्ष रोगों से सम्बन्धित है। इसमें उत्पन्न बाल रोग 15, 29 या 30 दिन चलता है और कभी-कभी मृत्यु भी हो जाती है।

मूल

यह नक्षत्र उदर रोग, मुखरोग एवं नेत्ररोगों से सम्बन्धित है। इसमें उत्पन्न बाल-रोग 9, 15 या 20 दिन तक चलता है, और कभी-कभी उसकी पुनरावृत्ति रोग को बढ़ा देती है।

पूर्वाषाढ़

यह नक्षत्र प्रमेह, मधुमेह, धातुक्षय, दुर्बलता एवं गुप्त रोगों से सम्बन्धित है। इसमें उत्पन्न बाल-रोग 15, 20 दिन या 23 अथवा 6 मास तक रहता है और कभी-कभी पुनरावृत्ति भी हो जाती है।

उत्तराषाढ़

यह नक्षत्र उदरशूल, कटिशूल या जोड़ों के दर्द से सम्बन्धित है। इसमें उत्पन्न बाल रोग 20 या 45 दिन तक रहता है।

श्रवण

यह नक्षत्र अतिसार हैजा, मूत्र कृच्छ्र एवं संग्रहणी से सम्बन्धित है। इसमें उत्पन्न बालरोग 3, 6, 10 या 15 दिन तक चलता है।

धनिष्ठा

यह नक्षत्र आमाशय, बस्ती, मधुमेह एवं गुर्दे के रोगों से सम्बन्धित है। इसमें उत्पन्न बाल रोग 13 दिन, सप्ताह या पक्ष तक चलता है और कभी-कभी वह दीर्घकाल तक रहता है।

शतभिषा

यह नक्षत्र हृदयरोग, ज्वर, सन्निपात एवं बेचैनी से सम्बन्धित है। इसमें उत्पन्न बालरोग 3, 10, 21 या 40 दिन तक चलता है।

पूर्वाभाद्रपद

यह नक्षत्र, वमन, घबराहट, शूल, रक्तचाप एवं मानसिक रोगों से सम्बन्धित है। इसमें उत्पन्न बाल-रोग 2 या 10 दिन अथवा 3 मास तक रहता है।

उत्तराभाद्रपद

यह नक्षत्र दन्तरोग, वातरोग, गैस एवं ज्वर से सम्बन्धित है। इसमें उत्पन्न बालरोग, 7, 10 या 45 दिन रहता है।

रेवती

यह नक्षत्र मानसिक रोग, अभिचार जन्य बाल-रोग एवं वातरोगों से सम्बन्धित है। इसमें उत्पन्न बालरोग, 10, 28 या 48 दिन रहता है।

बालरोगों के विचार के लिए - राशियों का परिचय

क्रान्तिवृत या राशिचक्र का 12 वाँ भाग राशि कहलाता है। अतः राशियों की संख्या बारह होती है। ये मेष, वृष, मिथुन, कर्क सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ एवं मीन नामों से प्रसिद्ध हैं। राशियों का स्वरूप, उनके वर्ग, शुभाशुभत्व, विविध संज्ञाए एवं बल आदि की जानकारी होरा शास्त्र के सामान्यग्रन्थों से की जा सकती है। यहाँ बाल-रोग विचार के लिए राशियों की आवश्यक एवम् उपयोगी बातों का ही विचार किया जा रहा है -

1. अंग की प्रतिनिधि राशियाँ

फलित ग्रन्थों में कालरूपी पुरुष की कल्पना कर उसके शरीर के विविध अंगों में मेष आदि राशियों की स्थापना की जाती है।[1] जिसके आधार पर वह अंग रोगग्रस्त है या स्वस्थ - यह जाना जा सकता है।[2] इस अंग विभाजन का समग्र-दृष्टि से विचार कर इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है कि मेष आदि राशियाँ बालक के शरीर के निम्नलिखित अंगों का प्रतिनिधित्व करती हैं -

राशियाँ	**सम्बन्धित अंग**
मेष	मस्तिष्क, ललाट, शरीर एवं सिर के बाल।
वृष	आंख, कान, नाक, गला, होठ, दांत, मुख, जिह्वा एवं कपोल।
मिथुन	कण्ठ, गर्दन, कन्धा, भुजा, कोहनी, मणिबन्ध, हथेली, वक्ष एवं स्तन।
कर्क	फेफड़े, श्वासनली, भोजननली एवं हृदय।
सिंह	पेट, आँतें, जिगर, तिल्ली गुर्दा एवं नाभि।
कन्या	कमर एवं नितम्ब
तुला	बस्ति, मूत्राशय एंव गर्भाशय का ऊपरी भाग।
वृश्चिक	गर्भाशय, जननेन्द्रिय, गुदा एवं अण्डकोष।
धनु	उरू
मकर	जानु एवं घुटना

---

1 क. बृहज्जातक, श्लोक - 8
ख. सारावली, अध्याय - 2, श्लोक - 3
ग. जातक पारिजात, अध्याय - 1, श्लोक - 8

2 लघुजातक, अध्याय - 1, श्लोक - 5

कुंभ जंघा एवं पिण्डली

मीन टखना, पैर, पादतल एवम् अंगुलियाँ।

मेषादि राशियाँ एवम् उनके रोग

मेष आदि राशियाँ नैसर्गिक रूप से जिन बाल रोगों की सूचक होती है, उनकी संक्षिप्त सूची इस प्रकार हैं -

राशियाँ सम्बन्धित अंग

मेष सिर-दर्द आधासीसी, उन्माद, मानसिक रोग, मेदो-रोग गंजापन एवम् अनिद्रा।

वृष नेत्ररोग, कर्णरोग, नासारोग, कण्ठरोग, घटसर्प, कण्ठमाला, हकलाहट आदि।

मिथुन रक्तविकार, श्वास, फुफफुस रोग एवं मज्जारोग।

कर्क हृदयरोग, निमोनियां, दमा, श्वास, खांसी।

सिंह उदररोग, मेदवृद्धि, आँतों की बीमारी, प्लीहा, अपचन, जठराग्नि, मन्दाग्नि, अतिसार आदि।

कन्या जिगर, तिल्ली, आमाशय के विकार, कमर दर्द एवं गुर्दे के रोग।

तुला पथरी, मूत्राशय के रोग, प्रमेह, मधुमेह, प्रदर, मूत्रकृच्छ एवं वीर्य विकार।

वृश्चिक गुप्तरोग, स्त्रीरोग, अर्श, भगंदर, उपदंश, शूक एवं संसर्गजन्य-एड्स आदि।

धनु यकृतदोष, ऋतुविकार, अस्थिभंग, मज्जारोग एवं टिटनेस

मकर वातरोग, शीत-पित्त, चर्मरोग, रक्तचाप एवं रक्तस्राव।

कुम्भ जलोदर, मानसिक रोग, मिरगी एवं घबड़ाहट।

मीन एलर्जी, चर्मरोग, रक्तविकार, आमवात, संग्रहणी गाँठ एवं गठिया।

बालरोगों के विचार के लिए - भावों का परिचय

कुण्डली में लग्न से प्रारम्भ कर बारह भाव होते हैं। इन द्वादश भावों से मानव-जीवन के प्रायः सभी सम्बन्धित विषयों का ज्ञान हो जाता है। इन भावों का स्वरूप, संज्ञाएं, शुभाशुभत्व एवं बल आदि का विचार होरा ग्रन्थों में विस्तार से प्रतिपादित है। यहां भावों में बाल रोग विचार के लिए आवश्यक पक्षों का विचार किया जाएगा।

बालरोग विचार की दृष्टि से भावों का महत्व अधिक है। द्वादश भावों में से प्रथम, षष्ठ, अष्टम एवं द्वादश भाव बालक के स्वास्थ्य एवं रोगों के विचार से प्रत्यक्षतः सम्बद्ध है जब कि द्वितीय एवं सप्तम भाव मारक होने के कारण असाध्य रोग एवं मृत्युदायक होने से प्रकारान्तर से शरीर एवं जीवन से सम्बद्ध हैं। सभी भाव अपने से सम्बद्धअंगों में उत्पन्न होने वाले बालरोगों की सूचना देते हैं। अतः रोग विचार में भावों की भूमिका को नहीं भुलाया जा सकता।

अंगों के प्रतिनिधि भाव

जिस प्रकार काल-पुरुष के अंगों में राशियों को स्थापित कर राशियों के प्रतिनिधित्व में आने वाले अंगों का निरूपण किया गया है। ठीक उसी प्रकार काल पुरुष के अंगों में द्वादश भावों को स्थापित कर प्रत्येक भाव से विविध अंगों का विचार किया जाता है[1], यथा -

---

1 दैवज्ञाभरण, अध्याय - 33, श्लोक - 70

भाव	सम्बन्धित अंग
प्रथम भाव	मस्तिष्क, ललाट एवं सिर
द्वितीय भाव	आंख, कान, नाक, गला, होठ, दाँत, मुख, जिह्वा एवं गला।
तृतीय भाव	कण्ठ, ग्रीवा, कन्धा, भुजा, हथेली छाती एवं स्तन।
चतुर्थ भाव	फेफड़े, श्वासनली एवं हृदय।
पंचम भाव	पेट, आँतें, जिगर, तिल्ली, गुर्दा एवं नाभि।
षष्ठ भाव	कमर कूल्हा, नितम्ब।
सप्तम भाव	बस्ति, मूत्राशय एवं गर्भाशय का ऊपरी भाग।
अष्टम भाव	गर्भाशय, जननेन्द्रिय, गुदा एवम् अण्डकोष।
नवम भाग	ऊरू।
दशम भाव	जानु एवं घुटना।
एकादश भाव	जंघा एवं पिण्डली।
द्वादश भाव	पैर, टखना एवम् अंगुलियां।

भाव एवम् उनसे सम्बन्धित बाल रोग

लग्न आदि बारह भावों में किस-किस भाव से कौन-कौन से बाल रोग का विचार किया जाता है? इसका सारांश इस प्रकार है -

भाव	बाल रोग
प्रथम भाव	सिर-दर्द, मानसिक रोग, नजला, दिमागी कमजोरी एवं पिछड़ापन।
द्वितीय भाव	नेत्र रोग, कर्ण रोग, मुख रोग, नासारोग, दन्त रोग एवं गले की

खराबी। यह भाव मारक होता है।

तृतीय भाव	कण्ठरोग, गलगण्ड, गण्डमाला, खाँसी दमा एव लूलापन।
चतुर्थ भाव	वक्षरोग, हृदयरोग, फेफड़े के रोग, पसलियों में दर्द एवं मानसिक रोग।
पंचम भाव	मन्दाग्नि, अपचन, अजीर्ण, अरूचि, पित्तदोष, जिगर, तिल्ली एवं गुर्दे के रोग।
षष्ठ भाव	कमरदर्द, एपेन्डिक्स, आँतों की बीमारी, हार्निया एवं अश्मरी।
सप्तम भाव	प्रमेह, मधुमेह, प्रदर, उपदंश, पथरी, गर्भाशय एवं वस्ति रोग।
अष्टम भाव	गुप्तरोग, नपुंसकता, वीर्यविकार, अर्श, भगन्दर वृषणवृद्धि एवं मूत्रकृच्छ्र।
नवम भाग	ऊरू।
दशम भाव	जानु एवं घुटना।
एकादश भाव	जंघा एवं पिण्डली।
द्वादश भाव	पैर, टखना एवम् अंगुलियां।

भाव एवं उनसे सम्बन्धित बाल रोग

लग्न आदि बारह भावों में किस-किस भाव से कौन-कौन से रोग का विचार किया जाता है? इसका सारांश इस प्रकार है -

भाव	**बाल रोग**
प्रथम भाव	सिर-दर्द, मानसिक रोग, नजला, दिमागी-कमजोरी एवं पिछड़ापन।

द्वितीय भाव	नेत्र रोग, मुख रोग, नासा रोग, दन्त रोग, एवं गले की खराबी। यह भाव मारक होता है।
तृतीय भाव	कण्ठरोग, गलगण्ड, कण्डमाला, खाँसी दमा एवं लूलापन।
चतुर्थ भाव	वक्षरोग, हृदयरोग, फेफड़े के रोग, पसलियों में दर्द एवं मानसिक रोग।
पंचम भाव	मन्दाग्नि, अपचन, अर्जीण, अरूचि, पित्तदोष, जिगर, तिल्ली एवं गुर्दे के रोग।
षष्ठ भाव	कमर दर्द, एपेन्डिक्स आँतो की बीमारी, हर्निया एवं अश्मरी।
सप्तम भाव	प्रमेह, मधुमेह, प्रदर, उपदंश, पथरी, गर्भाशय एवं वस्ति रोग।
अष्टम भाव	गुप्तरोग, नपुंसकता, वीर्यविकार, अर्श, भगन्दर, वृषण बृद्धि एवं मूत्रकृच्छ्र।
नवम भाग	स्त्रीरोग, यकृतदोष, रक्तस्राव, वायुविकार, कूल्हें का दर्द एवं मज्जारोग।
दशम भाव	गठिया, कम्पवात, चर्मरोग, सन्धिवात एवं वायुरोग।
एकादश भाव	पैर में चोट, अस्थिभंग, पिण्डलियों का दर्द, शीतपित्त एवं रक्त विकार।
द्वादश भाव	एलर्जी, कमजोरी, नेत्र विकार, पोलियो एवं लंगड़ापन।

बाल रोगों के विचार के लिए - द्रेष्काणों का परिचय

बालक के शरीर के किस अंग में घाव, चोट, फोड़ा या गाँठ होगी? इसका विचार करने के लिए आचार्यों ने द्रेष्काण के आधार पर शरीर को तीन भागों में

विभाजित कर लग्न आदि भावों को शरीर के विभिन्न अंगों का प्रतिनिधि माना है।[1]

यथा-

भाव	**अंग**
द्वितीय एवं द्वादश भाव	दायाँ एवं बायाँ नेत्र
तृतीय एवं एकादश भाव	दाहिना एवं बायाँ कान
चतुर्थ एवं दशम भाव	दाहिना एवं बायाँ नथुना
पँचम एवं नवम भाव	दाहिना एवं बायाँ गाल
षष्ठ एवं अष्टम् भाव	दाहिना एवं बायाँ ठोडी का भाव
सप्तम भाव	मुख

प्रथमद्रेष्काण की कुण्डली में विविध भाव एवम् अंग
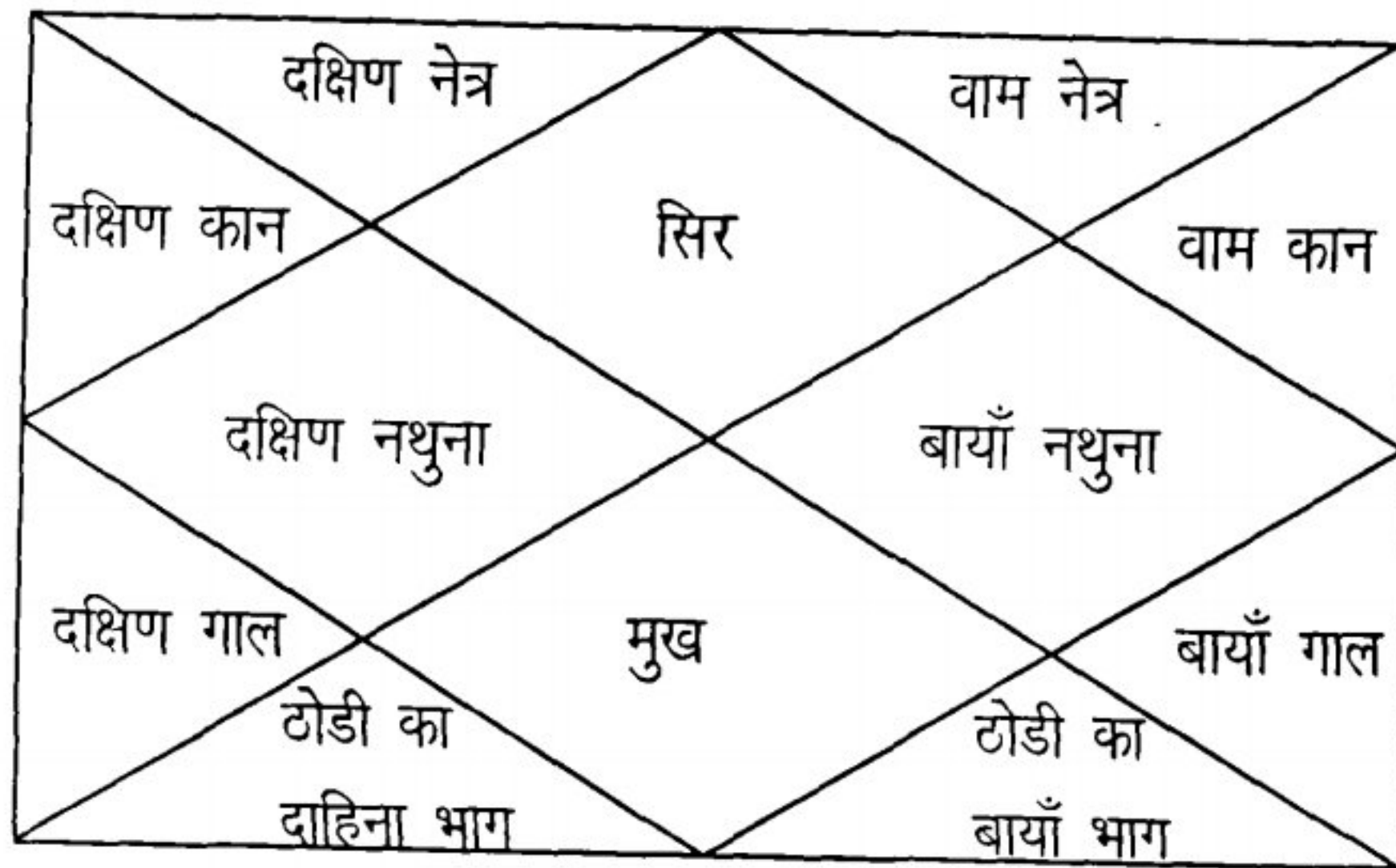
1 क. बृहज्जातक अध्याय-5, श्लोक-24

ख. जातकपारिजात अध्याय-3, श्लोक-77

द्वितीय द्रेष्काण के अंग

यदि लग्न में द्वितीय द्रेष्काण हो, तो लग्न आदि भावकण्ठ से लेकर नाभि तक के विविध अंगों का प्रतिनिधित्व करते है, यथा -

भाव	अंग
लग्न	कण्ठ
द्वितीय एवं द्वादश भाव	दाहिना एवं बायाँ कन्धा
तृतीय एवं एकादश भाव	दाहिना एवं बायाँ हाथ
चतुर्थ एवं दशम भाव	दाहिनी एवं बायीं बगल
पँचम एवं नवम भाव	दाहिनी एवं बायीं छाती
षष्ठ एवं अष्टम् भाव	दाहिना एवं बायाँ पेट का भाग
सप्तम	नाभि

द्वितीय द्रेष्काण की कुण्डली में विविध भाव एवम् अंग
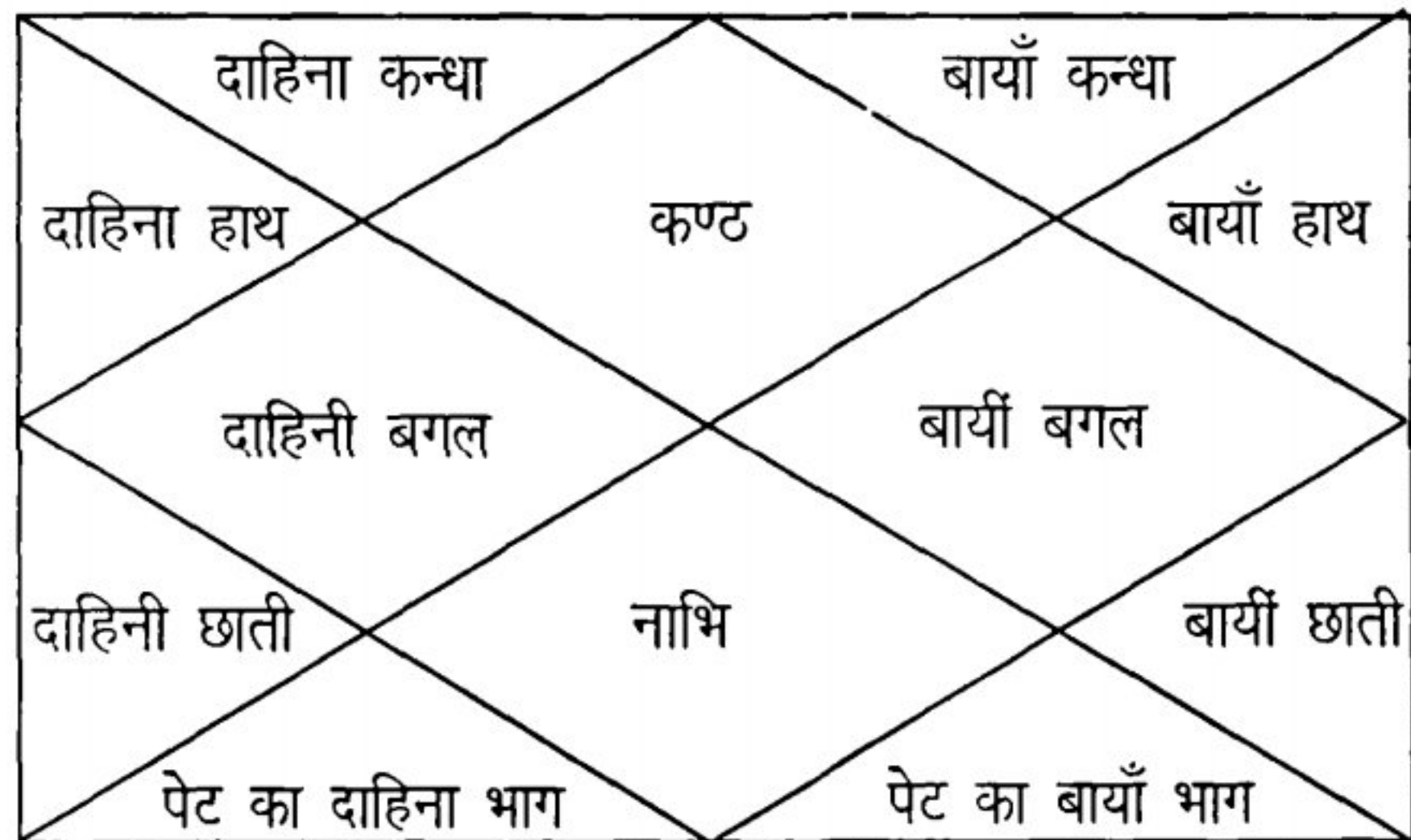
तृतीय द्रेष्काण के अंग

यदि लग्न में तृतीय द्रेष्काण हो, तो लग्न आदि भाव बस्ति से लेकर पैर तक के विविध अंगों का प्रतिनिधित्व करते है, यथा -

भाव	अंग
लग्न	बस्ति
द्वितीय एवं द्वादश भाव	लिंग एवं गुदा
तृतीय एवम् एकादश भाव	दाहिना फोता, बायाँ फोता
चतुर्थ एवं दशम भाव	दाहिना एवं बायाँ ऊरू
पँचम एवं नवम भाव	दाहिना एवं बायाँ घुटना
षष्ठ एवम् अष्टम् भाव	दाहिनी एवं बायीं जँघा
सप्तम भाव	पैर

तृतीय द्रेष्काण की कुण्डली में विविध भाव एवं अंग
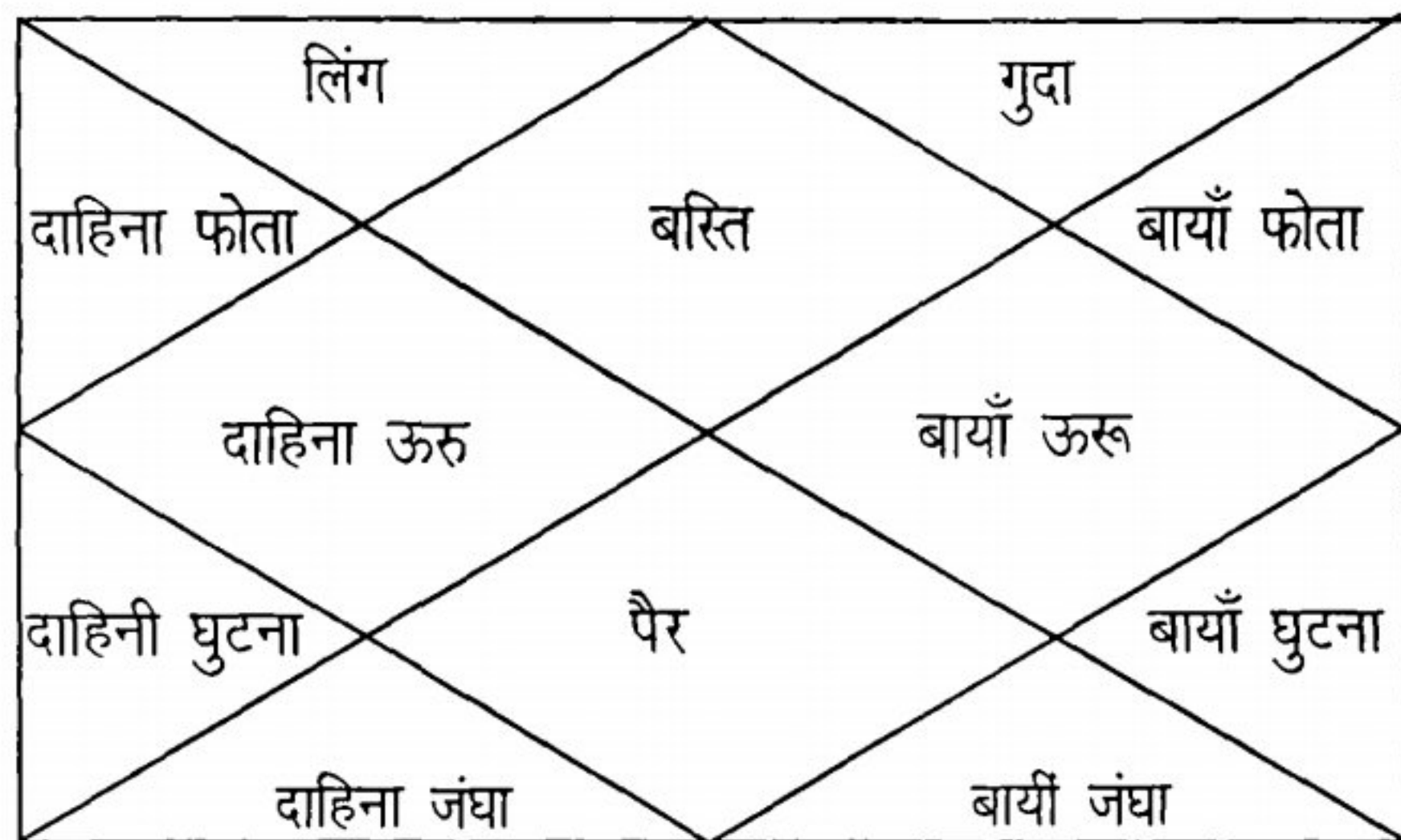
लग्न में प्रथम, द्वितीय या तृतीय द्रेष्काण होने पर जो भाव अगले अध्याय में बतलाये जाने वाले बाल रोग परिज्ञान के सिद्धान्तों के अनुसार बाल रोग कारक बनता हो, उस भाव से सम्बन्धी अंग में दशा एचं गोचरीय परिस्थिति के अनुसार चोट, मोट, घाव, फोड़ा या गॉठ होती है।

तृतीय अध्याय

बालरोगों का वर्गीकरण एवं ज्ञान

बालरोगों के भेद

बालरोगों का भली-भाँति विचार करने से पूर्व उनके भेद-उपभेदों को जानने के लिए उनका वर्गीकरण करना आवश्यक है। फलितशास्त्र के आचार्यों ने बालरोगों को दो प्रकार का माना है - 1. सहज एवं 2. आगन्तुक।[1]

1. सहज रोग

सहज का अर्थ है - जन्म के साथ अर्थात् जन्मजात रोगों को सहज रोग कहते हैं। जन्म के बाद जीवन में पैदा होने वाले रोग आगन्तुक रोग कहलाते हैं। सहज रोगों के दो भेद होते हैं - 1. शारीरिक तथा 2. मानसिक। जन्म से ही बालक में लूलापन, लंगड़ापन, कुबड़ापन, अन्धत्व, काणत्व, मूकत्व, बधिरत्व, नपुंसकत्व हीनांग, अधिकांग एवं विकलांग होना आदि को सहज (जन्मजात) शारीरिक-रोग कहते हैं। जन्म से ही जड़ता, सनक, पागलपन एवं मानसिक-पिछड़ापन आदि सहज-मानसिक रोग कहलाते हैं।

जन्म के बाद बालक के जीवन में पैदा होने वाले आगन्तुक-रोग भी दो प्रकार के होते हैं - 1. दृष्टनिमित्तजन्य एवं 2. अदृष्टनिमित्तजन्य। जिन रोगों का निमित (कारण) साफ-साफ दिखलाई देता है, उन रोगों को दृष्टनिमित्तजन्य रोग कहते हैं। उदाहरणार्थ - शाप, अभिचार, [2] घात, संसर्ग, महामारी एवं दुर्घटना आदि प्रत्यय-कारणों से उत्पन्न बाल रोगों को दृष्टनिमित्तजन्य रोग कहा जाता है। जिन रोगों का कारण प्रत्यक्ष घटना न होकर बाधक ग्रह हों, उन रोगों को अदृष्ट - निमितजन्य

---

1 प्रश्न मार्ग, अध्याय - 12, श्लोक - 18-24

2 मन्त्र महोदधि तरंग-32

रोग कहते हैं। अदृष्ट का अर्थ दैव है[1] जो पूर्वार्जित कर्मो का परिणाम होता है।[2] इसके फलस्वरूप उत्पन्न होने वाले बाल रोगों को अदृष्टनिमितजन्य बालरोग कहा जाता है।[3] ये दृष्टनिमित्तजन्य एवं अदृष्टनिमित्तजन्य बालरोग भी शारीरिक एवं मानसिक भेदों से दो प्रकार के होते हैं।
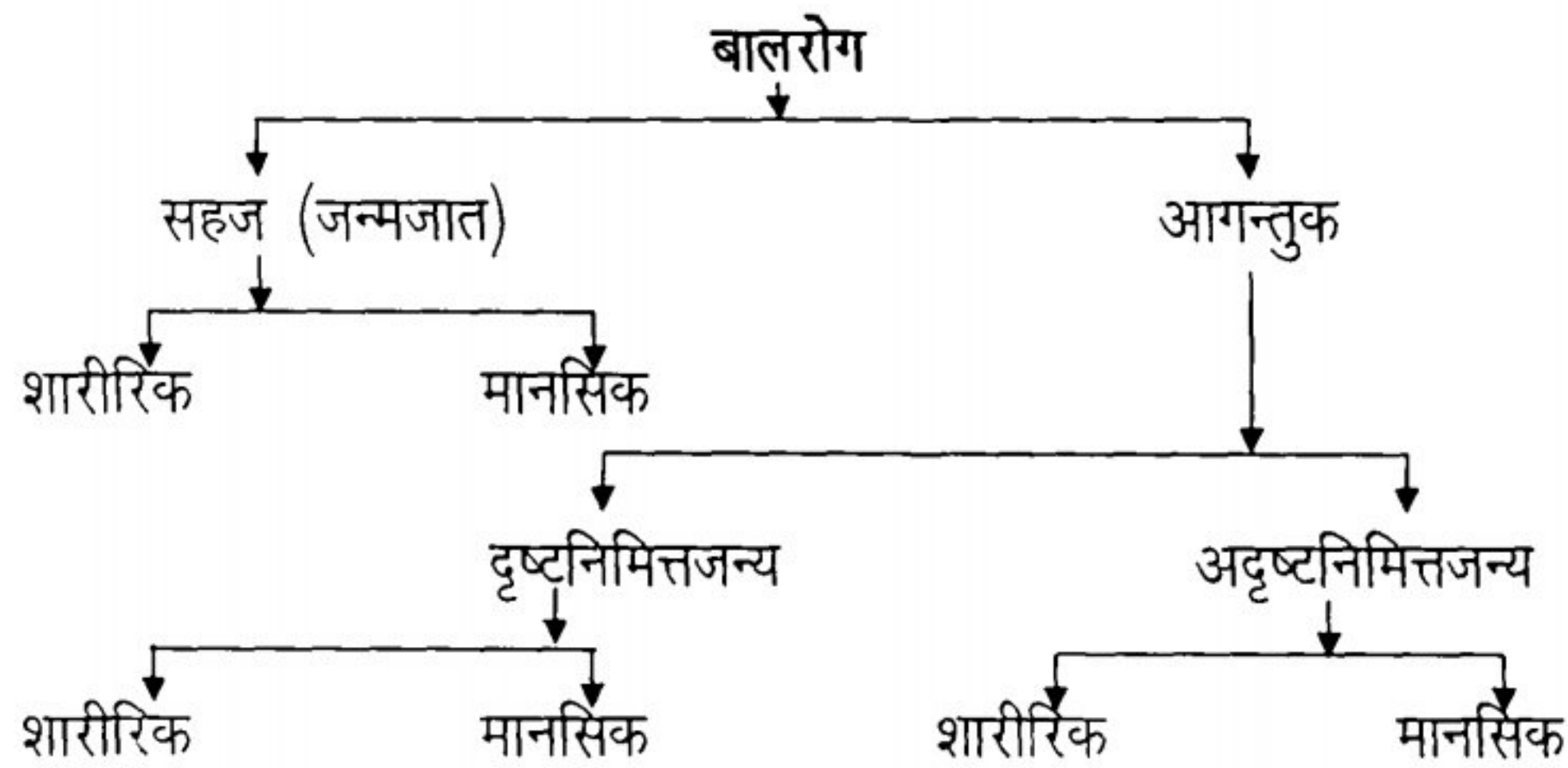
2. जन्मजात बाल-रोगों का परिज्ञान

जन्म के साथ उत्पन्न होने वाले सहज बाल रोगों का कारण जातक का पूर्वजन्मकृत कर्म और उसके माता-पिता का अनुचित आचार होता है। अतः फलित शास्त्र में जन्मजात बालरोगों का विचार जन्म कुण्डली एवं गर्भाधाण कुण्डली द्वारा किया जाता है।

---

1 मन्त्र महोदधि तरंग-32, जन्मान्तर कृतं कर्म तदैवमितिकथ्यते

2 भाग्यमदृष्टं दैवञ्च पूर्वकर्मफलम्-मेदिनी कोश, पृष्ठ-69

3 प्रश्नमार्ग अध्याय - 12, श्लोक - 22

होरा ग्रन्थों में लूलापन, लंगड़ापन, कुबड़ापन, पंगुता, अन्धापन, कानापन, मूकता, बधिरता, नपुंसकता, हीनांग, अधिकांग, एवं जड़ता आदि अनेक जन्मजात बालरोगों का ग्रह योगों के आधार पर विचार एवं विवेचन किया गया है। यहां इन जन्मजात बालरोगों में से कुछ प्रमुख बालरोगों पर विचार किया जा रहा है -

1. पंगुता (पोलियो) एवम् उसके ग्रहयोग

जिन बच्चों के एक या दोनों पैर जन्म से ही चलने-फिरने के लायक नहीं होते - ऐसे बच्चों को पंगु कहा जाता है। बहुधा इनके पैर टेड़े-मेढ़े होते हैं। उनकी बनावट में विकार उनके सहीं ढंग से विकास न होने के कारण होता है। पैर में विकलांगता के सूचक अनेक योग जातक ग्रन्थों में उपलब्ध है। इनमें से कुछ का विचार आधान कुण्डली और कुछ का विचार जन्म कुण्डली से होता है, यथा - (1) यदि गर्भाधान कुण्डली में - मीन लग्न हो और उस पर चन्द्रमा मंगल एवं शनि की दृष्टि हो, तो गर्भस्थ शिशु के पैर में विकलांगता होती है।[1]

जन्म कुण्डली में निम्नलिखित योगों में से कोई योग हो तो जातक पंगु होता है[2] -

i. मीन, वृश्चिक, मेष, कर्क या मकर राशि में पापग्रहों के साथ शनि एवं चन्द्रमा हो।

---

1 क. बृहज्जातक अ0 4, श्लोक 18

ख. सारावली अ0 8, श्लोक 60

ग. जातकपारिजात अध्याय-6, श्लोक 48

2 जातक तत्त्व - प्रथमविवेक, सूत्र 340-46

ii. पंचम या नवम स्थान में पापग्रहों के साथ शनि एवं चन्द्रमा हो।

iii. शनि एवं षष्ठेश - ये दोनों 12वें भाव में हो और इन पर पाप ग्रहों की दृष्टि हो।

iv. षष्ठ स्थान में शनि-सूर्य एवं मंगल के साथ हो।

होरा ग्रन्थों में मीन राशि एवं द्वादश भाव को पैरों का प्रतिनिधि माना गया है। ग्रहों में चन्द्रमा बाल्यावस्था का तथा शनि पैरों का सूचक होता है। अतः मीन राशि, द्वादश भाव, शनि एवं चन्द्रमा का षष्ठ स्थान या पाप प्रभाव में होना पैरों में विकार की सूचना देता है। परिणामतः ऐसा जातक जन्म से चलने-फिरने के लायक नहीं होता।

2. जन्मान्धता और उसके ग्रह योग

जो बालक जन्म से अन्धा होता है, उसे जन्मान्ध कहते हैं। जातक ग्रन्थों में जन्मान्धता के सूचक अनेक योग बतलाये गये हैं, उनमें से कुछ योगों का विचार आधान - कुण्डली और कुछ का विचार जन्म कुण्डली द्वारा होता है। आधान कुण्डली में निम्नलिखित योगों में से कोई योग हो तो जातक जन्मान्ध होता है।[1]

i. सिंह लग्न में सूर्य एवं चन्द्रमा हो और उन पर मंगल एवं शनि की दृष्टि हो।

ii. द्वितीयेश मंगल-सूर्य एवं चन्द्रमा से 8वें स्थान में हो और शनि छठे या बारहवें स्थान में हो।

---

1 क. बृहज्जातक अ0 4, श्लोक 20

ख. सारावली अ0 8, श्लोक 53

ग. जातकपारिजात अध्याय-6, श्लोक 52-54

iii. छठे एवं बारहवें भाव में पापग्रह हों।

जन्म कुण्डली में निम्नलिखित योगों[1] में से कोई योग हो, तो बालक जन्मान्ध होता है -

i. सूर्य, शुक्र एवं लग्नेश के साथ द्वितीयेश 6, 8 या 12 वें भाव में हों।

ii. लग्न में ग्रहण कालीन सूर्य हो और त्रिकोण में शनि एवं मंगल हो।

iii. सूर्य एवं शुक्र के साथ लग्नेश त्रिक में हो।

iv. लग्न से दूसरे भाव में मंगल, छठे चन्द्रमा, आठवें सूर्य एवं बारहवें भाव में शनि हो।

जातक शास्त्र में द्वितीय, द्वादश, षष्ठ एवम् अष्टम भाव आँखों का प्रतिनिधित्व करते हैं। ग्रहों में सूर्य, चन्द्रमा एवं शुक्र नेत्र कारक होते हैं। अतः इनकी दुःस्थान में स्थिति और इन पर पाप प्रभाव नेत्रों में विकार का सूचक होता है।

3. जन्मजात-मूकता और उसके ग्रहयोग

जन्म से यदि बालक गूँगा हो तो उसे जन्मजात मूकता कहते हैं। इसका भी विचार आधान एवं जन्म कुण्डली दोनों से किया जाता है। आधान कुण्डली में यह रोग[2] जन्मजात मूकता का सूचक है -

i. बृष राशि में चन्द्रमा और सब पाप ग्रह भसन्धि में हों।

---

1 क. सर्वार्थचिन्तामणि अध्याय - 3, श्लोक 3
ख. जातक पारिजात अध्याय - 6, श्लोक 58
ग. जातकतत्व प्रथम विवेक, सूत्र - 242-44

2 क. बृहज्जातक, अध्याय-4, श्लोक-17
ख. सारावली, अध्याय-8, श्लोक-56

जन्मकुण्डली में निम्नलिखित योगों[1] में से कोई एक योग हो तो, बालक जन्म से ही गूँगा होता है -

i. कर्क, वृश्चिक या मीन में स्थित बुध को अमावस्या का चन्दमा देखता हो।

ii. षष्ठेश एवं बुध-दोनों लग्न में हों।

iii. धनेश एवं गुरु-दोनों त्रिक में हों।

iv. षष्ठेश एवं गुरु-दोनों लग्न में हो।

होराशास्त्र में वृष राशि एवं द्वितीय भाव वाणी का प्रतिनिधित्व करता है। चन्द्रमा बाल्यावस्था का, बुध वाणी का और गुरु प्रतिपादन शक्ति का सूचक होता है। अतः इनका रोगभाव एवं रोगेश से सम्बन्ध तथा इस पर पापप्रभाव वाणी के विकार का सूचक होता है।

4. जन्मजात-बधिरता

कानों से सुनाई न पड़ने को बधिरता या बहरापन कहते हैं। यह जन्मजात भी होती है और जन्म के बाद भी। जन्मजात बधिरता का विचार आधान एवं जन्मकुण्डली से होता है। यदि आधान या जन्मकुण्डली में निम्नलिखित योगों[2] में से कोई योग हो, तो बालक जन्म से बहिरा होता है -

i. पाप ग्रहों के साथ चन्द्रमा लग्न, तृतीय या एकादश भाव में हो और उस पर पाप ग्रहों की दृष्टि हो।

ii. पंचम एवं नवम् भाव में स्थित पापग्रहों पर पापग्रहों की दृष्टि हो।

---

1 जातक तत्त्व - प्रथमविवेक, सू0 293-96

2 सारावली, अध्याय - 10, श्लोक 68-69

iii. शनि से चतुर्थ में बुध हो और षष्ठेश त्रिक स्थान में हों।

iv. रात्रि में जन्म हो, बुध षष्ठ भाव में और शुक्र दशम भाव में हो।

v. पूर्णचन्द्र एवं शुक्र - ये दोनों शत्रु ग्रहों के साथ हों।

vi. षष्ठेश एवं बुध पर पाप ग्रहों की दृष्टि हो।

vii. षष्ठेश त्रिक स्थान में हो और उस पर शनि की दृष्टि हो।

रोगों में मूकता एवं बधिरता अन्योन्याश्रित होती है। जो बालक गूंगा होता है, वह बहरा भी होता है। बहरेपन के कारण सुनाई न पड़ने से बह बोलना सीख नहीं पाता। इसी समानता के कारण मूकता एवं बधिरता का कारक बुध को माना जाता है। प्रकारान्तर से शनि भी बधिरता को उत्पन्न करता है। कुण्डली में तृतीय एवम् एकादश स्थान कानों का प्रतिनिधित्व करते हैं। अतः इन पर पापप्रभाव और इनका रोग भाव या रोगेश से सम्पर्क बधिरता का उत्पादक माना जाता है।

5. जड़ता (मानसिक पिछड़ापन)

मानसिक रूप से पिछड़ेपन को जड़ता कहते हैं। इससे बालक का न केवल बौद्धिक विकास अवरूद्ध होता है, अपितु वह शारीरिक विकास में भी पिछड़ जाता है। ऐसे बालक का बौद्धिक अंक (आईक्यू) सामान्य से काफी नीचे होता है। शारीरिक एवं मानसिक शक्ति कमजोर होती है तथा बौद्धिक शक्ति भी निम्नबिन्दु पर स्थिर-सी होती है।

अन्य जन्मजात रोगों की भाँति जड़ता का विचार भी आधान कुण्डली एवं जन्मकुण्डली दोनों से किया जाता है। होराग्रन्थों में जन्मजात जड़ता के सूचक योग इस प्रकार है -

i. यदि आधान कुण्डली में चन्द्रमा पाप ग्रहों के साथ भसन्धि राशियों में हो और उस पर शुभग्रहों की दृष्टि न हो।[1]

जन्मकुण्डली में निम्नलिखित योगों[2] में कोई योग हो, तो बालक जन्म से ही जड़ (मानसिक रूप से पिछड़ा) होता है :-

i. लग्न में सूर्य, 12वें चन्द्रमा एवं त्रिकोण में मंगल हो।

ii. लग्न में सूर्य त्रिकोण में चन्द्रमा और तीसरे स्थान में गुरु हो।

iii. केन्द्र में चन्द्रमा एवं शनि हों और इन पर शुभ ग्रहों की दृष्टि न हो।

iv. केन्द्र में चन्द्र, शनि एवं गुलिक हों।

v. द्वितीय स्थान में सूर्य एवं गुलिक हों - इनको पाप ग्रह देखते हों या तृतीय शनि के साथ हो।

vi. पंचम में शनि हो और लग्नेश पर शनि की दृष्टि हो या पञ्चमेश पाप ग्रह के साथ हो।

फलित शास्त्र में चन्द्रमा मन का, सूर्य विकास का तथा शनि मन्दता/ जड़ता का प्रतीक होता है। कुण्डली में चतुर्थभाव मन का, पंचम बुद्धि का एवं नवम विकास का प्रतिनिधित्व करता है। अतः इन पर पाप प्रभाव होने से शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक विकास में अवरोध पड़ने से मानसिक पिछड़ापन हो जाता है।

---

1 क. बृहज्जातक अध्याय-4, श्लोक-18

ख. जातक पारिजातक अध्याय-6, श्लोक-49

2 क. दैवज्ञाभरण त्रयोदश प्रकाश श्लोक-6-8

ख. जातकतत्व पंचम विवेक सूत्र, 22-23 एवं 26

6. लूलापन (बाहू-हीनता)

हाथ में हथेली न होने या कट जाने को लूलापन कहते हैं। जिस बालक की आधान या जन्मकुण्डली में निम्नलिखित योगों में से कोई योग हो, वह लूला होता है -

i. शनि मंगल, बुध एवं गुरु चारों साथ हों, चतुर्थ भाव में शुक्र हो और दिन में जन्म हो।[1]

ii. शनि एवं मंगल दोनों षष्ठ स्थान में हो और उन पर राहु की दृष्टि हो।

iii. षष्ठ स्थान में शत्रु राशि में शनि हो और उसके साथ शुक्र हो।[2]

iv. सूर्य, चन्द्र एवं शनि - ये तीनों षष्ठ या अष्टम स्थान में हो।[3]

7. काणत्व (कानेपन) के योग

बालक की एक आँख का फूटना या उससे दिखलाई न पड़ना-कानापन कहलाता है। कुछ बच्चे ऐसे होते है, जो जन्म से काने होते हैं। जन्मजात कानेपन का विचार आधान कुण्डली एवं जन्मकुण्डली दोनों से किया जाता है।

जन्मजात शिशु के कानेपन के प्रमुख योग इस प्रकार हैं -

i. यदि द्वादश में क्षीण चन्द्रमा हो तो बायीं आँख से और यदि वहाँ सूर्य हो तो दाहिनी आँख से काना होना है।[4]

---

1 जातक तत्व - प्रथम विवेक सूत्र 23-29

2 वही

3 वही

4 जातकालंकार-अध्याय-3, श्लोक-27

ii. षष्ठ में पाप ग्रह हो तो बायीं आँख से और अष्टम में पापग्रह हो तो दाहिनी आँख से काना होता है।[1]

iii. द्वादश में मंगल हो तो बायीं आँख से काना और वहाँ शनि हो तो, दाहिनी आँख से काना होता है।[2]

iv. सिंह राशि में सप्तम स्थान में चन्द्रमा हो और उस पर मंगल की दृष्टि हो।[3]

v. कर्क राशि में सप्तम स्थान से सूर्य हो और उस पर मंगल की दृष्टि हो।[4]

8. नपुंसकता के योग

सन्तानोत्पादन की क्षमता का न होना नपुंसकता कहलाती है। यह नपुंसकता दो प्रकार की होती है - 1. जन्मजात एवं 2 आगन्तुक! जन्म से ही नपुंसक होना जन्मजात नपुंसकता होती है। इसको हिजड़ापन भी कहते हैं। इन नपुंसकता से सूचक छः योग प्रायः सभी जातक ग्रन्थों में मिलते हैं, जिन्हें ''षड्क्लीब योग'' कहा जाता है।

---

1 क. बृहज्जातक, अध्याय-4, श्लोक-20
ख. सारावली, अध्याय-8, श्लोक-55
ग. जातक पारिजात अध्याय-6, श्लोक 52-54

2 क. दैवज्ञाभरण - द्वितीय विवेक, श्लोक-19
ख. जातकतत्व - प्रथम विवेक, सूत्र 275-276

3 क. दैवज्ञाभरण - द्वितीय विवेक, श्लोक-19
ख. जातकतत्व - प्रथम विवेक, सूत्र 275-276

4 क. दैवज्ञाभरण - द्वितीय विवेक, श्लोक-19
ख. जातकतत्व - प्रथम विवेक, सूत्र 275-276

इन योगों का विचार आधान एवं जन्मकुण्डली दोनों से किया जाता है। ये प्रसिद्ध योग इस प्रकार[1] हैं -

i. विषम राशि में स्थित सूर्य एवं चन्द्रमा एक-दूसरे को देखते हों।

ii. विषम राशि में स्थित शनि एवं बुध एक-दूसरे को देखते हो।

iii. विषम राशिगत मंगल सम राशिगत सूर्य को देखता हो।

iv. विषम राशिगत मंगल विषम राशिगत लग्न एवं चन्द्रमा को देखता हो।

v. विषम राशि में बुध तथा सम राशि में चन्द्रमा हों और दोनों को मंगल देखता हो।

vi. विषम राशि और उसके नवांश में लग्न, चन्द्रमा एवं बुध हों और उन पर शुक्र एवं शनि की दृष्टि हो।

इन योगों के अलावा आधान कुण्डली में निम्नलिखित योग[2] भी जन्मजात नपुंसकता के सूचक होते हैं -

i. मिथुन या कन्या लग्न में षष्ठेश शनि एवं मंगल हों।

ii. विषमराशि में स्थित चन्द्रमा एवं शनि परस्पर देखते हों।

---

1 क. बृहज्जातक, अध्याय-4, श्लोक-13

ख. सारावली, अध्याय-8, श्लोक-18-20

ग. जातक पारिजात, अध्याय-3, श्लोक 31 एवं 33

2 क. सर्वार्थचिन्तामणि, अध्याय-2, श्लोक-54

ख. जातक पारिजात, अध्याय-3, श्लोक-31 एवं 33

9. अंगहीनता के योग

शरीर में किसी अंग का न होना अंगहीनता कहलाती है। होरा ग्रन्थों में जन्मजात अंगहीनता के अनेक योग मिलते हैं। इन योगों का विचार आधान एवं जन्मकुण्डली दोनों से किया जाता है। जन्मजात अंगहीनता के सूचक प्रमुख योग इस प्रकार हैं -

i. लग्न में मंगल का द्रेष्काण हो और उस पर पापग्रहों की दृष्टि हो तो गर्भस्थ शिशु के सिर नहीं होता।[1]

ii. पंचम में मंगल का द्रेष्काण हो और उस पर पापग्रहों की दृष्टि हो तो गर्भस्थ बालक के हाथ नहीं होते।[2]

iii. नवम में मंगल का द्रेष्काण हो और उस पर पापग्रहों की दृष्टि हो तो गर्भस्थ शिशु के पैर नहीं होते।[3]

iv. दशम में चन्द्रमा सप्तम में मंगल और द्वितीय में सूर्य हो तो गर्भस्थ बालक अंगहीन होता है।[4]

---

1 क. वृहज्जातक, अध्याय-42, श्लोक-19
  ख. जातक पारिजात, अध्याय-3, श्लोक-31 एवं 33

2 क. वृहज्जातक, अध्याय-42, श्लोक-19
  ख. जातक पारिजात, अध्याय-3, श्लोक-31 एवं 33

3 क. वृहज्जातक, अध्याय-42, श्लोक-19
  ख. जातक पारिजात, अध्याय-3, श्लोक-31 एवं 33

4 जातक पारिजात, अध्याय-6, श्लोक-47

v. सप्तम में निर्बल शनि हो और वह राहु या मंगल के साथ हो तो अंगहीन बालक का जन्म होता है।[1]

vi. आधान लग्न में बुध या शनि हो और उस पर पापग्रहों की दृष्टि हो तो हाथ-पैर रहित पिण्डाकार बालक का जन्म होता है।[2]

vii. पंचम में मंगल हो और उस पर पापग्रहों की दृष्टि हो।[3]

viii. नवम में मंगल हो और उस पर पापग्रहों की दृष्टि हो।[4]

10. कुबड़ेपन के योग

कमर का झुका होना या कूब निकलना कुबड़ापन कहलाता है। यह रोग जन्म से भी होता है और जन्म के बाद भी। इस रोग के योगों का विचार आधान एवं जन्मकुण्डली दोनों से किया जाता है। इसके प्रमुख योग इस प्रकार हैं -

i. कर्क लग्न में स्थित चन्द्रमा पर मंगल एवं शनि की दृष्टि हो।[5]

ii. यदि लग्नेश मेष या वृश्चिक राशि में चतुर्थ स्थान में वृश्चिक के नवांश में हो।[6]

---

1 जातक पारिजात, अध्याय-6, श्लोक-46

2 सर्वाथचिन्तामणि, अध्याय-2, श्लोक-41

3 जातक तत्व, प्रथम विवेक, सूत्र-44

4 वही

5 वही, प्रथम विवेक, सूत्र-31

6 क. वृहज्जातक, अध्याय-4, श्लोक-20
ख. सारावली, अध्याय-8, श्लोक-59
ग. जातक पारिजात, अध्याय-6, श्लोक-49

3. दृष्टनिमितजन्य (आकस्मिक) बालरोगों का परिज्ञान

बालकों में चोट दुर्घटना, संसर्ग, महामारी, भय, शाप एवम् अभिचार जैसे प्रत्यक्ष कारणों से पैदा होने वाले बालरोग दृष्टनिमित्तजन्य कहलाते हैं। दृष्टनिमित्तजन्य विशेषण में तीन शब्द है - दृष्ट + निमित्त + जन्य इनका अर्थ है - दिखलाई पड़ने वाले कारणों से उत्पन्न अर्थात् जिन रोगों के कारण प्रत्यक्ष रूप से दिखलाई देते हैं उन रोगों को दृष्टानिमित्तजन्य बाल-रोग कहते हैं। इन बाल रोगों की सबसे बड़ी विशेषता यह है, कि ये अकस्मात् पैदा होते हैं। इसलिए इन्हें आकस्मिक रोग कहा जाता है।

जातक-ग्रन्थों में इन आकस्मिक व्याधियों का प्रमुख प्रतिनिधि-ग्रह मंगल माना गया है और राहु-केतु तथा अन्य पाप ग्रह उसके सहयोगी माने गए हैं। इस शास्त्र के आचार्यों का स्पष्ट कथन है - "कि अग्नि, विष एवं शस्त्र से पीड़ा, दुर्घटना, विस्फोट, युद्ध, महामारी, शत्रुता विनाशकारी इच्छा और मारण आदि अभिचारों का प्रतिनिधित्व मंगल करता है।[1]

चोट, दुर्घटना, महामारी, विस्फोट, भय, शाप एवम् अभिचार की प्रवृति में बालक या प्रकृति का उग्रतम विरोध मुख्य कारण है। जब किसी बालक का किसी खास कारण से किसी से विरोध हो जाता है और वह उग्ररूप धारण कर लेता है,

---

1 क. फलदीपिका, अध्याय-13, श्लोक-4
ख. जातक पारिजात, अध्याय-2, श्लोक-77
ग. प्रश्नमार्ग, अध्याय-12, श्लोक-68
घ. गदावली, अध्याय-1, श्लोक-8

तभी शाप घात या अभिचार का आश्रय लिया जाता है। इसी प्रकार जब प्रकृति उग्ररूप धारण कर लेती है, तब महामारी, दुर्घटना एवं उत्पात होते हैं। कुण्डली में इस उग्रविरोध और विरोधी का प्रतिनिधि भाव षष्ठभाव है। इसलिए दृष्टनिमित्तजन्य या आकस्मिक बाल-रोगों का विचार -

1. षष्ठभाव, 2. षष्ठेश, 3. षष्ठस्थान में स्थित या 4. षष्ठस्थान को देखने वाले ग्रह से किया जाता है।[1]

1 चोट एवं दुर्घटना और उसके ग्रह योग

यहां दुर्घटना से अभिप्राय उस घटना से है, जिससे शरीर या उसके किसी अंग को आघात या हानि पहुंचती है। यह दुर्घटना पत्थर, हथियार या लकड़ी के प्रहार से, उपर से गिर जाने, किसी से टकराने, अग्निकाण्ड या अन्य किसी प्रकार से शरीर को चोट पहुँचा सकती है। इस आकस्मिक घटना में कौन घायल होगा? उसके कौन-कौन से अंग दुर्घटना-ग्रस्त होंगे? क्या दुर्घटना में वह बालक मर जाएगा या जीवित बचेगा? इन सब प्रश्नों का विचार होराग्रन्थों में विस्तार से किया गया है।

जिस बालक की कुण्डली में निम्नलिखित योगों[2] में से कोई योग हो, वह बालक दुर्घटना या चोट से घायल होता है -

i. वृश्चिक राशि में मंगल और उस पर गुरु या शुक्र की दृष्टि न हो।

ii. केतु एवं मंगल सप्तम स्थान में हो तो बार-बार चोट लगती है।

iii. शनि एवं मंगल-ये दोनों षष्ठ या व्यय स्थान में हों।

---

1 प्रश्नमार्ग, अध्याय-12, श्लोक-23

2 जातकतत्व, षष्ठ विवेक-सूत्र, 20-38

iv. लग्नेश एवं मंगल त्रिक में हो, तो पत्थर या शस्त्र से चोट लगती है।

v. लग्नेश एवं मंगल पंचम स्थान में हो और पाप ग्रहों से दृष्ट-युत हों।

vi. लग्न में मंगल और सप्तम में गुरु या शुक्र हो तो सिर में चोट लगती है।

vii. पाप ग्रहों के साथ षष्ठेश लग्न या त्रिक में हो।

viii. सूर्य के साथ षष्ठेश लग्न या अष्टम में हो, तो सिर में चोट लगती है।

ix. चन्द्रमा के साथ षष्ठेश लग्न या अष्टम में हो तो मुख पर चोट लगती है।

x. बुध के साथ षष्ठेश लग्न या अष्टम में हो तो छाती पर चोट लगती है।

xi. गुरु के साथ षष्ठेश लग्न या अष्टम में हो, तो नाभि के नीचे चोट लगती है।

xii. शुक्र के साथ षष्ठेश लग्न या अष्टम में हो, तो आँख या जंघा में चोट लगती है।

xiii. शनि के साथ षष्ठेश लग्न या अष्टम में हो, तो पैर में चोट लगती है।

xiv. राहु या केतु के साथ षष्ठेश लग्न या अष्टम में हो तो पूरे शरीर में चोट लगती है।

2. बालक के किस अंग में चोट लगेगी

बालक के किस अंग में चोट लगेगी? इस बात का विचार जातक-ग्रन्थों में कई प्रकार से किया गया है। जन्मकुण्डली में षष्ठस्थान में पापग्रह हों और उस पर किसी शुभ-ग्रह की दृष्टि न हो तो शरीर में दुर्घटनावश चोट लगती है। इस योग में षष्ठ

स्थान में स्थित राशि के अनुसार घायल होने वाले अंग का पूर्वानुमान किया जा सकता है।[1] यथा -

षष्ठ स्थान में स्थित राशि	घायल होने वाला अंग
मेष	सिर
वृष	मुख
मिथुन	हाथ
कर्क	वक्षस्थल
सिंह	पेट
कन्या	कमर
वृश्चिक	नितम्ब
धनु	ऊरू
मकर	जानु
कुम्भ	जंघा
मीन	पैर

दैवज्ञाभरण में चोटग्रस्त या घायल अंग का निर्धारण ग्रहों के आधार पर किया जाता है। जिस व्यक्ति की कुण्डली में षष्ठेश किसी ग्रह के साथ लग्न या अष्टम में हो वह घायल होता है। इस योग में षष्ठेश के साथ जो ग्रह हो, उसके अनुसार चोटग्रस्त अंग की जानकारी की जाती है[2]

---

1 क. बृहज्जातक, अध्याय-5, श्लोक-26

ख. जातक पारिजात, अध्याय-3, श्लोक-79

2 दैवज्ञाभरण, चतुर्दश प्रकाश, श्लोक 14-15

दुर्घटना में अंग-भंग के योग

दुर्घटना या चोट से बालक के अंग-भंग की सम्भावना सर्वाधिक रहती है। अतः दुर्घटना के विचार के साथ-साथ इसका भी विचार कर लेना चाहिए। दुर्घटना में बालक के अंग-भंग होने का निश्चय निम्नलिखित योगों[1] से किया जा सकता है -

i. शनि एवं गुरु नवम या तृतीय में हो और सूर्य अष्टम या द्वादश में हो तो हाथ कट जाते हैं।

ii. चन्द्रमा एवं मंगल दोनों सप्तम या अष्टम में हों तो हाथ कट जाते हैं

iii. शनि बुध एवं राहु दशम स्थान में हो तो पैर कट जाते हैं।

iv. अष्टम में शनि और दशम में गुरु हो, तो हाथ कट जाते हैं।

v. अष्टमेश पर शुक्र की दृष्टि हो और सूर्य के साथ शनि एवं राहु हो, तो सिर कट जाता है।

vi. अष्टमेश पर शुक्र की दृष्टि हो और सूर्य क्रूर षष्ठयंश में हो, तो सिर कट जाता है।

vii. शनि लग्न में, राहु सप्तम में, शुक्र नीच में और क्षीण चन्द्रमा सप्तम या अष्टम में हो, तो हाथ-पैर दोनों कट जाते हैं।

---

1 क. सर्वार्थचिन्तामणि, अध्याय-5, श्लोक 12-20

ख. जातक पारिजात, अध्याय-5, श्लोक 93-97

ग. वही, अध्याय-6, श्लोक 62

घ. गदावली, प्रकरण-3, श्लोक 32

viii. लग्न में मंगल की राशि या उसके नवांश में सूर्य हो और क्षीण चन्द्रमा राहु एवं बुध सिंह राशि में हो, तो पेट फट जाता है।

ix. लग्न में शनि हो, उस पर शुभ ग्रहों की दृष्टि न हो और क्षीण चन्द्रमा राहु एवं बुध साथ-साथ हो, तो कुक्षि-फट जाती है।

x. अमावस्या का जन्म हो, लग्न में शनि हो और चन्द्रमा राहु के साथ हो, तो कुक्षि फट जाती है या हड्डी टूट जाती है।

होरा शास्त्र में इन आकस्मिक व्याधियों का सूचक ग्रह मंगल माना जाता है और राहु-केतु एवं अन्य पाप ग्रह उसके सहयोगी होते हैं। इस शास्त्र के आचार्यों का मत है कि अग्नि, विष, शस्त्रघात, दुर्घटना विस्फोट, युद्ध, राक्षस एवं घोर परिस्थितियों से भय, शत्रुता, विनाशकारी बुद्धि और मारण आदि अभिचारों का सूचक मंगल होता है।[1] अतः यहाँ भय, शाप एवम् अभिचारजन्य बाल रोगों का विचार किया जा रहा है।

i. पानी में डूबना, आग से जलना, जहर खाना, जीव-जन्तुओं से आघात, चोट एवं दंश जैसी दुर्घटनाओं के योगों को होरा ग्रन्थों में भय-योग कहा जाता है। यहाँ भय का अर्थ जीवन को भी के लिए भय या संकट पैदा होना है, जैसे जल भय का अर्थ होता है, पानी में डूबने का खतरा। यह खतरा स्वास्थ्य को ही नहीं अपितु जीवन को भी होता है। अतः यह योग स्वास्थ्य एवं जीवन

---

1 क. फलदीपिका, अध्याय-13, श्लोक - 4
  ख. जातकपारिजात, अध्याय-2, श्लोक - 77
  ग. प्रश्नमार्ग, अध्याय-12, श्लोक-69
  घ. गदावली, अध्याय-12, श्लोक-8

दोनों को संकट में डाल देते हैं। इस संकट के सूचक प्रमुख योग इस प्रकार हैं-

ii. **जलभय के रोग** - कुआँ, तालाब, बावड़ी, नदी, नहर या समुद्र में डूबने की घटना को जलभय कहते हैं। डूबने से मृत्यु होगी या नहीं - इसका विचार अलग से किया जाता है। किसी बालक के जीवन या स्वास्थ्य को पानी में डूबने से खतरा है? इसका निश्चिय निम्नलिखित योग[1] से किया जा सकता है-

(i.) कारकांश में कर्क राशि हो।

(ii.) अष्टम में जलचर राशि में चन्द्रमा हो।

(iii.) लग्न में स्थित चन्द्रमा पर पापग्रहों की दृष्टि हो।

(iv.) चतुर्थेश जलचर राशि में चतुर्थ या अष्टम में हो और वह नीच, शत्रुराशिगत, अस्तंगत या निर्बल हो।

(v.) लग्नेश निर्बल हो और चतुर्थ में पापग्रह हों

(vi.) चतुर्थेश निर्बल हो और चतुर्थ में पापग्रह हों।

(vii.) पापग्रहों के साथ चतुर्थेश केन्द्र में हो।

(viii.) लग्नेश एवं चतुर्थेश दोनों चतुर्थ में हो और दशमेश से दृष्ट हो।

(ix.) चतुर्थेश जिस राशि में हो, उसका स्वामी चतुर्थेश से युत या दृष्ट हो।

---

1 क. जातक तत्व, षष्ठ विवेक, सूत्र - 153-55

ख. वही, अष्टम विवेक, सूत्र - 132-38

अग्नि, चोर या दुर्जन से भय के योग

आग में जलना और चोर, डाकू या बदमाश से चोट खाना - इस घटना को जातक ग्रन्थों में अग्नि चोर या दुर्जन से भय कहा जाता है। इसके प्रमुख योग इस प्रकार हैं[1] -

i. षष्ठेश राहु या केतु के साथ हो तो चोर या अग्नि का भय होता है।

ii. नवमेश षष्ठ में हो और उस पर षष्ठेश की दृष्टि हो तो चोर या अग्नि का भय होता है।

iii. षष्ठेश शनि एवं मंगल साथ-साथ हों तो बालक को अग्नि भय होता है।

iv. लग्न सप्तम य़ा अष्टम में स्थित सूर्य पर मंगल की दृष्टि हो तो अग्नि या दुर्जन का भय होता है।

v. लग्न, द्वितीय, सप्तम या अष्टम में स्थित मंगल पर सूर्य की दृष्टि हो तो अग्नि या दुर्जन का भय होता हैं

vi. लग्न षष्ठ, सप्तम या द्वादश में मंगल एवं गुलिक हों और उन पर सूर्य की दृष्टि हो तो अग्नि या दुर्जन का भय होता है।

vii. षष्ठेश मंगल के साथ हो तो जलने का भय होता है।

viii. लग्न में स्थित क्रूर ग्रह किसी पाप ग्रह के साथ हो और उस पर पाप ग्रह की दृष्टि हो तो जलने का भय होता है।

ix. मंगल अष्टम में हो तो दुर्घटना में बालक जल जाता है।

---

1 जातकतत्व, षष्ट विवेक, सूत्र-161-68
वही, अष्टम विवेक, सूत्र-125-31

x. लाभ स्थान में सूर्य एवं मंगल हों तो बालक के हाथ-पैर जल जाते हैं।

विष भय के योग

स्वयं जहर खा लेना, किसी के द्वारा धोखे या षड्यन्त्र से जहर दे देना या किसी अन्य कारण से शरीर में जहर फैल जाना-विष भय कहलाता है। विष भय के प्रमुख - योग इस प्रकार हैं -

i. कारकांश में गुलिक हो।[1]

ii. एकादश में सूर्य के साथ मंगल हो।[2]

iii. षष्ठ या अष्टम में चन्द्रमा एवं बुध हों।[3]

iv. सूर्य एवं बुध - दोनों अष्टम में हों।[4]

सर्पभय के योग

बालक को साँप या अन्य जानवर द्वारा काटना इसे सर्पभय कहते हैं। इसके योग इस प्रकार हैं।[5]

i. चन्द्रमा एवं मंगल दोनों षष्ठ या अष्टम में हों।

ii. राहु द्वितीय में हो और पापग्रह से दृष्ट या युत हो।

iii. लग्न में राहु के साथ तृतीयेश हो।

---

1 जैमिनीय सूत्र, अध्याय-1, सूत्र-29

2 जातक तत्त्व, अष्टम विवेक, सूत्र-123

3 वही, सूत्र 123-25

4 वही

5 वही, षष्ठविवेक, सूत्र 156, 158 एवं 161

iv. षष्ठेश राहु या केतु के साथ हो।

पशु भय के योग

i. कुत्ता, बिल्ली, बन्दर, बैल, गाय, भैंस, सियार, लोमड़ी, या अन्य जानवरों के काटने या मारने आदि के योगों को पशुभय कहते हैं। इसके योग इस प्रकार हैं[1]-

ii. द्वितीय में शनि हो और यह पापग्रह से युत ग्रा दृष्ट हो तो बालक को कुत्ता काट लेता है।

iii. शनि धनेश से युत या दृष्ट हो तो बालक को कुत्ता काट लेता है।

iv. तृतीयेश एवं गुरु-दोनों लग्न में हो तो गाय, भैंस, या बैल के मारने का भय होता है।

v. कर्क या सिंह में राहु हो और वह सूर्य या चन्द्रमा के साथ हो तो पशुओं से चोट लगती है।

vi. षष्ठेश एवं लग्नेश दोनों गुरु के साथ हों तो हाथी से चोट लगती है।

vii. षष्ठेश एवं लग्नेश दोनों चन्द्रमा के साथ हों तो घोड़े से चोट लगती है।

viii. मंगल एवं गुलिक-दोनों द्वितीय या अष्टम में हों, और इन पर द्वितीयेश की दृष्टि हो तो सियार, लोमड़ी, भालू या भेड़िया आदि जंगली जानवरों से बालक को भय होता है।

ix. सूर्य के साथ षष्ठेश द्वितीय स्थान में हों तो सियार आदि हिंसक पशुओं से बालक को भय होता है।

---

1 जातकतत्व, षष्ठविवेक, सूत्र 169-77

x. शनि षष्ठेश हो और वह राहु या केतु के साथ हो तो जंगली जानवरों से भय होता है।

जीव जन्तुओं से मृत्यु के योग

पालतू एवं जंगली जानवरों के काटने या चोट मारने से कई बार बालक की मृत्यु हो जाती है। इसका विचार निम्नलिखित योगों[1] के आधार पर किया जा सकता है-

i. षष्ठ या अष्टम में सूर्य एवं चन्द्रमा हों तो सिंह के द्वारा बालक की मृत्यु होती है।

ii. चतुर्थ में मंगल और दशम में शनि हो तो सिंह के द्वारा बालक की मृत्यु होती है।

iii. दशम में राहु एवं शुक्र हो तो साँप के काटने से मृत्यु होती है।

iv. कारकांश में सूर्य हो और वह पाप ग्रहों से दृष्ट हो तो सर्पदंश से बालक की मृत्यु होती है।

v. चतुर्थ में मंगल और दशम में शनि हो तो सर्पदंश से बालक की मृत्यु होती है।

vi. सप्तम में शनि, रवि एवं राहु हो तो सर्पदश से बालक की मृत्यु होती है।

vii. सप्तम रवि और दशम में मंगल एवं गुरु हों तो कुत्ते के काटने से बालक की मृत्यु होती है।

viii. लग्न पर मंगल एवं सूर्य की दृष्टि हो और गुरु एवं शुक्र की दृष्टि न हो तो बैल, सांड या सींग वाले जानवर से बालक की मृत्यु होती है।

---

1 जातकतत्व-अष्टमविवेक, सूत्र 31-36 एवं 91

ix. षष्ठ या अष्टम में सूर्य एवं चन्द्रमा हो और मंगल से दृष्ट हो तो हाथी से मृत्यु होती है।

शाप एवम् अभिचार जन्य बाल रोग

तपस्वी, सन्त, सदाचारी, गुरु एवं देवता के शाप से उत्पन्न होने वाले बाल रोगों को शापजन्य बाल-रोग कहते हैं। मारण-मोहन, विद्वेषण, उच्चाटन, स्तम्भन एवं वशीकरण जैसे तान्त्रिक कर्मों को अभिचार कहते हैं। इन अभिचार क्रियाओं द्वारा उत्पन्न बालरोग अभिचार जन्य बाल-रोग कहलाते है। इस प्रकार के बालरोगों के प्रमुख योग इस प्रकार है -

i. केन्द्र में गुलिक हो और लग्न, चतुर्थ या दशम स्थान में गुरु हो, तो देवता के कोप या शाप से बालरोग पैदा होता है।[1]

ii. लग्न में चर राशि हो, लग्नेश पापग्रह के साथ हो और सप्तम में शनि हो तो देवता के कोप या शाप से रोग पैदा होता है।[2]

iii. लग्न में चर राशि हो, षष्ठेश की लग्न पर दृष्टि हो और मंगल एकादश भाव में हो तो अभिचार से बाल-रोग होता है।[3]

iv. सप्तम में द्विस्वभाव राशि एवं नवम में स्थिर राशि हो और उन पर षष्ठेश एवं मगल की दृष्टि हो।[4]

---

1 गदावली, प्रकरण-3, श्लोक 60-61

2 वही, श्लोक 60-60

3 जातक परिजात, अध्याय-6, श्लोक-93

4 वही

v. षष्ठेश सप्तम या दशम स्थान में हो और लग्न पर मंगल की दृष्टि हो तो शत्रु द्वारा किये अभिचार से बाल रोग होता है।[1]

vi. चर लग्न में शुभ ग्रह हों और सप्तम में पापग्रह से दृष्ट शनि एवं चन्द्रमा हों तो भूत-प्रेत या पिशाच की पीड़ा से बाल रोग होता है।[2]

vii. लग्न में राहु के साथ शनि हो तो भूत-प्रेत या पिशाच की पीड़ा से बाल रोग होते हैं।[3]

viii. लग्न में स्थित केतु पर अनेक पापग्रहों की दृष्टि हो तो पिशाच पीड़ा से बाल रोग होता है।[4]

ix. षष्ठ स्थान में राहु या केतु हो और उस पर पापग्रह की दृष्टि हो तो पिशाच पीड़ा से बाल-रोग होता है।[5]

x. अष्टम में निर्बल चन्द्रमा एवं शनि हो तो पिशाच पीड़ा से बाल-रोग होता है।[6]

4. अदृष्टनिमित्त जन्य (कर्मज) बालरोगों का परिज्ञान

बाल-रोगों का वर्गीकरण करते हुए पिछले अध्याय में बतलाया गया है कि बाल-रोग दो प्रकार के होते हैं - 1. जन्मजात बालरोग एवम् 2. आगन्तुक (जन्म के बाद होने वाले) बाल रोग। आगन्तुक बाल रोग भी दो प्रकार के होते हैं - 1.

---

1 जातक परिजात, अध्याय-6, शलेक 94

2 वही, श्लोक - 95

3 सर्वार्थचिन्तामणि, अध्याय-2, श्लोक-88 एवं 90

4 वही

5 दैवज्ञाभरण, चतुर्दश प्रकाश, श्लोक-32

6 जातक तत्त्व, षष्ठविवेक, सूत्र-94

दृष्टनिमित्त जन्य (आकस्मिक) बालरोग एवं 2. अदृष्टनिमित जन्य (कर्मज) बाल रोग। दृष्टनिमित्तजन्य या आकस्मिक बाल रोगों का विचार पूर्व में किया जा चुका है। अतः इस अध्याय में अदृष्टनिमित्त जन्य बाल रोगों का विचार किया जाएगा।

"अदृष्ट" शब्द जन्मान्तरों में किए गए कर्म या "दैव" का पर्यायवाची है। जन्म जन्मान्तरों में किए कर्मों के फल को भाग्य, दैव या अदृष्ट कहते हैं।[1] अतः अदृष्ट-निमित्तजन्य बाल रोगों से तात्पर्य उन बाल रोगों से है, जो जन्मान्तरों में किए गए कर्मों के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं और जिन्हें आयुर्वेद में कर्मजन्य रोग माना जाता है। ज्योतिष शास्त्र के आचार्यों के अनुसार इन अदृष्टनिमित्तजन्य या कर्मजन्य बाल रोगों की जानकारी बाधक ग्रहों के द्वारा होती है।[2] पूर्व में बतलाया गया है कि नौ कारणों से ग्रह बाल-रोग कारक बन जाता है।[3] इस बाल-रोग कारक ग्रह को बाधक ग्रह कहते हैं। यह ग्रह बालक के जिस अंग, धातु एवं दोष का प्रतिनिधित्व करता है, उसमें विकार के माध्यम से बालक के शरीर में पैदा होने वाले बाल रोग की सूचना देता है।

ग्रहों के अंग, धातु एवं दोष

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
अंग	हृदय	मन	बाहु	मुख	उदर	नेत्र	पैर
धातु	अस्थि	रक्त	मज्जा	त्वचा	चर्बी	वीर्य	स्नायु
दोष	पित	वात एवं कफ	पित	त्रिदोष	कफ	कफ एवं वात	वात

1 भाग्यमदृष्टं दैवञ्ज पूर्वकर्मफलं स्मृतम्

2 प्रश्नमार्ग अध्याय-12, श्लोक-23

3 क. फलदीपिका अध्याय-14, श्लोक-1

ख. गदावली अध्याय-1, श्लोक-5

अदृष्टजन्य बाल-रोग दो प्रकार के होते हैं - 1. शारीरिक, 2. मानसिक। अदृष्टनिमित शारीरिक बाल-रोगों को ज्योतिष शास्त्र के आचार्यों ने दो वर्गों में वर्गीकृत किया है - 1. अंगों के रोग तथा 2. दोष जन्य रोग। अँगों में पैदा होने वाले बाल रोगों को अँगों के रोग और धातु या दोष में विकार के कारण पैदा होने वाले बाल-रोगों को दोष जन्य बाल-रोग कहते हैं।

शारीरिक बाल-रोगों को उक्त दो वर्गों में वर्गीकृत करने का कारण यह है कि कुण्डली में लग्न आदि भावों और मेष आदि राशियाँ मनुष्य के सिर से लेकर पैर तक विविध अँगों का प्रतिनिधित्व करती है। इनमें से भाव शरीर की धातु या दोष का प्रतिनिधित्व नहीं करते, जबकि सूर्य आदि ग्रह एवं मेष आदि राशियाँ शरीर के अंग, धातु एवं दोष तीनों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इसलिए अँगों में उत्पन्न होने वाले बाल-रोगों में भाव एवं राशियों की तथा अन्य बाल-रोगों में ग्रहों की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। यद्यपि "योग" - राशि, भाव एवं ग्रह इन तीनों उपकरणों से बनते हैं। अतः अन्धापन एवं गूँगापन जैसे अँग विकारों के योगों में राशि एवं भावों के साथ-साथ ग्रहों का उल्लेख भी अवश्य होता है। अँग विकार के योगों में ग्रहों की तुलना में राशि एवं भाव की प्रधानता होती है। राशि एवं भाव का शुभाशुभत्व ग्रहों के शुभ या अशुभ प्रभाव से ही प्रभावित होता है। होरा शास्त्र के आचार्यों ने कहा है[1] जिस भाव या राशि पर ग्रहों की दृष्टि-युति हो वह भाव या राशि शरीर के जिस अँग का

---

1 क. लघुजातक, अध्याय-1, श्लोक-4-5

ख. सारावली, अध्याय-3, श्लोक-5-6

ग. जातक पारिजात, अध्याय-1, श्लोक-8

प्रतिनिधित्व करती है, शरीर के उस अंग में रोग पैदा होता है। कुण्डली में जो भाव या राशि शुभ-ग्रहों से युत-दृष्ट होती है वह जिस अँग का प्रतिनिधित्व करती है, बालक के शरीर का वह अंग स्वस्थ एवं पुष्ट होता है।

अँगों के प्रमुख बाल रोग

शारीरिक बाल-रोगों में जिनका सम्बन्ध शरीर के किसी अँग से रहता है, उन्हें अँगों के रोग कहते हैं। इन बाल रोगों का अँगों के आधार पर वर्गीकरण किया जाय, तो बाल रोगों के निम्नलिखित 12 वर्ग बनते हैं - 1. शिरोरोग, 2. नेत्ररोग, 3. कर्ण रोग, 4. नासा रोग, 5. मुख रोग, 6. कण्ठरोग, 7. हस्त रोग, 8. हृदय रोग, 9. उदररोग, 10. गुप्त राग, 11. गुदा रोग एवं 12. चरण रोग।

बच्चों में सिरदर्द के योग

वात-पित आदि के दोष से मन-मस्तिष्क पर दबाव या तनाव से या चोट लगने से सिरदर्द होता है। वात-पित्त आदि से उत्पन्न सिरदर्द का विचार सूर्य से, मानसिक-दबाव से उत्तन्न सिरदर्द का विचार चन्द्रमा एवं बुध से, और सिर में चोट लगने के कारण होने वाले सिरदर्द का विचार मंगल आदि पापग्रहों से करना चाहिए। सिरदर्द के सूचक प्रमुख योग इस प्रकार है -

i. तृतीयेश जिस नवांश में हो उस राशि का स्वामी केन्द्र में पाप-ग्रहों से युत-दृष्ट हो।[1]

ii. लग्न में पापग्रह की राशि हो और गुरु एवं चन्द्रमा पापग्रहों के साथ हों।[2]

---

1 जातक तत्त्व, षष्ट विवेक, सूत्र 85-86

2 वही

iii. लग्न में राहु हो और वह पापग्रह से युत-दृष्ट हो।[1]

iv. राहु मंगल एवं शनि-तीनों लग्न में हो।[2]

v. मंगल लग्नेश होकर लग्न में हो और पापग्रह से युत एवं दृष्ट हो तो सिर में चोंट लगती है।[3]

vi. शनि लग्नेश होकर लग्न में हो और वह पापग्रह से युत-दृष्ट हो तो सिर में चोट लगती है।[4]

vii. सूर्य की दशा में शुक्र की अन्तर्दशा हो और वह पाप-प्रभाव में हो।[5]

viii. बुध की दशा में मंगल की भुक्रि हो और वह पाप प्रभाव में हो।[6]

1. बालक में अन्धापन

बालक के नेत्र रोगों में अन्धता प्रमुख है। यह तीन प्रकार की होती है - 1. जन्मजात, 2. आगन्तुक एवं 3. सामान्य। जन्म से अन्धा होना जन्मजात अन्धता होती है।

आगन्तुक अन्धता चोट, दुर्घटना, चेचक आदि रोगों के प्रभाववश होती या नेत्र में विकार के द्वारा होती है। सामान्य अन्धता वह है, जो मोतियाबिन्द इत्यादि से होती है।

---

1 बृहद्यवन जातक, पृष्ठ-6, सूत्र-8

2 जातक तत्त्व, षष्ठविवेक, सूत्र-86

3 दैवज्ञाभरण, नवम प्रकाश, श्लोक-64

4 वही

5 सारावली, अध्याय-42, श्लोक-23 एवं 15

6 वही, उपर्युद्धृत

फलित ग्रन्थों में अन्धता, आंख फूटना, कानापन, रतौंधी भैंगापन एवम् अन्य नेत्र रोगों की चर्चा मिलती है। प्रायः सभी होरा ग्रन्थों में नेत्र रोगों के योग मिलते हैं। इन नेत्र रोगों में प्रमुख होने के कारण यहाँ बालक में अन्धता होने पर विचार किया जा रहा है।

जातक ग्रन्थों में सूर्य को नेत्र कारक माना गया है और चन्द्रमा एवं शुक्र को उसका सहयोगी। इस प्रकार सूर्य, चन्द्रमा एवं शुक्र - इन तीनों से नेत्र और उसमें होने वाले बाल रोगों का का विचार किया जाता है। कुण्डली में द्वितीय भाव दाहिने नेत्र का और द्वादश भाव वाँये नेत्र का प्रतिनिधित्व करता है। इन भावों के अलावा षष्ठ, एवम् अष्टम भाव से भी बालक के नेत्रों का विचार होता है। अतः बालक के नेत्र रोगों का विचार करते समय-सूर्य, चन्द्रमा, शुक्र इन तीन ग्रहों और द्वितीय, द्वादश षष्ठ एवम् अष्टम भाव पर पाप प्रभाव का गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाता है।

बालक के नेत्र रोगों का विचार करते समय एक और बात ध्यान में रखनी चाहिए कि आज शल्य क्रिया द्वारा बाल-अन्धता को दूर किया जा सकता है और मृत व्यक्ति की आँखों को अन्धे बालक की आखों में आरोपित कर उसे देखने की शक्ति पुनः लौटायी जा सकती है। आज चश्मे की सहायता से मन्ददृष्टि वाला बालक आसानी से अपने सभी काम-काज कर लेता है। बाल दृष्टि की कमजोरी का भी आज शल्यक्रिया द्वारा इलाज कर चश्मे उतरवाने का प्रयत्न चल रहा है।

वास्तविकता यह है कि शल्य चिकित्सा या अन्य उपचार द्वारा, जो ज्योति पुनः प्राप्त की जाती है, उसकी ओर इंगित करने वाले योग भी कुण्डली में होते हैं। आवश्यकता तो उन पर ध्यान देने की है। जैमिनी, पराशर, वराहमिहिर, कल्याण वर्मा

एवं वैद्यनाथ आदि ने स्पष्ट रूप से बतलाया है कि जिस रोग-कारक ग्रह के ऊपर शुभ ग्रहों की दृष्टि-युति हो, वे बाल रोग उपचार द्वारा ठीक हो जाते है।[1]

बाल अन्धता के योग

बालक में देखने की शक्ति या दृष्टि का नष्ट हो जाना अन्धापन कहलाता है। जन्मजात अन्धता के योगों का प्रतिपादन पिछले अनुच्छेद में किया जा चुका है। यहाँ बालक के जन्म के बाद होने वाले अन्धेपन के योग बतलाए जा रहे हैं। जिस बालक की कुण्डली में निम्नलिखित योगों में से कोई योग हो वह बालक अन्धा हो जाता है -

i. सूर्य अष्टम, चन्द्रमा षष्ठ, मंगल द्वितीय और शनि द्वादश में हो।[2]
ii. राहू लग्न में और सूर्य सप्तम स्थान में हो।[3]
iii. द्वितीय एवं द्वादश में क्रमशः सूर्य एवं चन्द्रमा हों तथा षष्ठ एवम् अष्टम में पाप ग्रह हों।[4]
iv. षष्ठ में चन्द्रमा अष्टम में सूर्य, नवम् में शनि और द्वितीय भाव में मंगल हो।[5]
v. शनि एवं मंगल के साथ चन्द्रमा में हो।[6]

---

1 जैमिनीय सूत्र, अध्याय-1, पा0 1, सूत्र-4
   क. बृहत्पाराशर होराशास्त्र, अध्याय-4, श्लोक-20
   ख. बृहत्पराशर, अध्याय
   ग. सारावली, अध्याय-9, श्लोक-60
   घ. जातक पारिजात, अध्याय-6, श्लोक-85
2 बृहज्जातक, अध्याय-23, श्लोक-10
3 सारावली, अध्याय-10, श्लोक 58-60
4 वही, श्लोक-61
5 जातक पारिजात अध्याय-6, श्लोक 57-59
6 वही,

जातक तत्त्व के अनुसार

i. द्वितीयेश एवं लग्नेश त्रिक में हो।

ii. सूर्य एवं चन्द्रमा दोनों तृतीय या केन्द्र में हो।

iii. शनि की राशि में सप्तम भाव में सूर्य हो।

iv. शुभ ग्रह त्रिक में पाप ग्रहों से दृष्ट हो।

v. शुक्र एवं लग्नेश के साथ द्वितीयेश या द्वादशेश त्रिक में हो।

vi. शुक्र दो पाप ग्रहों के साथ हो और चन्द्रमा द्वितीय में हो।

vii. चन्द्रमा त्रिक में हो और पापग्रहों से दृष्ट हो।

viii. सिंह लग्न में शनि हो।

ix. शनि द्वादश में चन्द्रमा द्वितीय में, और सूर्य अष्टम में हों।[1]

x. द्वितीयेश एवं द्वादशेश ये दोनों शुक्र या लग्नेश के साथ त्रिक में हो।[2]

xi. शुक्र एवं पापग्रह के साथ चन्द्रमा द्वितीय में हो।[3]

xii. सूर्य एवं चन्द्रमा पाप ग्रहों के बीच में हो।[4]

xiii. सूर्य एवं चन्द्रमा से सप्तम में मंगल हो और बुध पृष्ठोदय राशि में हो।[5]

---

1 जातक तत्त्व, प्रकीर्णतत्वसूत्र, 244-76

2 जातकालंकार, अध्याय-2, श्लोक-3

3 वही

4 भावप्रकाश, अध्याय-3, श्लोक-3

5 वही

आँखें फूटना एवम् उसके योग

जन्म से सुन्दर एवं स्वस्थ नेत्र वाले बालक की भी चोट, दुर्घटना, लड़ाई झगड़े या कारणवश आँखें फूट जाती है। यह घटना उन बच्चों के जीवन में घटती है, जिनकी कुण्डली में निम्नलिखित योगों में से कोई एक योग हो -

i. शनि या मंगल 12वें स्थान में हो, शनि दाहिनी ओर मंगल बायीं आँखें फोड़ता है।[1]

ii. सूर्य या चन्द्रमा 12वें स्थान में पापयुत दृष्ट हो। रवि दाहिनी और चन्द्र बायीं आँख फोड़ता है।[2]

iii. मंगल या शनि के साथ चन्द्रमा अष्टम में हो, तो मोतियाबिन्द होता है।[3]

iv. मंगल एवं शनि के साथ चन्द्रमा षष्ठ स्थान में हो तो मोतियाबिन्द होता है।[4]

कानेपन के योग

दोनों में से किसी एक आँख का फूटना कानापन कहलाता है। यह जन्मजात भी हो सकता है और जन्म के बाद भी। बच्चों को होने वाले जन्मजात काणत्व के योगों का विचार पिछले अनुच्छेद में किया जा चुका है। अतः यहाँ जन्म के बाद बच्चे के काणा होने के योगों का विचार किया जाएगा।

नेत्र के प्रतिनिधि ग्रह एवं भाव पर मंगल एवम् अन्य पापग्रहों का प्रभाव हो तो यह योग बनता है। इसके प्रमुख योग इस प्रकार हैं -

---

1 सारावली, अध्याय-10, श्लोक-61
2 वही
3 गदावली, प्रकरण-3, श्लोक 60-61
4 वही

i. द्वादश में क्षीण चन्द्रमा हो और उस पर शुभ ग्रह की दृष्टि हो तो बायीं आँख से बालक काणा होता है।[1]

ii. द्वादश से सूर्य हो और उस पर शुभ ग्रह की दृष्टि न हो तो दायीं आँख से बच्चा काणा होता है।[2]

iii. लग्न में स्थित चन्द्रमा या मंगल को गुरु एवं शुक्र देखते हों।[3]

iv. सिंह राशि में सप्तम स्थान में चन्द्रमा हो और उस पर मंगल की दृष्टि हो।[4]

v. कर्क राशि में सप्तम में सूर्य हो और उस पर मंगल की दृष्टि हो।[5]

vi. चन्द्रमा एवं शुक्र दोनों बारहवें स्थान में हों।[6]

vii. चन्द्रमा एवं शुक्र दोनों सप्तम में हों।[7]

viii. सूर्य और चन्द्रमा में से एक षष्ठ और दूसरा द्वादश में पाप प्रभाव में हो और शुभ ग्रह से दृष्ट-युत न हो।[8]

---

1 बृहज्जातक, अध्याय-4, श्लोक-20

2 वही

3 जातकतत्त्व, प्रकीर्ण सूत्र-274-75

4 वही

5 जातकतत्त्व, प्रकीर्ण सूत्र, 276-77

6 वही

7 वही, प्रकीर्ण सूत्र - 78

8 वह, प्रकीर्ण सूत्र - 80

रतौन्धी के योग

इस रोग में बच्चे को रात में दिखलाई नहीं पड़ता। सूर्य को छोड़कर अन्य नेत्र कारक ग्रह (चन्द्रमा एवं शुक्र) दुःस्थानों में हो या उन पर पापग्रहों का प्रभाव हो रतौन्धी का योग बनता है। इसके प्रमुख योग इस प्रकार हैं -

i. चन्द्रमा के साथ शुक्र षष्ठ, अष्टम या व्यय स्थान में हो।[1]

ii. शुक्र, चन्द्रमा एवं द्वितीयेश - एक साथ हो और उन पर पाप ग्रहों की दृष्टि हो।[2]

iii. शुक्र, चन्द्रमा एवं द्वितीयेश - ये तीनों लग्न में हों।[3]

भैंगापन आदि के योग

भैंगापन, ऐंचाताना, भेड़ापन एवं आँख में फुली आदि भी नेत्र-विकार कहलाते हैं। इनसे बालक की दृष्टि एवं व्यक्तित्व दोनों ही प्रभावित होते हैं। इनके प्रमुख योग इस प्रकार हैं -

i. सूर्य एवं चन्द्रमा दोनों वक्रीग्रह की राशि में हो और उन पर पापग्रह की दृष्टि हो तो बालक भैंगा होता है।[4]

---

1 क. जातकालंकार, अध्याय-2, श्लोक-3

ख. जातकतत्व प्रकीर्ण तत्व, सूत्र-264

2 जातक पारिजात अध्याय-11, श्लोक-64

3 वही, अध्याय-6, श्लोक-59

4 जातक तत्व, प्रकीर्ण सूत्र-285

ii. सूर्य एवं चन्द्रमा वक्री ग्रह की राशि में त्रिक स्थान में हो तो बालक भैंगा होता है।[1]

iii. पापग्रह के साथ सूर्य 12वें स्थान या त्रिकोण में हो तो बालक ऐंचाताना होता है।[2]

iv. द्वितीय या द्वादश में पाप ग्रह के साथ शुक्र हो तो बालक चिमधा (अधखुली आँखों वाला) होता है।[3]

v. लग्न में सूर्य एवं चन्द्रमा हों और इन पर शुभ एवं पाप दोनों ग्रहों की दृष्टि हो तो बालक बुद-बुदलोचन (पलक-चलाने वाला) होता है।[4]

vi. कर्क लग्न में सूर्य हो तो बालक बुद-बुदलोचन होता है।[5]

vii. लग्न में स्थित सूर्य एवं चन्द्रमा को मंगल एवं बुध देखते हों तो बालक की आँख में फुली होती है।[6]

बालक को होने वाले विविध नेत्र रोगों के योग

दृष्टि कमजोर होना, आँखों में दर्द होना, पानी बहना एवम् आँखें दुखना आदि अनेक प्रकार के नेत्र रोग बालकों को होते हैं। इनका निश्चय निम्नलिखित योगों के आधार पर किया जा सकता है -

---

1 जातक तत्व, प्रकीर्ण सूत्र - 226-28

2 वही

3 वही

4 बृहज्जातक अध्याय-4, श्लोक-20

5 जातक पारिजातक, अध्याय-6, श्लोक-53

6 सारावली, अध्याय-8, श्लोक-54

i. षष्ठेश वक्री ग्रह की राशि में हो तो आखें दुखती है।[1]

ii. लग्नेश मंगल या बुध की राशि में हो और उस पर इनमें से किसी एक की दृष्टि हो तो नेत्र पीड़ा होती है।[2]

iii. अष्टमेश एवं लग्नेश षष्ठ में हो तो बायें नेत्र में रोग होता है।[3]

iv. षष्ठ या अष्टम में शुक्र हो तो दाहिने नेत्र में रोग होता है।[4]

v. धनेश पर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो और लग्नेश पापग्रहों के साथ हो तो दृष्टि कमजोर हो जाती है।[5]

vi. शनि मंगल या गुलिक के साथ द्वितीयेश हो तो आँखों में दर्द होती है।[6]

vii. द्वितीय में पापग्रह हों और उन पर शनि की दृष्टि हो तो नेत्र रोग से बालक की ज्योति नष्ट हो जाती है।[7]

viii. द्वितीय भाव के नवांश का स्वामी पापग्रह की राशि में हो तो किसी रोग से बालक की दृष्टि नष्ट हो जाती है।[8]

ix. लग्न या अष्टम में स्थित शुक्र पर क्रूर ग्रहों की दृष्टि हो तो रोने से नेत्र रोग होता है।[9]

---

1 जातक तत्व, प्रकीर्ण तत्व, सूत्र 229-41
2 वही
3 वही
4 वही
5 वही
6 वही
7 वही
8 वही
9 वही

x. लग्न में शयनावस्था का मंगल हो तो नेत्र-रोग होता है।[1]

xi. द्वितीयेश एवं शुक्र साथ-साथ हों तो बालक को नेत्र रोग होता है।[2]

xii. शुक्र से 6,8 या 12वें स्थान में द्वितीयेश हो तो ज्योति नष्ट हो जाती है।[3]

xiii. त्रिकोण में सूर्य हो तथा उस पर पापग्रह की दृष्टि हो तो ज्योति नष्ट हो जाती है।[4]

xiv. लग्न में सूर्य हो तो दृष्टि कमजोर हो जाती है।[5]

xv. अष्टम स्थान में सूर्य हो तो दृष्टि कमजोर हो जाती है।[6]

xvi. सूर्य शुक्र एवं मंगल एक साथ हों तो नेत्र रोग हो जाता है।[7]

xvii. चन्द्रमा एवं मंगल त्रिक में हो तो गिरने से बालक की आँख में चोट लगती है।[8]

xviii. गुरु एवं चन्द्रमा त्रिक स्थान में हो तो जलने या धुएँ से आखें खराब हो जाती है।[9]

---

1 जातक तत्व, प्रकीण तत्व, सूत्र 229-41

2 वही

3 वही

4 वही

5 बृहज्जातक, अध्याय-20, श्लोक 1-3

6 वही

7 सारावली, अध्याय-16, श्लोक-8

8 जातक तत्व, प्रकीर्ण सूत्र - 245

9 वही, प्रकीर्ण सूत्र - 246

xix. द्वितीय या द्वादश में सूर्य एवं चन्द्रमा हो और वे शनि-मंगल से युत या दुष्ट हो तो नेत्र रोग होता है।[1]

xx. द्वितीयेश - शनि, मंगल या गुलिक के साथ हो तो बालक को नेत्र-रोग होता है।[2]

xxi. द्वितीय स्थान में अनेक पापग्रह हों और उन पर शनि की दृष्टि हो तो नेत्र-रोग होता है।[3]

गदावली के अनुसार होने वाले विविध नेत्र रोग-[4]

xxii. शनि, मंगल चन्द्रमा एवं सूर्य बलवान् होकर क्रमशः द्वितीय, षष्ठ, अष्टम एवं नवम स्थान में हो तो वातदोष से बालक को नेत्र रोग होता है।

xxiii. द्वितीयेश त्रिक स्थान में हो और स पर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो तो बालक को नेत्र रोग होता है।

xxiv. द्वितीयेश या द्वादश में सूर्य हो और उस पर शनि एवं गुलिक की दृष्टि हो तो कफ एवं पित्त विकार से बालक को नेत्र विकार होता है।

xxv. शनि के साथ चन्द्रमा अष्टम में हो तो कालापानी उतर आता है।[5]

xxvi. शनि के साथ चन्द्रमा द्वादश में हो, तो कालापानी उतर आता है।[6]

---

1 फल दीपिका, अध्याय-14, श्लोक-10

2 जातक पारिजात, अध्याय-11, श्लोक-68

3 वही

4 गदावली, अध्याय-1, श्लोक 5 एवं 3

5 सारावली, अध्याय-10, श्लोक 61

6 वही

बाल बधिरता एवम् उसके योग

बालक के कानों में सुनाई पड़ने की शक्ति का नष्ट होना बधिरता है। कान के रोगों में यह मुख्य रोग है। यह बालक में जन्मजात भी होता है और जन्म के बाद भी। जन्मजात बधिरता का विचार पिछले अनुच्छेद में किया जा चुका है। यहाँ पर जन्म के बाद बच्चों में होने वाली वधिरता का विचार किया जाएगा।

कुण्डली में तृतीय एवम् एकादश भाव बच्चों के कानों का प्रतिनिधित्व करते हैं। कुछ आचार्यो ने पंचम एवं नवम भाव को भी कानों का प्रतिनिधि माना हैं। ग्रहों में शनि कान का मुख्य प्रतिनिधि ग्रह है और बुध शुक्र उसके सहायक ग्रह होते हैं। इन ग्रहों, भावों एवम् इनके स्वामियों पर पाप प्रभाव तथा इनकी निर्बलता बाल बधिरता की सूचक होती है।

बालक के कर्ण रोगों का विचार करते समय यह ध्यान में रखना चाहिए कि जैसे आजकल मन्द दृष्टि वाला बालक चश्मा या लैन्स लगाकर अपने सभी काम कर लेता है, वैसे ही कम या ऊंचा सुनने वाला बालक सुनने की मशीन (Hearing Aid) लगाकर सब बातें सुन लेता है। प्राचीन काल में ऐसे साधन अनुपलब्ध होने के कारण इन बाल रोगों का परिहार नहीं बतलाया गया। कालदृष्ट महर्षियों को यह आभास था कि इन रोगों का उपचार या इन्हें नियन्त्रित करने के साधन एक दिन अवश्य उपलब्ध होंगे। अतः उन्होंने शुभ ग्रहों की दृष्टि-युति को इनका परिहार माना है।[1]

---

1 क. जैमिनीय सूत्र, अध्याय-1, पा0 1, सूत्र-4
ख. बृहज्जातक, अध्याय-4, श्लोक-20
ग. सारावली, अध्याय-9, श्लोक-60
घ. जातकपारिजात, अध्याय- श्लोक-85

बाल बधिरता के सूचक योगों में से प्रमुख इस प्रकार है -

i. तृतीयेश पाप ग्रह हो और वह शुष्क ग्रह (सूर्य, मंगल या शनि) के साथ हो।[1]

ii. तृतीयेश शुष्क ग्रह के साथ अपने शत्रु की राशि में हो।[2]

iii. तृतीय एकादश एवं त्रिकोण में पाप ग्रह हों और उन पर शुभ ग्रहों की दृष्टि न हो।[3]

iv. पाप ग्रह से युत चन्द्रमा, एकादश, तृतीय वा लग्न भाव में पाप ग्रह से दृष्ट हो।[4]

v. यदि नवम भाव व पञ्चम भाव में ग्रह, पापग्रह से दृष्ट हो।[5]

vi. यदि नवम भाव में ग्रह पाप ग्रह से दृष्ट हो तो दाहिना (दक्षिण) तथा पञ्चम में ग्रह हो तो वाम कान में रोग होता है।[6]

कम सुनाई देने का योग

बच्चों को कम सुनाई देना एक क्षुद्र रोग है। यह किसी रोग के परिणाम स्वरूप या अवस्था के कारण हो सकता है। इसके प्रमुख योग इस प्रकार हैं -

i. बुध के साथ शुक्र द्वादश में हो तो बाँये कान से कम सुनाई देता है।[7]

---

1 दैवज्ञाभरण प्रकाश-11, श्लोक-4

2 वही

3 जातकतत्व, प्रकीर्णतत्व, सूत्र-85

4 सारावली, अध्याय-10, श्लोक 68-70

5 वही

6 वही

7 जातक तत्व, प्रकीर्ण सूत्र-282

ii. नवम, एकादश, तृतीय एवं पंचम में पापग्रह हों और उन पर शुभ ग्रहों की दृष्टि न हो।[1]

iii. द्वितीयेश एवं मंगल ये दोनों लग्न में हो।[2]

iv. मेष, वृष एवं कर्क राशि को छोड़कर किसी अन्य राशि के लग्न में चन्द्रमा हो।[3]

कान कटने का योग

लड़ाई, झगड़ा, चोट या दुर्घटनावश कई बार कान कट जाता है। इसके सूचक प्रमुख योग इस प्रकार है -

i. सूर्य, शनि एवं चन्द्रमा तृतीय, पंचम, सप्तम या नवम स्थान में हो और उन पर शुभ ग्रहों की दृष्टि न हो।[4]

ii. चन्द्रमा से सप्तम में शनि हो और शुक्र एवं सूर्य दोनों लग्न में हों।[5]

iii. नीच राशि में राहु के साथ शुक्र हो।[6]

iv. कारकाँश में केतु हो और उस पर पापग्रह की दृष्टि हो।[7]

---

1 बृहज्जातक, अध्याय-23, श्लोक-11

2 जातकपारिजात, अध्याय-11, श्लोक-67

3 सारावली, अध्याय-30, श्लोक-14

4 जातक तत्त्व, प्रकीर्ण सूत्र, 286-88

5 वही

6 वही

7 जैमिनीय सूत्र, अध्याय-1, पा0 2, सूत्र-32

विविध कर्ण रोगों के योग

बच्चों के कान में दर्द होना, गवाद पड़ना, सड़ जाना, बहना एवं सूजना आदि कर्ण रोग कहलाते हैं। इन सब कानों के रोगों का विचार तृतीय भाव, एवं उसके स्वामी पर पापग्रहों के प्रभाव से किया जाता है। कुछ आचार्यों ने इन रोगों का विचार द्वितीय एवम् एकादश से भी किया है। इन बीमारियों के प्रमुख योग इस प्रकार हैं -

i. मंगल एवं गुलिक तृतीय में हो तो बालक के कान में दर्द होता है।[1]

ii. तृतीय स्थान में पापग्रह हों और उस पर पापग्रह की दृष्टि हो तो कान में दर्द होता है।[2]

iii. तृतीयेश क्रूरग्रह के षष्ठयंश में हो तो कान सड़ जाता है।[3]

iv. तृतीय भाव में शनि एवं गुलिक हो तो कान में मवाद पड़ जाता है।[4]

v. लग्न में धनेश एवं मंगल हो।[5]

vi. तृतीयेश जिस नवांश में हो उसका स्वामी केन्द्र में हो और वह पापग्रह से दृष्ट या युत हो।[6]

vii. द्वितीय या द्वादश में शुक्र या मंगल हो।[7]

---

1 जातक पारिजात, अध्याय-6, श्लोक 66-67

2 वही

3 वही

4 वही

5 गदावली, प्रकरण-2, श्लोक 19-20

6 वही

7 वही

viii. लग्नेश पापग्रहों से दृष्ट या युत हो।[1]

ix. तृतीय में गुलिक के षष्ठयंश में मंगल हो।[2]

बालक में नासा रोग के योग

बच्चे की नाक बहना, पीनस, नाक में मास बढ़ना आदि सब नासा रोग कहलाते हैं। इन बाल रोगों के सूचक चन्द्रमा एवं शुक्र जैसे जलीय ग्रह होते हैं और लग्न या लग्नेश पर पापग्रहों का प्रभाव होने से भी बालक को नाक सम्बन्धित रोग होते हैं। ये रोग प्राणघातक नहीं होते। अतः इनको क्षुद्र रोग कहा जाता है। इन रोगों के प्रमुख योग इस प्रकार हैं -

मंगल, शुक्र एवं शनि - ये तीनों एक साथ हो तो नक्की चलती है।[3]

षष्ठ स्थान में चन्द्रमा, अष्टम में शनि एवं द्वादश में पाप ग्रह हों और लग्नेश पापग्रह के नवांश में हो।[4]

षष्ठ स्थान में शुक्र और लग्न में मंगल हो तो नाक कटती है।[5]

बाल मूकता एवम उसके योग

बाल मूकता दो प्रकार की होती है - 1. जन्मजात एवम् आगन्तुक। जन्म से गूंगा होना जन्मजात मूकता कहलाती है और जन्म के बाद बालक का किसी बीमारी,

---

1 गदावली, प्रकरण-2, श्लोक 19-20

2 वही

3 सर्वार्थचिन्तामणि, नासारोगाधिकार, पृष्ठ-256

4 सर्वाथचिन्तामणि, अध्याय-5, श्लोक-41

5 जातकतत्त्व, प्रकीर्णतत्त्व सूत्र-289

चोट दुर्घटना या अन्य कारण से गूंगा होना आगन्तुक मूकता कहीं जाती है। जन्मजात मूकता के योगों का विचार पिछले अनुच्छेद में किया जा चुका है। यहाँ पर आगन्तुक बाल रोगों का विचार किया जाएगा।

कुण्डली में द्वितीय भाव वाणी का प्रतिनिधि भाव है। ग्रहों में बुध वाणी का और गुरु प्रतिपादन का प्रतिनिधि होता है। षष्ठ भाव रोग का तथा लग्न स्वास्थ्य का प्रतिनिधित्व करता है। अतः लग्न एवं द्वितीय भाव पर पापग्रहों का प्रभाव, द्वितीयेश, बुध तथा गुरु पर पाप प्रभाव, इनका दुःस्थान में बैठना या निर्बल होना इस बाल-रोग के सूचक होते हैं। बाल मूकता के सूचक प्रमुख योग इस प्रकार है -

i. द्वितीयेश एवं गुरु अष्टम स्थान में हों।[1]

ii. कर्क, वृश्चिक या मीन राशि में स्थित बुध पर चन्द्रमा की दृष्टि हो, चतुर्थ में सूर्य हो और षष्ठ स्थान में पाप ग्रह हों।[2]

iii. शुक्ल पक्ष का चन्द्रमा मंगल के साथ लग्न में हो।[3]

iv. द्वितीयेश एवं चतुर्थेश त्रिक में हों।[4]

मुख रोग

जिह्वा रोग, गूंगापन, हकलाहट, तुललाहट, दन्तरोग, तालु रोग एवं मुख से दुर्गन्ध आना ये सब मुख रोग कहलाते हैं। द्वितीय भाव मुख रोगों का प्रतिनिधि भाव

---

1 जातक पारिजात, अध्याय-11, श्लोक-76

2 जातक तत्व, प्रकीर्ण सूत्र 97-98

3 वही

4 दैवज्ञाभरण, प्रकरण-10, श्लोक-63

है और लग्न एवं षष्ठभाव इसके सहायक भाव हैं। बुध मुख रोगों का प्रतिनिधि ग्रह है तथा गुरु सहायक ग्रह माना गया है। अतः लग्न द्वितीय एवं षष्ठ-इन तीनों भावों इनके स्वामियों तथा बुध गुरु से इन बाल-रोगों का विचार किया जाता है। उक्त भावों पर पाप प्रभाव होना, इन भावों के स्वामी तथा बुध गुरु का दुःस्थान में बैठना, दुर्बल होना, इन भावों के स्वामी तथा बुध गुरु का दुःस्थान में बैठना, दुर्बल होना, पापग्रहों से युत-दृष्ट होना और शुभ प्रभाव न होना - इन बाल रोगों की सूचना देता है।

जिह्वा रोग के योग

जीभ पर छाले होना, जीभ में घाव होना, या जीभ कट जाना आदि को जिह्वा रोग कहते हैं। इन बाल रोगों का विचार मुख्य रूप से बुध एवं द्वितीयेश से किया जाता है। इन रोगों के प्रमुख योग इस प्रकार हैं -

बुध षष्ठेश हो तो जीभ पर छाले हो जाते हैं।[1]

द्वितीयेश एवं राहु त्रिक स्थान में हो तो उसके दशा में बुध की अन्तर्दशा में भी कट जाती है या जिह्वा रोग होता है।[2]

राहु की आक्रान्त राशि के स्वामी के साथ द्वितीयेश त्रिक स्थान में हो उसकी दशा में बुध की अन्तर्दशा में जीभ कट जाती है या जिह्वा रोग होता है।[3]

---

1 जातक तत्त्व, प्रकीर्ण तत्त्व, सूत्र - 314

2 क. जातक पारिजात अध्याय - 11, श्लोक-74
ख. गदावली, प्रकरण-2, श्लोक-8

3 क. जातक पारिजात अध्याय - 11, श्लोक-74
ख. गदावली, प्रकरण-2, श्लोक-8

हकलाहट के योग

बच्चा बोलते समय कुछ शब्दों पर अटक जाता है, इसे हकलाहट कहते हैं। यह रोग द्वितीयेश एवं बुध के निर्बल होने से होता है। इस रोग के प्रमुख योग इस प्रकार हैं -

i. द्वितीयेश निर्बल होकर क्रूर ग्रह के नवांश में हो।[1]

ii. द्वितीय भाव में पापग्रह या पापग्रहों का नवांश हो और उस पर पापग्रह की दृष्टि हो।[2]

iii. नवमेश शुक्र हो।[3]

iv. निर्बल बुध द्वितीय स्थान में हो और उस पर पापग्रह की दृष्टि हो।[4]

v. द्वितीयेश निर्बल एवं पापग्रहों से दृष्ट हो।[5]

तुतलाहट के योग

बच्चा जब शब्दों का अस्पष्ट उच्चारण करता है तो उसे तुतलाहट कहते हैं। यह रोग बुध, चन्द्रमा एवं द्वितीय भाव पर शनि का प्रभाव होने से होता है। इसके प्रमुख योग इस प्रकार हैं -

i. सप्तमेश से द्वितीय स्थान में केतु हो।[6]

---

1 जातक तत्व प्रकीर्ण तत्व, सूत्र - 317

2 वही, सूत्र 318-19

3 वही

4 सर्वार्थचिन्तामणि, अध्याय-3, 151-152

5 सर्वार्थचिन्तामणि, अध्याय-3, 151-152

6 जातक तत्त्व, प्रकीर्ण तत्त्व, सूत्र 315-16 एवं 20

ii. बुध शनि की राशि में हो और उस पर शनि की दृश्टि हो।[1]

iii. चन्द्रमा शनि के साथ हो।[2]

दन्त रोग के योग

पायरिया दाँतों में कीड़ा लगना, दाँतों में दर्द, सड़ना या गलना एवं दाँत टूटना आदि को दन्तरोग कहते हैं। इनके प्रमुख योग इस प्रकार हैं -

i. षष्ठ भाव में मेष, वृष या केतु हो तो दाँतों में पीड़ा होती है।[3]

ii. लग्न में मेष, वृष या धनु राशि हो और उस पर पापग्रह की दृष्टि हो तो बच्चे को पायरिया होता है।[4]

iii. व्यय में चन्द्रमा त्रिकोण में शनि और सप्तम में सूर्य हो।[5]

iv. व्यय में शुक्र, त्रिकोण में शनि और सप्तम में सूर्य हो।[6]

v. द्वितीयेश राहु के साथ त्रिक स्थान में हो तो उसकी दशा/अन्तर्दशा में बच्चे को दन्त रोग होता है।[7]

vi. लग्न में गुरु एवं राहु हो।[8]

---

1 जातक तत्त्व, प्रकीर्ण तत्त्व, सूत्र 315-16 एवं 20

2 वही

3 जातकालंकार, अध्याय-1, श्लोक-20

4 जातकपारिजात, अध्याय-6, श्लोक-45

5 वही, अध्याय, श्लोक-84

6 वही, अध्याय-11, श्लोक-74

7 जात तत्त्व, षष्ठ विवेक, सूत्र-61

8 वही

vii. द्वितीयेश एवं बुध षष्ठ स्थान में हो और वे राहु या केतु की आक्रान्त राशि के स्वामी के साथ हो।[1]

बच्चों में होने वाले मुँह के रोग

जिह्वा, दन्त, तालु एवं वाणी सम्बन्धी विकारों के अतिरिक्त मुँह में छाले होना, सूजन आना एवं बदबू आना आदि मुख के अन्य रोग होते हैं। मुख का विचार द्वितीय भाव, द्वितीयेश एवं बुध से किया जाता है। अतः यदि द्वितीयेश या बुध त्रिक स्थान में हो, लग्न में हों, पापग्रहों से युत या दृष्ट हों या द्वितीय में पाप हों तो मुख रोग होता है।

घाव, छाले एवं चोट का प्रतिनिधि ग्रह मंगल होता है। गन्ध का प्रतिनिधित्व चन्द्रमा एवं शुक्र करते हैं। अतः यदि द्वितीय-भाव, द्वितीयेश एवं बुध पर मंगल का प्रभाव हो तो छाले होते हैं और यदि लग्न सहित इस पर चन्द्रमा या शुक्र का प्रभाव हो तो मुँह से बदबू आती है। मुख रोगों के प्रमुख योग इस प्रकार हैं -

i. लग्नेश एवं मंगल बुध की राशि में हों और उन पर बुध की दृष्टि हो तो मुँह में छाले होते हैं।[2]

ii. षष्ठ स्थान में राहु या केतु हो तो बच्चे को मुख रोग होता है।[3]

iii. द्वितीयेश त्रिक स्थान में हो और पापग्रह से युत या दृष्ट हो तो मुख रोग होता है।[4]

---

1 क. सर्वार्थचिन्तामणि, अध्याय-3, श्लोक-116
  ख. दैवज्ञाभरण, प्रकरण-10, श्लोक-35

2 दैवज्ञाभरण, प्रकरण-10, श्लोक-8

3 वहीं, प्रकरण-10, श्लोक-9

4 वही, श्लोक - 9-10

iv. द्वितीय स्थान में पापग्रह हों तो मुख रोग होता है।[1]

v. मंगल की राशि में बुध के साथ लग्नेश हो तो मुँह में छाले होते हैं।[2]

vi. द्वितीय स्थान में सूर्य एवं मंगल हो तो मुँह में छाले होते हैं।[3]

vii. गुरु या शुक्र षष्ठेश होकर लग्न में हो और उस पर क्रूर ग्रहों की दृष्टि हो तो मुँह में सूजन आ जाती है।[4]

viii. लग्न में मेष राशि में चन्द्रमा हो और उस पर पाप ग्रहों की दृष्टि हो तो मुँह में बदबू आती है।[5]

ix. मेष लग्न में चन्द्रमा एवं शुक्र हो और षष्ठ स्थान में बुध हो तो मुँह से दुर्गन्ध आती है।[6]

x. मेष या कर्क राशि में शुक्र हो तो मुँह से दुर्गन्ध आती है।[7]

xi. लग्न में चन्द्रमा हो और बुध षष्ठेश हो तो मुँह से दुर्गन्ध आती है।[8]

कण्ठ रोग

गलगण्ड, गण्डमाला एवं गले के अन्य विकारों को कण्ठ-रोग कहते हैं। बच्चों को ये रोग प्रायः सूर्य की दशा में शुक्र की भुक्ति में या शुक्र की दशा में सूर्य की भुक्ति में होते हैं। इन बाल-रोगों का विचार मुख्यतया तृतीय भाव से होता है। तृतीय

---

1 दैवज्ञाभरण, प्रकरण-10, श्लोक-8
2 जातक तत्व, षष्ठविवेक, सूत्र 87-88
3 वही
4 जातकालंकार, अध्याय-2, श्लोक-229-51
5 वही
6 जातकतत्त्व, प्रकीण सूत्र-290-92
7 वही
8 सारावली, अध्याय-42, श्लोक-16 एवं 42

भाव में पापग्रहों की युति या दृष्टि होने से अथवा तृतीयेश पर पापप्रभाव होने से ये रोग होते हैं।

गलगण्ड एवं गण्डमाला के योग

इन बाल रोगों के प्रमुख योग इस प्रकार हैं -

i. सूर्य की दशा में शुक्र की अन्तर्दशा हो।[1]

ii. शुक्र की दशा में सूर्य की अन्तर्दशा हो।[2]

iii. सूर्य के साथ लग्नेश त्रिक स्थान में हो।[3]

iv. सूर्य एवं मंगल षष्ठ या द्वादश स्थान में हो और उन पर शुभ ग्रहों की दृष्टि न हो।[4]

v. चन्द्रमा के साथ लग्नेश त्रिक स्थान में हो तो जलज गण्ड होता है।[5]

vi. लग्नेश, षष्ठेश, एवं चन्दमा - ये तीनों त्रिक स्थान में हो तो जलज गण्ड होता है।[6]

vii. लग्न में मकर का नवांश हो और उस पर पापग्रहों की दृष्टि हो, तो गले में गाँठ होती है।[7]

---

1 सारावली, अध्याय-42, श्लोक-16 एवं 42

2 वही

3 जातकालंकार, अध्याय-2, श्लोक-23

4 जातक तत्त्व, षष्ठविवेक, सूत्र-37

5 जातकालंकार, अध्याय-2, श्लोक-24

6 जातक तत्त्व, षष्ठविवेक, सूत्र 41-42

7 वही

बच्चों के गले में होने वाले अन्य रोग

गले में सूजन, घाव, टान्सिल्स आदि अनेक रोग होते हैं। इन बाल रोगों के प्रमुख योग इस प्रकार हैं -

i. तृतीय भाव में नीच राशि गत, शत्रुराशिगत या अस्तंगत ग्रह हो और उसे पाप ग्रह देखता हो।[1]

ii. तृतीय भाव में पापग्रह हों और वह गुलिक के साथ हो।[2]

iii. केन्द्र या त्रिकोण में राहु या केतु हो।[3]

iv. तृतीयेश बुध के साथ हो।[4]

v. चन्द्रमा चतुर्थ भाव में चतुर्थ भाव के नवांशेश एवं पापग्रह के साथ हो तो कण्ठ रोग होता है।[5]

बच्चों के हाथों में होने वाले रोगों के योग

लूलापन, हाथ कटना, एवं हाथ में पीड़ा होना आदि हस्त-रोग कहलाते हैं। इन बाल-रोगों का विचार ग्रहयोगों के आधार पर किया जाता है।

---

1 क. जातक पारिजात, अध्याय-6, श्लोक-65, 66 एवं 74
ख. दैवज्ञाभरण प्रकाश-1, श्लोक-18-19
ग. सर्वार्थचिन्तामणि, अध्याय-42, श्लोक-44, 45, 47

2 क. जातक पारिजात, अध्याय-6, श्लोक-65, 66 एवं 74
ख. दैवज्ञाभरण प्रकाश-1, श्लोक-18-19
ग. सर्वार्थचिन्तामणि, अध्याय-42, श्लोक-44, 45, 47

3 वही

4 वही

5 वही

हाथ में हथेली का टेढ़ा-मेढ़ा होना, न होना या कट जाना लूलापन कहलाता है। यह बाल रोग जन्मजात भी होता है और जन्म के बाद भी। जन्मजात लूलेपन का विचार पिछले अनुच्छेद में किया जा चुका है। अतः यहाँ जन्म के बाद होने वाले लूलापन एवं हाथ कटने के योगों का विचार कर रहे हैं -

i. नवम भाव में शनि एवं तृतीय में गुरु हो।[1]

ii. अष्टम में शनि एवं द्वादश में गुरु हो।[2]

iii. राहु शनि एवं बुध - ये तीनों दशम में हो।[3]

हाथ कटने के योग

i. तृतीय या नवम में शनि या गुरु हो।[4]

ii. अष्टम या द्वादश स्थान में सूर्य हो।[5]

iii. मंगल के साथ चन्द्रमा सप्तम या अष्टम में हो।[6]

iv. गुरु के साथ चन्द्रमा सप्तम या अष्टम में हो।[7]

v. षष्ठ स्थान में राहु के भोग्यांश में शनि एवं मंगल हों।[8]

---

1 जातक परिजात, अध्याय-5, श्लोक-93

2 वही

3 वही

4 सर्वार्थचिन्तामणि, अध्याय-5, षष्ठभाव-विचार, श्लोक-15

5 वही

6 वही, अध्याय-5, श्लोक-16

7 वही

8 जातक-तत्त्व प्रथम विवेक, सूत्र-328

vi. षष्ठ स्थान में शत्रु राशि में शुक्र के साथ शनि हो।[1]

बालक में हृदय रोग एवम् उसके योग

चतुर्थ भाव हृदय का प्रतिनिधि भाव है। अतः चतुर्थ भाव एवं चतुर्थेश पर पाप प्रभाव इस बाल-रोग का सूचक है। यह रोग बहुधा बालक के मन एवं मस्तिष्क, पर दबाव के कारण होता है। प्रायः देखा जाता है कि आवेग, उद्वेग या संवेग के उग्रतावश बालक को दिल का दौरा पड़ जाता है। फलित शास्त्र में मन का विचार चतुर्थभाव से और मस्तिष्क का विचार पंचम भाव से होता है। इसलिए कुछ आचार्यों ने चतुर्थ एवं पंचम इन दोनों भावों पर पाप प्रभाव को इस बाल रोग का कारण माना है।[2]

इस बाल रोग के प्रमुख योग इस प्रकार है

i. चतुर्थ स्थान में पाप ग्रह हों और चतुर्थेश पाप ग्रहों के साथ हो।[3]

ii. चतुर्थ स्थान में पाप ग्रह हो और चतुर्थेश दो पाप ग्रहों के मध्य हो।[4]

iii. चतुर्थेश जिस नवांश में हो उसका स्वामी क्रूर षष्ठ्यंश में हो और उस पर पापग्रहों की दृष्टि हो।[5]

iv. चतुर्थेश एवम् अष्टमेश दोनों अष्टम में हो।[6]

---

1 जातक-तत्त्व प्रथम विवेक, सूत्र-329

2 जातक पारिजात, अध्याय-11, श्लोक-76

3 वही

4 सर्वार्थचिन्तामणि, अध्याय-5, श्लोक 65-67

5 वही

6 वही

v. नीच राशि में, शत्रु राशि मे या अस्तंगत चतुर्थेश अष्टम में हो।[1]

vi. शनि एवं सूर्य चतुर्थ में हो और षष्ठेश पाप ग्रहों के साथ हो।[2]

vii. सूर्य, मंगल एवं गुरु चतुर्थ में हो।[3]

viii. चतुर्थ एवं पंचम में पाप ग्रह हों।[4]

ix. चतुर्थ एवं पंचम में क्रूर षष्ठयंश हो और शुभ ग्रहों से दृष्ट-युत न हो।[5]

x. चतुर्थ स्थान में शनि हों।[6]

xi. कुम्भ में सूर्य हो।[7]

हृदय शूल एवं हृत्कम्प

बच्चों के हृदय में तीव्र वेदना या असह्य दर्द को हृदय शूल कहते हैं। यह दिल के दौरे का पूर्व लक्षण होता है। दिल में होने वाली घबड़ाहट या बेचैनी को हृत्कम्प कहते हैं। इनका विचार चतुर्थ भाव चतुर्थेश एवं सूर्य से किया जाता है।

हृदय शूल के योग

i. चतुर्थ में स्थित राहु पर पाप ग्रहों की दृष्टि हो और लग्नेश निर्बल हो।[8]

---

1 सर्वार्थचिन्तामणि, अध्याय-5, श्लोक 65-67

2 जातकालंकार, अध्याय-3, श्लोक 35-36

3 वही

4 जातकपारिजात, अध्याय-13, श्लोक 69-70

5 वही

6 सारावली, अध्याय-9, श्लोक-60

7 वही, अध्याय-23, श्लोक-64

8 वही, अध्याय-6, श्लोक-90

ii. चतुर्थेश की राशि का स्वामी क्रूर षष्ट्यंश में हो और पाप ग्रहों से दृष्ट हो।[1]

iii. पाप ग्रहों के साथ सूर्य वृश्चिक राशि में हो।[2]

iv. षष्ठेश सूर्य पापाक्रान्त हो और शुभ ग्रह षष्ठ या द्वादश में हो।[3]

v. द्वादश में राहु तथा चतुर्थ में पापग्रह हों।[4]

vi. शनि एवं मंगल के बीच चन्द्रमा हो और मकर राशि में सूर्य हो।[5]

vii. शनि एवं चन्द्रमा पंचम भाव में हों।[6]

viii. चन्द्रमा दो पाप ग्रहों के बीच में हो और शनि सप्तम स्थान में हो।[7]

ix. कृष्णपक्ष की रात्रि का जन्म हो और लग्न, चतुर्थ या सप्तम में शनि हो।[8]

बालक में हृत्कम्प के योग

i. चतुर्थ स्थान में शुभ ग्रहों पर पाप प्रभाव हो।[9]

ii. दिन में जन्म हो और नष्ट मंगल को गुरु देखता हो।[10]

iii. शुभग्रह क्रूराक्रान्त हों और षष्ठेश पाप युक्त हो।[11]

---

1 गदावली, अध्याय-2, श्लोक 25-26

2 वही

3 वही

4 भावप्रकाश, अध्याय-2, श्लोक-12

5 जातक तत्व, षष्ठ विवेक, सूत्र 148-50

6 वही

7 दैवज्ञाभरण प्रकरण-14, श्लोक-27

8 गदावली, अध्याय-3, श्लोक-28

9 बृहद्यवनजातक, पृष्ठ-50, श्लोक-2

10 गदावली, अध्याय-2, श्लोक-27

11 वही

iv. सूर्य वृश्चिक राशि में हो।[1]

प्लीहा एवम् उसके योग

जिगर एवं तिल्ली के बढ़ने को प्लीहा कहते हैं। इसमें मन्दाग्नि, अरुचि, रक्ताल्पता एवं कमजोरी रहती है। यह बाल रोगों में प्रमुख है। लीवर में गड़बड़ी से यह पैदा होता है। इस बाल रोग के प्रमुख योग इस प्रकार है -

i. षष्ठेश चन्द्रमा पर पाप ग्रहों की दृष्टि हों और शुभग्रह न देखते हो।[2]

ii. लग्न में शनि हो।[3]

iii. षष्ठेश चन्द्रमा पाप ग्रहों के साथ हो।[4]

iv. लग्नेश अस्त हो, उस पर क्रूर ग्रहों की दृष्टि हो और शुभ ग्रह न देखते हों।[5]

v. चन्द्रमा जिस राशि में हो उसका स्वामी और षष्ठेश इन दोनों पर क्रूर ग्रहों की दृष्टि हो।[6]

vi. लग्नेश या सप्तमेश चन्द्रमा पर क्रूर ग्रहों की दृष्टि हो।[7]

मधुमेह एवम् उसके योग

पाचन प्रक्रिया में रक्त-शर्करा को नियन्त्रित करने वाले रसायन (इन्सुलिन) की कमी से रक्त में शर्करा की मात्रा बढ़ जाती है। इस कारण से बच्चे में यह रोग हो जाता है। इस रोग में बार-बार पसीना आना, ज्यादा भूख एवं प्यास लगना और

---

1 गदावली, अध्याय-2, श्लोक-27
2 वही
3 जातंकालंकार, अध्याय-2, श्लोक-43
4 वही, अध्याय-3, श्लोक 35-36
5 जातकतत्त्व, षष्ठ विवेक, सूत्र-145-147
6 वही
7 वही, षष्ठ विवेक, सूत्र 148-150

बार-बार पेशाब आना - इस रोग के लक्षण है। इससे शरीर में दुर्बलता आती है, चेहरे की कान्ति क्षीण होती है और मानसिक चिड़चिड़ापन बढ़ता है। इस बालरोग के प्रमुख योग इस प्रकार है -

i. धनु या मीन राशि में स्थित बुध पर सूर्य की दृष्टि हो।[1]

ii. शनि, सूर्य एवं शुक्र - ये तीनों पंचम स्थान में हों।[2]

iii. लग्न में सूर्य तथा सप्तम में मंगल हो।[3]

iv. दशम में स्थित मंगल शनि से युत या दृष्ट हो।[4]

v. षष्ठ स्थान में मंगल हो और षष्ठेश पाप ग्रहों के साथ हो।[5]

vi. अष्टम भाव में गुरु पर मंगल की दृष्टि हो।[6]

नपुंसकता के योग

सन्तानोत्पादन की क्षमता न होना नपुंसकता कहलाती है। यह नपुंसकता दो प्रकार की होती है - 1. जन्मजात एवं 2. आगन्तुक। जन्म से नपुंसक होने को हिजड़ापन भी कहते हैं। इसका विचार पूर्व अनुच्छेद में किया जा चुका है। यहाँ पर जन्म के बाद होने वाली नपुंसकता पर विचार किया जा रहा है। इसके प्रमुख योग इस प्रकार है -

---

1 सारावली, अध्याय-26, श्लोक-55

2 जातक तत्व, षष्ठविवेक, सूत्र 107-108

3 वही

4 वही

5 दैवज्ञाभरण प्रकरण-14, श्लोक-29

6 बृहद्यवनजातक, पृष्ठ-96, श्लोक-3

i. शुक्र के साथ शनि दशम स्थान में हों।[1]

ii. शुक्र से षष्ठ या व्यय स्थान में शनि हो।[2]

iii. सूर्य, बुध एवं शनि एक साथ हो।[3]

iv. सिंह राशि में स्थित बुध पर मंगल की दृष्टि हो।[4]

v. मकर राशि में शुक्र हो।[5]

vi. पापग्रह सप्तमेश होकर नवम स्थान में हो।[6]

vii. नवमेश अष्टम में हो।[7]

viii. व्ययेश लग्न में हो।[8]

ix. कारकांश में केतु हो और उस पर बुध एवं शनि की दृष्टि हो।[9]

x. अष्टम में शुक्र एवं शनि हो और उन पर शुभ ग्रहों की दृष्टि न हो।[10]

xi. षष्ठ या द्वादश भाव में नीच राशि गत शनि हो।[11]

---

1 जातकालंकार, अध्याय-3, श्लोक-48

2 वही

3 सारावली, अध्याय-16, श्लोक-12

4 वही

5 वही

6 वही

7 बृहद्यवनजातक, पृष्ठ-82, श्लोक-9

8 वही, पृष्ठ-105, श्लोक-8

9 वही, पृष्ठ-141, श्लोक-1

10 जातकतत्त्व, प्रकीर्णसूत्र 145-47

11 वही, प्रकीर्णसूत्र 145-47

xii. मिथुन, कन्या, मकर या कुम्भ राशि में लग्न में बुध हो और उस पर शनि की दृष्टि हो।[1]

xiii. शुक्र के साथ शनि तृतीय या एकादश में हो।[2]

xiv. शुक्र से द्वादश में शत्रुराशिगत शनि हो।[3]

xv. सप्तमेश चर राशि में हो और उसको नपुंसक (बुध या शनि) ग्रह देखता हो।[4]

xvi. षष्ठेश एवं बुध दोनों राहु के साथ हो और लग्नेश से सम्बन्ध रखते हो।[5]

इसके अलावा जातक ग्रन्थों में प्रसिद्ध "षड्क्लीब योगों" का भी यहाँ उपयोग किया जा सकता है।

बालक को होने वाले उदर रोग

उदर में होने वाले रोगों को उदर रोग कहते हैं। अरूचि, मन्दाग्नि, अजीर्ण, अतिसार, संग्रहणी, गुल्म, प्लीहा, कृमि, जलोदर एवम् उदरशूल जैसे उदर-रोगों के योग जातक ग्रन्थों में मिलते हैं।

बच्चों में उदर विकार की प्रतिनिधि राशि सिंह, प्रतिनिधि भाव पंचम एवं प्रतिनिधि ग्रह चन्द्रमा एवं गुरु है। इसके प्रमुख योग इस प्रकार हैं -

सिंह राशि में चन्द्रमा हो।[6]

---

1 जातकतत्त्व, प्रकीर्णसूत्र 145-47
2 दैवज्ञाभरण, प्रकरण-95, श्लोक-23, 26
3 वही
4 वही
5 जातकपारिजात, अध्याय-13, श्लोक-17
6 क. बृहज्जातक, अध्याय-97, श्लोक-5
ख. अध्याय-23, श्लोक-30

षष्ठ स्थान में चन्द्रमा हो।[1]

सप्तम में राहु या केतु हो।[2]

अष्टम में शनि और लग्न में चन्द्रमा हो।[3]

लग्न में विषम राशि में षष्ठेश और विषम राशि में लग्नेश हों और उन पर शनि की दृष्टि हो।[4]

षष्ठ में पापग्रह, अष्टम में शनि एवं शुक्र तथा सप्तम में षष्ठेश हो।[5]

पंचम में वक्री ग्रह और षष्ठ में लग्नेश एवं चतुर्थेश हों।[6]

षष्ठ एवम् अष्टम में पापग्रह और सप्तम में पापग्रह के साथ षष्ठेश हो।[7]

बच्चों में अरूचि, मन्दाग्नि एवं अजीर्ण के योग

i. तृतीय भाव में गुरु हो तो अरूचि हो जाती है।[8]

ii. षष्ठ भाव में गुरु हो तो अरूचि हो जाती है।[9]

iii. लग्न में मंगल हो और षष्ठेश निर्बल हो तो अजीर्ण होता है।[10]

---

1 सारावली, अध्याय-30, श्लोक-19

2 जातकतत्त्व, षष्ठविवेक, सूत्र 59-60

3 वही

4 गदावली, अध्याय-2, श्लोक 28-29

5 वही

6 वही

7 वही

8 सारावली, अध्याय-30, श्लोक 52-55

9 वही

10 जातक पारिजात, अध्याय-6, श्लोक-90

iv. लग्न राशि से युत या दृष्ट हो और निर्बल अष्टमेश पर पापग्रहों की दृष्टि हो तो मन्दाग्नि होती है।[1]

v. षष्ठ या अष्टम में शुक्र के साथ चन्द्रमा हो और उस पर पापग्रह की दृष्टि हो तो मन्दाग्नि होती है।[2]

vi. लग्न में पापग्रह तथा अष्टम में शनि हो तो मन्दाग्नि होती है।[3]

vii. लग्न में राहु तथा अष्टम में शनि हो तो मन्दाग्नि होती है।[4]

अतिसार के योग

बच्चों को अतिसार या पेचिश में बार-बार दस्त आते हैं और बालक कमजोरी अनुभव करता है। इस रोग के प्रमुख योग इस प्रकार हैं -

i. शनि की राशि में बुध हो और उस पर सूर्य की दृष्टि हो।[5]

ii. सप्तम में शुक्र हो।[6]

iii. लग्न में राहु एवं बुध हो तथा सप्तम में शनि एवं मंगल हों।[7]

iv. षष्ठ स्थान में शुक्र हो और षष्ठेश पापग्रहों से युत-दृष्ट हो।[8]

---

1 गदावली, अध्याय-2, श्लोक 29-30

2 वही

3 वही

4 वही

5 सारावली, अध्याय-26, श्लोक-61

6 जातकपारिजात, अध्याय-62, श्लोक-95

7 गदावली, अध्याय-2, श्लोक 29-30

8 वही

संग्रहणी के योग

इस रोग में भी बच्चे को दस्त लगते हैं और दस्त के साथ अपक्व अन्न एवम् आँव निकलता है। इसके प्रमुख योग इस प्रकार है -

i. कारकांश से पंचम में केतु हो।[1]

ii. द्वितीय स्थान में शनि हो।[2]

iii. द्वितीय स्थान में राहु हो।[3]

गुल्म रोग के योग

i. दो पाग्रहों के मध्य में चन्द्रमा हो और सप्तम में शनि हो।[4]

ii. सप्तम में शनि हो।[5]

iii. कर्क, वृश्चिक या कुम्भ के नवांश में शनि के साथ चन्द्रमा हो।[6]

iv. कर्क में स्थित सूर्य पर मंगल की दृष्टि हो।[7]

v. षष्टेश निर्बल हो और लग्न में मंगल हो।[8]

vi. षष्ठ में शनि हो और षष्टेश पापग्रहों से युत-दृष्ट हो।[9]

---

1 क. जातक तत्त्व, षष्ठविवेक, सूत्र 102-104

ख. गदावली, अध्याय-3, श्लोक-22

2 वही

3 वही

4 सारावली, अध्याय-24, श्लोक-74

5 जातकपारिजात, अध्याय-6, श्लोक-95

6 जातकतत्त्व, षष्ठविवेक, सूत्र-101

7 जातकपारिजात, अध्याय-6, श्लोक-61

8 वही, श्लोक-62

9 दैवज्ञाभरण, प्रकाश-14, श्लोक-32

vii. लग्न में शनि और षष्ठ या अष्टम में पापग्रह के साथ क्षीण चन्द्रमा हो।[1]

viii. निर्बल पाप ग्रह पंचम में और निर्बल पंचमेश षष्ठ में हो।[2]

ix. लग्न में मकर या कुम्भ राशि में क्षीण चन्द्र हो तो वातजन्य गुल्म होता है।[3]

x. शनि की राशि में षष्ठ या अष्टम स्थान में क्षीण चन्द्रमा हो तो वातजन्य गुल्म होता है।[4]

बच्चों में कृमि रोग के योग

पेट में कीड़े पड़ने को कृमिरोग कहते हैं। इस बाल-रोग का विचार मुख्य रूप से चन्द्रमा से होता है। इससे प्रमुख योग इस प्रकार है -

अष्टम में क्षीण चन्द्रमा हो।[5]

शत्रुराशिगत सूर्य की दशा में यह बाल रोग होता है।[6]

बच्चों में जलोदर रोग के योग

i. कर्क राशि में शनि तथा मेष में चन्द्रमा हो।[7]

ii. लग्न में राहु तथा लाभ स्थान में सूर्य एवं चन्द्रमा हो।[8]

---

1 गदावली, अध्याय-3, श्लोक 29-30

2 वही

3 वही

4 वही

5 दैवज्ञाभरण, प्रकाश-14, श्लोक-32

6 गदावली, अध्याय-3, श्लोक-28

7 वही, श्लोक-24

8 वही

iii. कर्क में शनि और मकर में चन्द्रमा हो।[1]

उदरशूल के योग

बच्चे के पेट में तीव्र-वेदना (तेज दर्द) का होना, उदरशूल कहलाता है। इसके प्रमुख योग इस प्रकार है -

षष्ठ स्थान में गुरु हो और षष्ठेश पापग्रहों से युत-दृष्ट हो।[2]

षष्ट एवं द्वादश भाव में शनि एवं मंगल हो।[3]

सिंह राशि में स्थित चन्द्रमा पापग्रह से युत दृष्ट हो।[4]

लाभेश तृतीय भाव में हो।[5]

केन्द्र या त्रिकोण में सिंह राशि में शुक्र हो और तृतीय में गुरु हो।[6]

शत्रु राशि या नीच राशि में लग्नेश हो, चतुर्थ में मंगल और शनि पर पापग्रह की दृष्टि हो।[7]

बच्चों में नाभि रोग के योग

बच्चों की नाभि में दर्द होना, नाभि का टेढ़ा होना या अपने स्थान से खिसक जाना आदि नाभि-रोग कहलाते हैं। इसके प्रमुख योग इस प्रकार है -

---

1 जातकपारिजात, अध्याय-6, श्लोक-31

2 दैवज्ञाभरण, प्रकाश-6, श्लोक-31

3 जातकतत्त्व, षष्ठविवेक, सूत्र 133-136

4 वही

5 वही

6 वही

7 जातक पारिजात, अध्याय-6, श्लोक-91

i. लग्नेश एवं चन्द्रमा - दोनों षष्ठ स्थान में हों।[1]

ii. लग्नेश चन्द्रमा एवं षष्ठेष तीनों साथ-साथ हों।[2]

iii. षष्ठेश तृतीय स्थान में हो।[3]

बच्चों में कुक्षि रोग के योग

बच्चों में पसलियों में दर्द होना या गाँठ पड़ जाना आदि के कुक्षि रोग रहते है। इनके प्रमुख योग इस प्रकार हैं -

i. लग्न में पापग्रह हो और अष्टम में शनि हो।[4]

ii. लग्न में राहु तथा अष्टम में शनि हो।[5]

iii. षष्ठ स्थान में गुरु हो और धनु या मीन में चन्द्रमा हो।[6]

बच्चों में गुर्दे के रोगों के योग

गुर्दे में सूजन, संक्रमण, पथरी या अन्य बीमारियों को गुर्दे के रोग कहते हैं। इनके प्रमुख योग इस प्रकार है -

i. धनु या मीन राशि में बुध हो और उस पर सूर्य की दृष्टि हो तो पथरी होती है।[7]

---

1 दैवज्ञाभरण, प्रकाश-14, श्लोक-28

2 वही

3 गदावली, अध्याय-3, श्लोक-34

4 वही, अध्याय-2, श्लोक-30

5 वही

6 वही, श्लोक-31

7 सारावली, अध्याय-25, श्लोक-55

ii. चन्द्रमा जलचर राशि में हो, उसका स्वामी षष्ठ स्थान में हो और उस पर जलीय ग्रहों की दृष्टि हो तो मूत्रकृच्छ्र होता है।

iii. पापग्रह षष्ठ या सप्तम में हो।[1]

iv. क्रूरषष्ट्यंश में षष्ठ, सप्तम या अष्टम में अनेक पापग्रह हों।[2]

v. सप्तम में जलीय ग्रह हो और सप्तमेश भी जलीय ग्रह हो तो मूत्रकृच्छ्र होता है।[3]

vi. पंचम में पापग्रह हो तो मूत्रकृच्छ्र होता है।[4]

vii. सप्तम में जलीय राशि में शनि, सूर्य, मंगल एवं राहु हो तो मूत्रकृच्छ होता है।[5]

viii. सप्तम में जलीय राशि हो, लग्न में जलीय ग्रह हो या उस पर बलवान् जलीय ग्रह की दृष्टि हो तो मूत्रकृच्छ्र होता है।[6]

ix. षष्ठेश या सप्तमेश व्ययेश के साथ हो और उस पर शनि की दृष्टि हो तो मूत्रकृच्छ्र होता है।[7]

x. सप्तम में पापग्रह हो और सप्तमेश षष्ठ में हो तो मूत्रकृच्छ्र होता है।[8]

---

1 जातकपारिजात, अध्याय-6, श्लोक-87

2 जातक तत्त्व, षष्ठविवेक, सूत्र-115

3 सर्वार्थचिन्तामणि, अध्याय-6, श्लोक-112

4 दैवज्ञाभरण, प्रकाश-15, श्लोक 8-12

5 वही

6 वही

7 वही

8 वही

xi. अष्टम में बुध हो तो मूत्रकृच्छ्र होता है।[1]

xii. सप्तम में पापग्रहों से युत-दृष्ट मंगल हो तो मूत्रकृच्छ्र होता है।[2]

xiii. सप्तम में शनि हो और उस पर राहु की दृष्टि हो तो मूत्रकृच्छ्र होता है।[3]

बच्चों में अर्श (बवासीर) रोग के योग

इस रोग के प्रमुख योग इस प्रकार है -

i. व्यय स्थान में स्थित शनि पर पाप ग्रहों की दृष्टि हो।[4]

ii. लग्न में शनि तथा सप्तम में मंगल हो।[5]

iii. सप्तम में पाप ग्रह के साथ अष्टमेश हो।[6]

iv. वृश्चिक राशि में सप्तम में शनि हो और नवम् में मंगल हो।[7]

v. द्वादश में शनि और सप्तम में लग्नेश एवं मंगल हो।[8]

vi. व्यय में स्थित शनि पर लग्नेश एवं मंगल की दृष्टि हो।[9]

vii. लग्नेश एवं मंगल साथ हो।[10]

---

1 दैवज्ञाभरण, प्रकाश-16, श्लोक-11

2 गदावली, अध्याय-1, श्लोक 32-33

3 वही

4 जातकतत्त्व, षष्ठविवेक, सूत्र 138-139

5 वही

6 वही

7 वही

8 वही

9 वही

10 गदावली, अध्याय-2, श्लोक 32-33

viii. वृश्चिक लग्न में मंगल हो उस पर गुरु या शुक्र की दृष्टि न हो।[1]

पंगुता (पोलियो) के योग

i. मेष, कर्क, वृश्चिक, मकर या मीन राशि में पंचम या नवम स्थान में पापग्रह के साथ चन्द्रमा एवं शनि हो।[2]

ii. षष्ठ स्थान में सूर्य मंगल एवं शनि हो।[3]

iii. द्वादश में शनि एवं षष्ठेश हों और उन पर पापग्रहों की दृष्टि हो।[4]

iv. पापग्रहों के साथ अष्टमेश एवं नवमेश चतुर्थ भाव में हो।[5]

v. कर्क राशि में स्थित चन्द्रमा एवं शनि पर शुभ ग्रहों की दृष्टि न हो।[6]

vi. शनि एवं शुक्र एक साथ हो और उन पर शुभ ग्रहों की दृष्टि न हो।[7]

vii. सप्तमेश शनि किसी पाप-ग्रह के साथ हो।[8]

बच्चों में पैरों के रोगों के योग

पंगुता फील पाँव एवं घुटनों में दर्द आदि पैरों के रोग होते हैं। इनमें से पंगुता आदि कुछ रोग जन्मजात भी होते हैं और जन्म के बाद भी।

---

1 गदावली, अध्याय-2, श्लोक 32-33

2 जातकतत्त्व, प्रकीर्ण सूत्र, 340-34

3 वही

4 वही, प्रकीर्ण सूत्र 342-346

5 वही

6 वही

7 वही

8 वही

जातक शास्त्र के अनुसार शनि पैरों का प्रतिनिधि ग्रह ह। द्वादश भाव पैरों का प्रतिनिधि भाव होता है और इन पर पाप प्रभाव बच्चां में पैरों के रोगों का सूचक माना जाता है।

घुटने के दर्द के योग

i. पूर्ण चन्द्रमा एवं मंगल षष्ठ में हों।[1]

ii. शनि चन्द्रमा एवं मंगल द्वादश भाव में हों।[2]

फील पाँव एवम् अन्य पैरों के रोगों के योग

फील पाँव में बच्चे के पैर हाथी के पैर के समान फूल जाते हैं। इस रोग के प्रमुख योग इस प्रकार है -

i. मंगल, बुध एवं शुक्र एक साथ हों तो फील पाँव होता है।[3]

ii. षष्ठ में शनि हो तो पैर में यह रोग होता है।[4]

iii. षष्ठ में शनि एवं शुक्र दोनों हो तो पैर में यह रोग होता है।[5]

iv. द्वादश में पापग्रह से युत-दृष्ट लग्नेश हो तो बालक बैसाखी के सहारे चलता है।[6]

---

1 जातकतत्त्व, प्रकीर्ण, सूत्र-338

2 वही, 319

3 वीरसिंहावलोक, श्लीपदरोगाधिकार, पृष्ठ-195

4 गदावली, अध्याय-2, श्लोक-43

5 वही

6 जातकतत्त्व, प्रकीर्ण सूत्र-52

महामारी एवं छूत से सम्बन्धित बाल-रोग

प्राकृतिक प्रकोप से फैलने वाली बीमारियों को महामारी कहते हैं। ये बीमारियां एक-साथ एक क्षेत्र में फैलती हैं और अचानक वहाँ के निवासियों में फैल जाती हैं। बच्चे का शरीर नाजुक हुआ करता है। अतः ये बीमारियाँ सबसे पहले बच्चों को घेरती हैं। ऐसी बीमारियों में चेचक एवं हैजा प्रमुख हैं।

छूत की बीमारी, उस संचारी रोग को कहते हैं, जो छूने से फैलती है। ऐसे रोगों में चेचक, हैजा, तपेदिक एवं कुष्ठ रोग प्रमुख हैं।

चेचक एवम् उसके योग

चेचक में शरीर पर मसूर के दानों जैसे फफोले निकल आते हैं। बच्चे के शरीर में ज्वर रहता है। दानों में खुजली एवं जलन होती है। बच्चे को बैचेनी रहती है और प्यास अधिक लगती है। कभी-कभी इस रोग के कारण बालक अन्धा, बहरा या गूँगा भी हो जाता है। आजकल इस रोग पर पर्याप्त नियन्त्रक कर लिया गया है, प्राचीन-काल में लोग इसके दुष्परिणामों से डरते थे। मसूर जैसे दाने निकलने के कारण इसको मसूरिका भी कहा जाता है। जिन बच्चों की कुण्डली में निम्नलिखित योगों में से कोई योग, हो, उसे चेचक निकलती है -

i. लग्न में मंगल हो और उस पर शनि एवं सूर्य की दृष्टि हो।[1]

ii. लग्न, द्वितीय, सप्तम या अष्टम में स्थित सूर्य पर मंगल की दृष्टि हो।[2]

---

1 जातकपारिजात, अध्याय-6, श्लोक-63

2 वही, अध्याय-11, श्लोक-71

iii. उक्त स्थान में मंगल हो और उस पर सूर्य की दृष्टि हो।[1]

iv. लग्न, षष्ठ, सप्तम या द्वादश में मंगल एवं गुलिक हो और उन पर सूर्य की दृष्टि हो।[2]

हैजा एवम् उसके योग

हैजा भी एक महामारी है, जिससे बच्चे को उल्टी एवं दस्त होने लगते हैं। शरीर में पानी की कमी हो जाती है। बच्चे को बार-बार प्यास लगती है और पूरे शरीर में अकड़न आ जाती है। यदि समय पर इस रोग का उपचार न किया जाए तो यह रोग प्राणघातक हो सकता है। निम्नलिखित योगों में उत्पन्न बालक को हैजा होता है -

i. सप्तम स्थान में शुक्र हो और उस पर पाप ग्रहों की दृष्टि हो।[3]

ii. लग्न में राहु एवं बुध हो और सप्तम स्थान में मंगल एवं शनि के साथ केतु हो।[4]

तपेदिक (टी0बी0) एवम् उसके योग

तपेदिक अथवा क्षय एवं संचारी रोग है, जिसमें ज्वर लगातार बना रहता है। अल्पपरिश्रम से थकान, रोग है, जिसमें ज्वर लगातार बना रहता है। अल्पपरिश्रम से थकान, बार-बार खांसी, श्वास फूलना, गले में खुश्की, मन्दाग्नि, कब्ज, शरीर का शनैः

---

1 जातक पारिजात, अध्याय-11, श्लोक-71

2 जातकतत्त्व, षष्ठविवेक, सूत्र-166

3 जातकपारिजात, अध्याय-6, श्लोक-95

4 जातकतत्त्व, षष्ठविवेक, सूत्र-104

शनैः क्षीण होना, रक्ताल्पता, आँख एवं नाखूनों का सफेद पड़ना और मन में चिड़चिड़ापन होना - ये सब तपेदिक के पूर्व लक्षण माने जाते हैं। बच्चे को इस रोग में हाथ-पैरों में जलन, शरीर में कमजोरी, स्वभाव में असहिष्णुता, मन में बेचैनी और खांसी एवं बुखार का लगातार बना रहना-इसके लक्षण हैं। फलित ग्रन्थों में इस रोग को क्षय, यक्ष्मा एवं राजयक्ष्मा कहा जाता है। इस रोग के प्रमुख योग इस प्रकार है -

i. लग्नेश एवं शुक्र त्रिक स्थान में हो।[1]

ii. लग्न पर शनि एवं मंगल की दृष्टि हो।[2]

iii. कर्क राशि में बुध हो।[3]

iv. अष्टम में पापग्रह, पंचम में शनि एवं एकादश में सूर्य हो।[4]

v. दशम में शनि एवं मंगल और लग्न, चतुर्थ या अष्टम में सूर्य हो।[5]

vi. षष्ठ स्थान में बुध और मंगल क्रूरांश में हो और उस पर चन्द्रमा एवं शुक्र की दृष्टि हो।[6]

vii. कारकांश लग्न से चुतर्थ में मंगल और द्वादश में राहु हो।[7]

viii. षष्ठ या अष्टम में मंगल एवं चन्द्रमा हो और उन पर लग्नेश की दृष्टि हो।[8]

---

1 गदावली, प्रकरण-3, श्लोक 19-20

2 वही

3 वही

4 वही

5 वही

6 वही

7 वही

8 वही

ix. षष्ठ स्थान में जलराशि में क्षीण चन्द्रमा हो और लग्न में पापग्रह हो।[1]

x. षष्ठ स्थान में गुलिक एवं शनि हो, उन पर सूर्य मंगल या राहु की दृष्टि हो और वे शुभ ग्रहों से युत या दृष्ट न हो।[2]

xi. सूर्य एवं चन्द्रमा एक-दूसरे की राशि या नवांश में हो।[3]

xii. कर्क या सिंह में साथ-साथ सूर्य एवं चन्द्रमा हों।[4]

xiii. शनि के साथ चन्द्रमा हो और उस पर मंगल की दृष्टि हो।[5]

बच्चे में कुष्ठ एवम् उसके योग

कुष्ठ भी एक छूत की बीमारी है, जो एक से दूसरे को चली जाती है। जब वात आदि दोष त्वचा, मांस एवं रक्त को दूषित कर देते हैं, तब बच्चे को यह रोग होता है। इस रोग में बच्चे के शरीर पर लाल, नीले, या सफेद दाग बन जाते हैं और शरीर के अंग धीरे-धीरे गलने लगते है। निम्नलिखित योगों में उत्पन्न बालक को यह रोग होता है -

i. सूर्य, शुक्र एवं शनि-ये तीनों एक साथ हों।[6]

ii. मंगल की राशि में सूर्य हो और उस पर शुक्र की दृष्टि हो।[7]

---

1 गदावली, प्रकरण-3, श्लोक 19-20

2 क. जातकपारिजात, अध्याय-6, श्लोक-95

ख. सर्वार्थचिन्तामणि, अध्याय-5, श्लोक-39

3 वही

4 वही

5 वही

6 सारावली, अध्याय-16, श्लोक-15, अध्याय-22, श्लोक-8 एवं 40

7 वही

iii. सिंह राशि में सूर्य हो और उस पर शुक्र की दृष्टि हो।[1]

iv. मंगल एवं शनि के साथ चन्द्रमा मेष या वृष में हो।[2]

v. चन्द्र, मंगल, गुरु, शुक्र एवं शनि ये कर्क, वृश्चिक या मीन राशि में हो।[3]

vi. मेष में बुध, दशम में चन्द्रमा और मंगल एवं शनि साथ-साथ हों।[4]

vii. मिथुन, कर्क या मीन के नवांश में स्थित चन्द्रमा पर मंगल एवं शनि की दृष्टि हो।[5]

viii. बृष, कर्क, वृश्चिक या मकर राशिगत पाप ग्रहों से लग्न एवं त्रिकोण दृष्ट या युत हों।[6]

ix. चन्द्र, बुध एवं लग्नेश - तीनों राहु या केतु के साथ हों।[7]

x. लग्न में मंगल, अष्टम में सूर्य और चतुर्थ में शनि हों।[8]

बच्चों में विविध कुष्ठों के योग

i. शनि, मंगल, चन्द्रमा एवं शुक्र - ये चारों पापग्रहों से युत या दृष्ट होकर जल राशियों में हो, गलित कुष्ठ होता है।[9]

---

1 सारावली, अध्याय-16, श्लोक-15, अध्याय-22, श्लोक-8 एवं 40

2 जातकालंकार, अध्याय-2, श्लोक-5

3 वही

4 क. जातकतत्व, षष्ठविवेक, सूत्र 116-117

5 वही

6 जातक तत्त्व, षष्ठविवेक, सूत्र 51-52

7 वही

8 वही

9 क. जातक तत्त्व, षष्ठविवेक, सूत्र 120-25
ख. गदावली, प्रकरण-3, श्लोक 58-59

ii. शनि, मंगल एवं सूर्य - ये तीनों साथ हो, तो रक्त - कृष्ण कुष्ठ होता है।[1]

iii. मंगल के साथ षष्ठेश लग्न में हो, तो पीत कुष्ठ होता है।[2]

iv. शनि के साथ षष्ठेश लग्न में हो, तो कफज कुष्ठ होता है।[3]

v. सूर्य के षष्ठेश लग्न में हो तो रक्त कुष्ठ होता है।[4]

vi. कारकांश से चतुर्थ में चन्द्रमा हो और उस पर केतु की दृष्टि हो, तो नील कुष्ठ होता है।[5]

vii. कारकांश से चतुर्थ में चन्द्रमा हो और उस पर मंगल की दृष्टि हो तो गलित कुष्ठ होता है।[6]

बच्चों में श्वेत कुष्ठ एवम् उसके योग

i. कारकांश से चतुर्थ में चन्द्रमा पर शुक्र की दृष्टि हो।[7]

ii. चन्द्रमा एवं शुक्र-दोनों पापग्रहों के साथ जलराशि में हो।[8]

iii. लग्नेश राहु या केतु के साथ हो।[9]

---

1 क. जातक तत्त्व, षष्ठविवेक, सूत्र 120-25
ख. गदावली, प्रकरण-3, श्लोक 58-59

2 वही

3 वही

4 वही

5 जैमिनी सूत्र, अध्याय-1, पाद-2, सूत्र 89-90

6 वही

7 वही, सूत्र-88

8 जातकतत्त्व, षष्ठविवेक, सूत्र 128-32

9 वही

iv. चन्द्रमा एवं मंगल-राहु या केतु के साथ हों।[1]

v. शनि मंगल एवं चन्द्रमा मेष या बृष में हो।[2]

vi. शनि एवं मंगल क्रमश द्वादश एवं द्वितीय में हों, लग्न में चन्द्रमा और सप्तम में सूर्य हों।[3]

vii. लग्नेश एवं बुध और चन्द्रमा एवं मंगल साथ-साथ हों और राहु या केतु से युक्त हों।[4]

viii. कर्क, वृश्चिक या मीन में सूर्य एवं चन्द्रमा हों।[5]

ix. लग्नेश अष्टम में हो और उस पर पापग्रहों की दृष्टि हो।[6]

बच्चों में होने वाले दोषजन्य प्रमुख रोग

फलित ग्रन्थों में बच्चों को होने वाले शारीरिक रोगों को दो वर्गों में विभाजित किया गया है - 1. अंगों के रोग एवं 2. दोष जन्य रोग। अंगों के प्रमुख रोगों का विचार पिछले अनुच्छेद में किया जा चुका है। यहाँ पर बच्चों में होने वाले दोष जन्य रोगों का विचार किया जाएगा।

वात, पित्त एवं कफ - इन तीनों को आयुर्वेद में दोष कहा जाता है। इनका समानुपात या सन्तुलन स्वास्थ्य विकास करता है और इनका असन्तुलन या प्रकोप

---

1 जातकतत्त्व, षष्ठविवेक, सूत्र 128-32
2 वही
3 वही
4 गदावली, प्रकरण-3, श्लोक 55-57
5 वही
6 वही

बच्चों में रोगों को पैदा करता है। आयुर्वेद की दृष्टि से सभी रोग वात, पित्त एवं कफ - इन दोषों के प्रकोप से पैदा होते हैं।[1] इन दोषों के शमन की चिकित्सा से ठीक हो जाते हैं। होराशास्त्र के आचार्यों का आयुर्वेद की इस मान्यता से कोई विरोध नहीं है। किन्तु उन्होंने बाल रोगों का पूर्वानुमान करने के लिए अपनी सुविधानुसार वर्गीकरण किया है और जिन रोगों से शरीर के एक अंग में विकार होता है, उन्हें अंगों का रोग तथा जो रोग किसी खास अंग में न होकर शरीर में होते हैं - उन्हें दोषाजन्य रोग कहा जाता है।

दोष जन्य बाल-रोगों में पक्षाघात, शीतपित्त, क्षय, ज्वर, पाण्डु (पीलिया) सूखा, चर्म रोग एवं गण्ड प्रमुख हैं, जिनका विचार यहाँ किया जा रहा है। ये रोग बच्चे के निश्चित अंग में न होकर शरीर में होते हैं। अतः इनको दोषजन्य रोग कहते हैं -

1. बच्चों में पक्षाघात के योग

लकवा या अधरंग को पक्षाघात कहते हैं। इस रोग में बच्चे के शरीर का आधा भाग संज्ञाहीन, निश्चेष्ट एवं निष्क्रिय हो जाता है। वात रोगों में यह मुख्य होता है। इसलिए इसको अर्धाङ्ग - वात भी कहते हैं। इस रोग के प्रमुख योग इस प्रकार हैं -

i. शनि के साथ चन्द्रमा का ईसराफ[2] योग हो।[3]

ii. शन के साथ क्षीण चन्द्रमा का ईसराफ योग हो।[4]

---

1 क. चरक संहिता - उत्तर तन्त्र, अध्याय-40, श्लोक-2

ख. सुश्रुत संहिता, 5/29

2 शीघ्र गति ग्रह मन्द गति ग्रह से आगे हो, तो यह योग ईसराफ कहलाता है।

3 गदावली, अध्याय-3, श्लोक 42-43

4 वही

iii. चन्द्रमा अस्तगत हो और पापप्रभाव में हो।[1]

iv. षष्ठेश पापाक्रान्त हो एवं गुरु से दृष्ट न हो और षष्ठ-भाव में पापग्रह हों।[2]

v. कर्क राशि में स्थित सूर्य पर शनि की दृष्टि हो।[3]

vi. पाप ग्रहों के साथ चन्द्रमा षष्ठ स्थान में हो और उस पर पापग्रहों की दृष्टि हो।[4]

vii. क्षीण चन्द्रमा एवं शनि व्यय-स्थान में हों।[5]

बच्चों में शीत-पित्त के योग

ठण्डी हवा या पानी के स्पर्श से पित्त के साथ कफ एवं वायु कुपित होने पर पूरे शरीर में छोटे-छोटे दाने निकल आते हैं। इस रोग को शीतपित्त कहते हैं। इस रोग में बच्चे को सूजन, खुजली, जलन गले में खुश्की एवं शरीर में हल्का ज्वर रहता है। इस रोग के प्रमुख योग इस प्रकार हैं -

सूर्य, शुक्र एवं शनि-तीनों एक साथ हों।[6]

शनि षष्ठेश हो और वह पाप ग्रहों के साथ चतुर्थ में हो।[7]

गुरु षष्ठेश हो और वह पापग्रहों के साथ चतुर्थ में हो।[8]

---

1 गदावली, अध्याय-3, श्लोक 42-43

2 वही

3 सारावली, अध्याय-22, श्लोक-33

4 जातक पारिजात, अध्याय-6, श्लोक-95

5 जातकतत्त्व, षष्ठविवेक, सूत्र-113

6 वीरसिंहावलोक, पृष्ठ-226

7 भावप्रकाश, अध्याय-4, श्लोक-4

8 वही

बच्चों में क्षयरोग के योग

यक्ष्मा, राजयखमा, तपेदिक या क्षय एक संचारी रोग है। इसमें बच्चे के हाथ, पैर एवं बगल में गर्मी, मन्द ज्वर, छाती में बलगम, शरीर में गाँठें, थोड़ी मेहनत से थकान मन्दाग्नि, रक्ताल्पता एवं शरीर में क्षीणता रहती है। यह रोग खाँसने एवं बलगम के विषाणुओं से फैलता है। इस बाल-रोग का विचार पिछले अनुच्छेद में किया जा चुका है।

बच्चों में ज्वर के योग

बुखार आने को ज्वर कहते हैं। इसका मुख्य प्रतिनिधि ग्रह सूर्य है और चन्द्रमा एवं मंगल इसके सहायक माने जाते हैं। इसके प्रमुख योग इस प्रकार है -

लग्नेश एवं षष्ठेश - सूर्य के साथ हों।[1]

राहु, सूर्य एवं मंगल के साथ शनि हो।[2]

षष्ठ स्थान में मंगल और अष्टम में षष्ठेश हो।[3]

अष्टमेश क्रूरषष्ठ्यंश में राहु या केतु के साथ हो तो चातुर्थिक (चौथिया) ज्वर आता है।[4]

गुरु की दशा में मंगल का अन्तर हों।[5]

---

1 भावप्रकाश, अध्याय-7, श्लोक-4

2 गदावली, अध्याय-3, श्लोक-17

3 वही

4 वही

5 जातक पारिजात, अध्याय-18, श्लोक 117-122

शनि की दशा में शनि का अन्तर हो।[1]

नीच राशिस्थ सूर्य की दशा या अन्तर्दशा हो।[2]

क्षीण चन्द्रमा की दशा या भुक्ति हो।[3]

केतु की दशा में बुध की भुक्ति हो।[4]

शनि की दशा में राहु की भुक्ति हो।[5]

बच्चों को एक-साथ होने वाले अनेक रोगों के योग

बहुधा एक बच्चे को एक-साथ अनेक रोग हो जाते हैं और काफी समय तक चलते हैं। कई बार उनका निदान हो जाता है और अनेक बार नहीं होता। जातक ग्रन्थों में ऐसे बालरोगों का विचार एवं विवेचन किया गया है। एक समय में अनेक रोग होने के कुछ प्रमुख योग इस प्रकार हैं -

i. अष्टम में शनि हो, तो कुष्ठ एवं भगन्दर होता है।[6]

ii. वृष राशि में सूर्य हो, तो मुख एवं नेत्र रोग होते हैं।[7]

iii. कर्क राशि में सूर्य हो, तो कफ एवं पित्त विकार होते हैं।[8]

---

1 जातक पारिजात, अध्याय-18, श्लोक 117-122

2 सारावली, अध्याय-42, श्लोक-16

3 वीरसिंहावलोक, पृष्ठ-2

4 वही

5 वही

6 सारावली, अध्याय-30, श्लोक-81

7 वही, अध्याय-22, श्लोक-10

8 वही, श्लोक-26

iv. कर्क में स्थित सूर्य को मंगल देखता हो, तो शोफ एवं भगन्दर होता है।[1]

v. कर्क में स्थित सूर्य को शनि देखता हो, तो कफ एवं वायु विकार होता है।[2]

vi. सिंह में स्थित सूर्य को शुक्र देखता हो, तो अर्श एवं कुष्ठ होता है।[3]

vii. कर्क में स्थित मंगल पर शनि की दृष्टि हो, तो अनेक रोग होते हैं।[4]

viii. धनु या मीन में बुध एवं सूर्य हो तो शूल, प्रमेह एवं पथरी होती है।[5]

ix. दो पाप ग्रहों के मध्य में चन्द्रमा हो और सप्तम में शनि हो, तो श्वास, क्षय, प्लीहा, एवं गुल्म रोग होता है।[6]

x. लग्न में सूर्य, राहु, मंगल एवं शनि हो, तो रक्त विकार एवं पाण्डु होता है।[7]

xi. लग्न में पापग्रह की राशि में गुरु एवं चन्द्रमा हों, तो सिर में चोट, वातशूल एवं मन्दाग्नि होती है।[8]

xii. दो पाप ग्रहों के मध्य में चन्द्रमा हो और मकर राशि में सूर्य हो, तो खांसी, श्वास, क्षय, प्लीहा, विद्रधि एवं गुल्म होता है।[9]

xiii. षष्ठ भाव में मंगल एवं चन्द्रमा हो, तो भ्रान्ति, एवं पाण्डु होता है।

---

1 सारावली, अध्याय-30, श्लोक-81

2 वही, अध्याय-25, श्लोक - 40, 44

3 वही, अध्याय-36, श्लोक-55

4 वही

5 वही

6 वही

7 बृहद्यवनजातक, पृष्ठ-14, श्लोक-14

8 वही, श्लोक-15, श्लोक 18-19

9 वही

xiv. षष्ठ में चन्द्रमा, सूर्य एवं मंगल हो तो शूल एवं विसर्प होता है।

xv. षष्ठ में गुलिक के साथ शनि हो और उस पर सूर्य, मंगल एवं राहु की दृष्टि हो तो खांसी, श्वास एवं क्षय होता है।

xvi. षष्ठेश निर्बल हो या लग्न में मंगल हो, तो सिरदर्द, मुख रोग गुल्म एवं विद्रधि होता है।

xvii. षष्ठ स्थान में मंगल हो तथा षष्ठेश पाप ग्रहों से दृष्ट-युत हो, तो शूल एवं प्रमेह होता है।

xviii. षष्ठ स्थान में बुध हो और षष्ठेश पापग्रहों से दृष्ट-युत हो, तो श्लेष्मा एवं वायु विकार होता है।

अन्य प्रमुख बाल रोग

बाल रोगों में पीलिया एवं सूखा दो प्रकार रोग हैं। पीलिया मुख्यतः जिगर की खराबी से पैदा होने वाली बीमारी है। इसमें आँखें, नाखून एवं शरीर का रंग पीला पड़ जाता है। टट्टी एवं पेशाब का रंग भी पीला हो जाता है। अरूचि, मंदाग्नि एवं पाचन-क्रिया कमजोर हो जाती है और शरीर में खून की कमी हो जाती है। सूखा रोग में शरीर सूख जाता है। शरीर की हड्डियां दिखलाई पड़ती है। शरीर में दुर्बलता एवं खून की कमी हो जाती है।

बच्चों में पीलिया रोग के योग

i. मंगल के साथ चन्द्रमा षष्ठ स्थान में हो।[1]

---

1 जातक पारिजात, अध्याय-6, श्लोक-92

ii. अष्टम स्थान में शनि हो।[1]

iii. सिंह के नवांश में चन्द्रमा हो।[2]

iv. षष्ठ में मंगल के साथ चन्द्रमा हो।[3]

v. शुक्र की दशा में चन्द्रमा की भुक्ति हो।[4]

बच्चों में सूखा के योग

i. सूर्य एवं चन्द्रमा सिंह राशि में हो।[5]

ii. सूर्य एवं चन्द्रमा कर्क राशि में हो।[6]

iii. सूर्य एवं चन्द्रमा एक दूसरे की राशि में हो।[7]

iv. रोगों के विषय में बतलाया गया है।

v. सूर्य कर्क राशि या कर्क के नवांश में हो।[8]

vi. चन्द्रमा सिंह राशि या सिंह के नवांश में हो।[9]

vii. लग्नेश दुर्बल हो और वह शुष्क राशि[10] में हो।[11]

---

1 वीर सिंहावलोक, रोगाधिकार, पृष्ठ-51

2 वही

3 जातक पारिजात, अध्याय-6, श्लोक-92

4 वीर सिंहावलोक, पृष्ठ-53

5 जातक पारिजात, अध्याय-6, श्लोक-92

6 वही

7 जातक तत्त्व, षष्ठ विवेक, सूत्र-100

8 गदावली, अध्याय-3, श्लोक-17

9 वही

10 मेष, वृष, मिथुन, सिंह, कन्या, एवं धनु शुष्क राशियाँ होती है।

11 जातक तत्त्व, प्रकीर्ण सूत्र-34

viii. लग्न में शुष्क राशि में शुष्क ग्रह[1] हों।[2]

ix. लग्नेश शुष्क ग्रह हो और वह शुष्क राशि में हो।[3]

x. लग्नेश अष्टम में शुष्क राशि में हो।[4]

xi. लग्नेश शुष्क ग्रह के नवांश में हो।[5]

इस प्रकार ज्योतिषशास्त्र में विभिन्न योगों उनके कारण बच्चों को होने वाले रोगों के विषय में बतलाया गया है।

---

1 सूर्य, मंगल, शनि को शुष्क ग्रह कहते हैं।

2 दैवज्ञाभरण पृष्ठ-93, श्लोक 46-48

3 वही

4 वही

5 दैवज्ञाभरण पृष्ठ-93, श्लोक 46-48
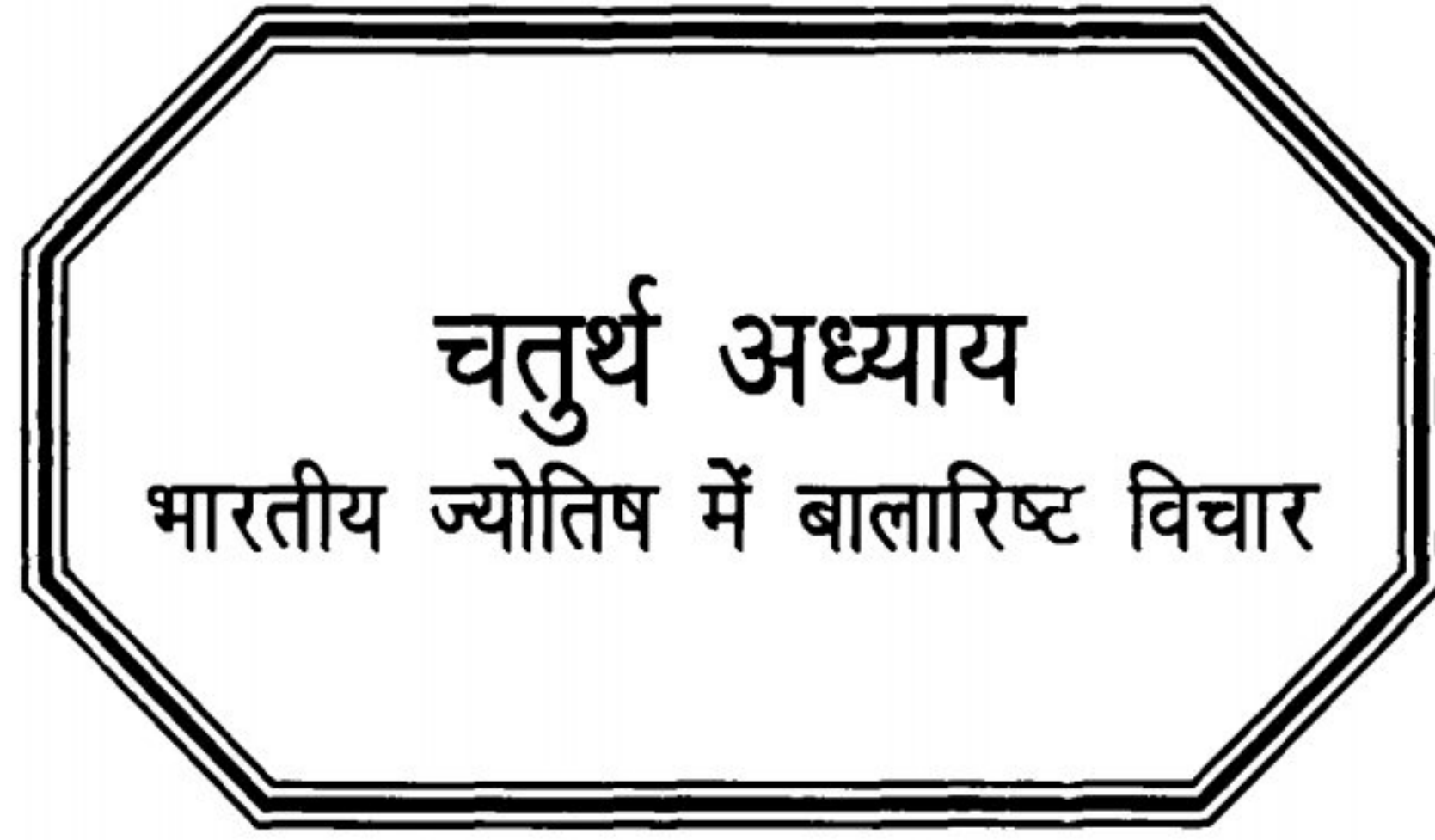
चतुर्थ अध्याय

भारतीय ज्योतिष में बालारिष्ट विचार

1. बालारिष्ट परिचय एवं परिज्ञान

वस्तुतः प्रत्येक प्राणी के जीवन में मृत्यु अनिवार्य होती है। मृत्यु किसी रोग या आकस्मिक दुर्घटना के बहाने आती है और प्राणों को साथ ले जाती है। मृत्यु का मुख्य कारण ग्रह का जन्म कुण्डली में विभिन्न स्थितियों में होना बनता है। बालक की मृत्यु में मुख्य रूप से चन्द्रमा का पीड़ित होना बताया गया है। बचपन में अकाल मृत्यु के सूचक योग बालारिष्ट योग कहलाते हैं। ये बच्चों में बीमारियों के सूचक होते हैं।

यदि अरिष्ट योग भंग होता हो, तो उस योग से बच्चों को बीमारियों होती है लेकिन उनका जीवन सुरक्षित रहता है। रोग चिकित्सा द्वारा ठीक हो जाते है और यदि अरिष्ट योग का भंग न हो, तो इन बीमारियों से बचपन में ही मृत्यु हो जाती है। मृत्यु एक महारोग है। अतः बालारिष्ट कारक ग्रह रोगकारक होता है। जिन बच्चों का जन्म अरिष्ट योगों में होता है, वे बच्चे इन योगों के प्रभाव वश 12 वर्ष की आयु के भीतर मर जाते हैं।

कुछ आचार्यों का यह भी मत है कि बालारिष्ट योग बच्चे के माता-पिता के उन पापों के द्योतक हैं, जिनके प्रभाव से उसकी मृत्यु होती है।[1] इन योगों को बालारिष्ट योग कहते हैं। यदि हमें रोग की पूर्व सूचना मिल जाए और सावधानीपूर्वक उसका उपचार कर दिया जाए तो रोगजन्य कष्टानुभूति से मानवीय सभ्यता को राहत मिल सकती है, साथ ही आयुष्य की दीर्घता भी बढ़ सकती है।

---

1 क. जातक-पारिजात, अध्याय-4, श्लोक-4

ख. फलदीपिका, अध्याय-13, श्लोक-3

आज का आधुनिकतम विज्ञान व्यक्ति के बीमार होने के बाद ही उसकी बीमारी का पता लगा पाता है, व्यक्ति की मृत्यु होने के बाद वह मृत्यु के कारणों का पता लगाने की व्यर्थ कोशिश करता है। स्वस्थ व्यक्ति में छिपी हुई बीमारी कब प्रकट होगी? कौन-सी बीमारी होगी? क्यों होगी? किन परिस्थितियों में किन कारणों से व्यक्ति की मृत्यु होगी? इसके पूर्वानुमान का परिमापन न तो आयुर्वेद के पास है न आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के पास है। संसार के किसी भी चिकित्सा विज्ञान के पास इसका कोई उत्तर नहीं है। इसका एकमात्र उत्तर यदि कहीं है तो केवल ज्योतिष शास्त्र में है।

ज्योतिष शास्त्र के आचार्यों का मानना है कि बाल रोगों का निर्णय करते समय सर्वप्रथम बालक की आयु का निर्णय करना चाहिए।[1] यदि रोगारम्भ के समय बालक की आयु समाप्त न होती हो तो बालक का रोग साध्य होता है और वह चिकित्सा द्वारा ठीक हो जाता है। रोगारम्भ के आस-पास ही यदि बालक की आयु समाप्त हो जाए तो उस समय उत्पन्न होने वाला रोग असाध्य होता है और उससे बालक की मृत्यु हो जाती है। इसलिए बालरोग एवं बालारिष्ट का निर्णय करने के लिए आयु का विचार करना आवश्यक होता है।

आयु एवम् उसके भेद

जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त के जीवन काल को आयु कहते हैं। ज्योतिष शास्त्र के मनीषियों ने जन्मान्तर में किए गए कर्मों को भोगने के लिए प्राणी के जीवनकाल को उसकी आयु कहा है। यह आयु प्रारब्ध आदि कर्म के प्रभाव से दीर्घ, मध्य या अल्प होती है।[2]

---

1 प्रश्नमार्ग, अध्याय-9, श्लोक-3

2 वही, श्लोक-45

फलित शास्त्र में आयु की निर्णय योग, निसर्गादिभेद एवं दशा के द्वारा किया जाता है। विभिन्न योगों के द्वारा निर्णीत आयु को योगायु तथा दशाओं के द्वारा निर्णीत आयु को दशायु कहते है।[1] निसर्गादि आयु का स्पष्टीकरण गणितीय प्रक्रिया द्वारा किया जाता है।

1. योगायु

योगायु का निर्णय मुख्यतया निम्नलिखित 6 प्रकार के योगों से किया जाता है -

क. सद्योरिष्ट योग

ख. अरिष्ट योग

ग. अल्पायु योग

घ. मध्यायु योग

ङ दीर्घायु योग

च. अमितायु योग

सद्योरिष्ट योगों में अधिकतम एक वर्ष की आयु होती है। अरिष्ट योग होने पर 2 वर्ष से 12 वर्ष तक की आयु होती है। अल्पायु योग में अधिकतम 23 वर्ष की, मध्यायु योग में 70 वर्ष तथा दीर्घायु योगों में अधिकतम 100 वर्ष आयु होती है। अमितायु योग होने पर व्यक्ति 100 वर्ष से अधिक जीवित रहता है।[2]

---

1 प्रश्नमार्ग, अध्याय-9, श्लोक-5

2 वही, श्लोक-54-58

क. सद्योरिष्ट योग

ज्योतिष शास्त्र के विविध ग्रन्थों में सद्योरिष्ट के अनेक योगों का वर्णन मिलता है। इन योगों के होने पर उत्पन्न शिशु की। एक वर्ष के भीतर मृत्यु हो जाती है। इन योगों में प्रमुख योग इस प्रकार हैं -

1. सन्ध्याकाल में चन्द्रमा की होरा में जन्म हो तथा पापग्रह राशियों के अंतिम नवांश में हो, तो जातक की शीघ्र मृत्यु होती है।[1]
2. कुण्डली के चारों केन्द्र स्थानों में पापग्रह हो तथा चन्द्रमा भी इनके साथ हो तो शीघ्र मृत्यु होती है।[2]
3. चन्द्रमा के पूर्वार्ध में पापग्रह तथा चन्द्र के परार्ध में शुभग्रह हों तो शीघ्र मृत्यु होती है।[3]
4. जन्म लग्न एवं सप्तम स्थान से द्वितीय एवं द्वादश में पापग्रह हो तो शीघ्र मुत्यु होती है।[4]
5. लग्न एवं सप्तम में पापग्रह हो तथा चन्द्रमा पापग्रह के साथ हो और उस पर किसी शुभग्रह की दृष्टि न हो तो शीघ्र मृत्यु हो जाती है।[5]
6. क्षीण चन्द्रमा द्वादश स्थान में हो, लग्न तथा अष्टम में पापग्रह हों और केन्द्र में शुभग्रह न हो तो शीघ्र मृत्यु होती है।[6]

---

1 बृहज्जातक, अध्याय-6, श्लोक 1-4
2 वही
3 वही
4 वही
5 वही
6 वही

7. शनि, मंगल एवं सूर्य - ये तीनों एक-साथ अष्टम स्थान में या षष्ठ स्थान में हो तथा शुभ ग्रहों से दृष्ट युत न हों तो शीघ्र मृत्यु होती है।[1]

8. जन्म कुण्डली में मंगल चन्द्रमा के या लग्न के नवांश में हो, उस पर गुरु की दृष्टि न हो तथा चन्द्रमा पंचम में हो तो शिशु शीघ्र मर जाता है।[2]

9. लग्नेश नीच राशि में हो या अष्टम स्थान में हो तथा राशि भी नीच में हो या सप्तम में हो तो जातक शीघ्र मर जाता है।[3]

10. जन्म के समय सूर्यादि ग्रह बलहीन होकर आपोक्लिम में हों तो उत्पन्न शिशु 2 या 6 मास के भीतर मर जाता है।[4]

11. शनि लग्न या सप्तम स्थान में हो, चन्द्रमा वृश्चिक या जलचर राशि में हो तथा शुभग्रह केन्द्र में हो तो जातक की शीघ्र मृत्यु हो जाती है।[5]

12. जिसकी कुण्डली में गुरु मेष, वृश्चिक या मकर राशि में हो तथा प्रायः मध्याह्न या सांयकाल जन्म हो वह बालक 1 मास के भीतर मर जाता है।[6]

13. जन्म कुण्डली में अष्टम स्थान में सूर्य, मंगल एवं शनि हों, तो एक मास के भीतर बालक मर जाता है।[7]

---

1 जातक पारिजात, अध्याय-4, श्लोक - 22
जातकाभरण, अरिष्टाध्याय

2 वही

3 वही, श्लोक 25-27, 29-31

4 वही

5 वही

6 वही

7 वही

14. जिस नक्षत्र में केतु का उदय हुआ हो उस नक्षत्र में जन्म लेने वाला बालक 22 मास के भीतर मर जाता है।[1]

15. दो राशियों की सन्धि में जन्म हो और वह पापग्रह से दृष्ट या युत हो तो बालक शीघ्र मर जाता है।[2]

16. चन्द्रमा केन्द्र या अष्टम स्थान में मृत्यु भाव में हो तो बालक शीघ्र मर जाता है।[3]

मेषादि राशियों के मृत्यु भाग

राशि	मृत्यु भाग
मेष	26^0
वृष	12^0
मिथुन	13^0
कर्क	25^0
सिंह	24^0
कन्या	11^0
तुला	26^0
वृश्चिक	14^0
धनु	13^0
मकर	25^0
कुंभ	05^0
मीन	12^0

---

1 जातक पारिजात, अध्याय-4, श्लोक 25-27, 29-39

2 फलदीपिका, अध्याय-13, श्लोक-9

3 वही

17. जन्म कुण्डली में पापग्रह लग्न तथा अष्टम में हो तो बालक तुरन्त मर जाता है।[1]

18. पापग्रह लग्न एवं सप्तम में हो तो बालक शीघ्र मर जाता है।[2]

19. लग्न एवं चन्द्रमा दोनों पापग्रहों के मध्य में हो तो बालक शीघ्र मर जाता है।[3]

20. लग्न द्रेष्काण या चन्द्र द्रेष्काण का स्वामी निर्बल होकर त्रिक स्थान में हो, तो वह जिस राशि में हो उस राशि की संख्या तुल्य मास में बालक मर जाता है।[4]

21. एक भी पापग्रह षष्ठ या अष्टम स्थान में हो तथा उस पर अन्य पापग्रह की दृष्टि हो तो जातक एक वर्ष के भीतर मर जाता है।[5]

22. जन्म कुण्डली में मेष, वृश्चिक या मकर राशि में दशम स्थान में सूर्य हो और उसे पापग्रह देखता हो तो बालक शीघ्र मर जाता है।[6]

23. षष्ठ या अष्टम स्थान में स्थित चन्द्रमा पर किसी पापग्रह की दृष्टि हो तो बालक शीघ्र मर जाता है।[7]

24. पापग्रह 2/12 स्थान में 6, 8 स्थान में, 8, 9 स्थान में या 6,12 स्थान में हो तो जातक की छठे या आठवें महीने में मृत्यु हो जाती है।[8]

---

1 फलदीपिका, अध्याय-13, श्लोक 12-13

2 वही

3 वही

4 वही

5 जातकाभरण, अरिष्टाध्याय, श्लोक - 5,9,13,15,16

6 वही

7 वही

8 वही

25. जन्म कुण्डली में षष्ठ या अष्टम स्थान में शुभ ग्रह हों, उन पर वक्री पापग्रहों की दृष्टि हो और शुभ ग्रह न देखते हों तो जातक की। मास में मृत्यु हो जाती है।[1]

26. लग्नेश छठे या आठवें स्थान में हो तथा उस पर पापग्रहों की दृष्टि हो तो चौथे महीने में बालक मर जाता है।[2]

27. लग्नेश पाप ग्रहों साथ सातवें स्थान में स्थित हो तो बालक की शीघ्र मृत्यु हो जाती है।[3]

28. चन्द्रमा 1,4,5,8 या 10वें स्थान में पापग्रहों के साथ हो, उसे शुभ ग्रह न देखते हों तथा कोई शुभ ग्रह केन्द्र में न हो तो जातक शीघ्र मर जाता है।[4]

29. क्षीण चन्द्रमा लग्न में हो पाप ग्रह केन्द्र में या अष्टम में हों तो बालक शीघ्र मर जाता है।[5]

30. कर्क वृष एवं मेष राशि को छोड़कर अन्य राशि में लग्न में क्षीण चन्द्रमा हों और उन पर पापग्रहों की दृष्टि हो।[6]

31. क्षीण चन्द्रमा को राहु देखता हो तथा वह क्रूर ग्रहों के साथ हो तो चन्द्रमा जिस राशि में हो उसमें उतने दिनों में बालक मर जाता है।[7]

---

1 जातकाभरण, अरिष्टाध्याय, श्लोक - 9,13,15-16, 18-19 एवं 21

2 वही

3 वही

4 वही

5 वही

6 वही

7 वही

32. लग्न में मंगल बैठा हो और उसे शुभ ग्रह न देखते हों या वह शनि के साथ छठे अथवा आठवें स्थान में बैठा हो तो वह शिशु को शीघ्र मार देता है - ऐसा आचार्य मणित्थ का मत है।[1]

33. सप्तम स्थान में शनि एवं मंगल दोनों हों तथा उन पर किसी भी शुभ ग्रह की दृष्टि न हो तो बालक शीघ्र मर जाता है।[2]

34. लग्न, द्वितीय, तृतीय या सप्तम स्थान में सूर्य एवं शनि के साथ मंगल हो तो बालक की शीघ्र मृत्यु हो जाती है।[3]

35. लग्न में शनि हो तथा उस पर पापग्रहों की दृष्टि हो तो वह 16 दिन के भीतर शिशु को मार देता है।[4]

36. सिंह, वृश्चिक एवं कुम्भ लग्न में राहु हो तथा उसे पाप ग्रह देखते हों तो बालक जन्म के 7 दिन के भीतर मर जाता है।[5]

37. कर्क या सिंह राशि में चन्द्र या सूर्य के साथ राहु हो और उस पर मंगल तथा शनि की दृष्टि हो तो बालक 15 दिन में मर जाता है।[6]

38. लग्न से 12-2-8-6 स्थान में क्रूरग्रह हों और शुभग्रहों से युक्त न हो, तो 6-8-2-12 मास में मृत्यु होती है।[7]

---

1 दैवज्ञाभरण, षष्ठप्रकाश, श्लोक - 13, 16, 24, 26, 34, 42 एवं 44

2 वही

3 वही

4 वही

5 वही

6 वही

7 ज्योतिष तत्त्व प्रकाश, अध्याय-4, श्लोक-72,74,75

39. लग्न से नवें सूर्य हो, सप्तम में शनि हो, 11वें स्थान में बृहस्पति और शुक्र हो, तो तीन महीने में मृत्यु होती है।[1]

40. जिसके छठे या सातवें चन्द्रमा शुक्र से युक्त होकर स्थित हो तथा दशम स्थान में सूर्य हो, तो वह बालक महीने भर भी नहीं जीता है।[2]

41. यदि 1 - 4 - 7 - 10 भाव में भौम हो और गुरु केन्द्र से भिन्न स्थान में हो तो भी गर्भस्थ शिशु की मृत्यु हो जाती है।[3]

42. यदि जन्म काल में सूर्य लग्न में हो तथा गुरु केन्द्र से अन्य स्थान में हो तो जन्म के साथ ही मरण होता है।[4]

43. अष्टम स्थान में कोई पापग्रह हो और गुरु केन्द्र से भिन्न स्थान में हो तो भी गर्भस्थ शिशु की मृत्यु हो जाती है।[5]

44. यदि लग्न या केन्द्र में चन्द्रमा हो और गुरु केन्द्र से अन्य स्थान में हो और अष्टम में कोई पापग्रह हो तो गर्भस्थ शिशु की मृत्यु हो जाती है।[6]

45. यदि जन्म कालीन लग्नस्थ द्रेष्काण से सप्तम राशि में पापग्रह हो और लग्न में चन्द्रमा हो तो शीघ्र की बालक की मृत्यु हो जाती है।[7]

---

1 ज्योतिष तत्त्व प्रकाश, अध्याय-4, श्लोक-72,74,75

2 वही

3 सारावली, अध्याय-10, श्लोक - 83-86

4 वही

5 वही

6 वही

7 वही

46. यदि लग्न में शनि हो अष्टम स्थान में मंगल हो और गुरु केन्द्र (1-4-7-10) से अन्य भाव हो तो गर्भस्थ शिशु की मृत्यु हो जाती है।[1]

47. यदि चन्द्रमा दशम स्थान में हो और चन्द्रमा से तृतीय नक्षत्र में सूर्य पापग्रहों से युत हो अथवा अकेला ही हो तो बालक एक दिन में मृत्यु हो जाती है।[2]

48. जिस बालक की कुण्डली में मीन राशि का सूर्य एवं चन्द्रमा तृतीय भाव में हो तो जन्म से रोग प्राप्त करके 3 दिन में बालक की मृत्यु हो जाती है।[3]

49. जिस बालक के चन्द्रमा से सप्तम भाव में भौम सूर्य दोनों हो तो सात दिनों में उस बालक की मृत्यु हो जाती है।[4]

50. जिस बालक के जन्मकाल के समय अष्टम भाव में अधिक ग्रह हों तो वह सात दिन अथवा एक मास में मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।[5]

51. यदि लग्न से चतुर्थ भाव में चन्द्रमा हो तथा षष्ठ भाव में सूर्य हो तो अठारह दिन में रोग से बालक की मृत्यु हो जाती है।[6]

52. यदि चन्द्रमा से नवम वा पंचम भाव में सूर्य हो तो बालक की 20 दिन में मृत्यु हो जाती है।[7]

---

1 सारावली, अध्याय-10, श्लोक - 74, 75, 76, 80, 81, 87, 88

2 वही

3 वही

4 वही

5 वही

6 वही

7 वही

ख. अरिष्ट योग

जिन बच्चों का जन्म अरिष्ट योग में होता है, वे बच्चे इन योगों के प्रभाववश 12 वर्ष की आयु के भीतर मर जाते हैं। इन योगों को बालारिष्ट योग भी कहते हैं। फलितशास्त्र के प्रायः सभी ग्रन्थों में बालकों के अरिष्टकारक इन योगों का विस्तार से वर्णन किया गया है। उनमें से कुछ महत्त्वपूर्ण योग निम्नलिखित हैं -

1. जन्म के समय चन्द्रमा छठे या आठवें स्थान में हो तथा उस पर शुभ ग्रह की दृष्टि न हो तो बालक 8 वर्ष के भीतर मर जाता है। यदि उक्त स्थान में स्थित चन्द्रमा पर पाप एवं शुभ दोनों प्रकार के ग्रहों की दृष्टि हो तो बालक 4 वर्ष के भीतर मर जाता है।[1]
2. जन्म लग्न में क्षीण चन्द्रमा हो तथा केन्द्र (1, 4, 7 एवं 10 स्थान) एवं अष्टम स्थान में पापग्रह हों तो शिशु की बाल्यावस्था में मृत्यु हो जाती है।[2]
3. जन्म कुण्डली में दो पापग्रहों के मध्य स्थित चन्द्रमा केन्द्र या अष्टम स्थान में हो तो भी उत्पन्न बालक बचपन में ही मर जात है।[3]
4. राहु से ग्रस्त तथा पापग्रहों के साथ चन्द्रमा लग्न में हो और मंगल अष्टम स्थान में हो तो शिशु अपनी माता के साथ मर जाता है।[4]
5. जन्म लग्न में सूर्य या चन्द्रमा हो तथा पापग्रह त्रिकोण एवम् अष्टम स्थान में हो तो बाल्यावस्था में बालक की मृत्यु हो जाती है।[5]

---

1 बृहज्जातक, अध्याय-6, श्लोक 6-7
2 वही
3 वही, श्लोक 9-10
4 वही
5 वही

6. शनि 12वें, चन्द्रमा लग्न में तथा मंगल 8वें स्थान में हो तो बालक बचपन में मर जाता है।[1]

7. पापग्रहों के साथ चन्द्रमा लग्न, त्रिकोण, अष्टम या व्यय स्थान में हो तथा इन पर किसी शुभग्रह की दृष्टि न हो तो बालक बचपन में मर जाता है।[2]

8. वक्री शनि मेष या वृश्चिक राशि में केन्द्र, षष्ठ या अष्टम स्थान में हो तथा उसे बलवान् मंगल देखता हो तो इस योग में उत्पन्न बालक 2 वर्ष तक जीवित रहता है।[3]

9. गुरु मेष या वृश्चिक राशि में अष्टम स्थान में हो तथा उसे सूर्य, चन्द्रमा, मंगल एवं शनि देखते हों किन्तु शुक्र न देखता हो तो बालक 2 वर्ष में मर जाता है।[4]

10. कर्क राशि में षष्ठ या अष्टम स्थान में बुध हो तथा उसको चन्द्रमा देखता हो तो बालक चौथे वर्ष में मर जाता है।[5]

11. सूर्य, चन्द्र, मंगल एवं गुरु एक हों या चन्द्रमा, मंगल, गुरु एवं शनि एक-साथ हो अथवा सूर्य, चन्द्रमा, मंगल एवं शनि एक साथ हो तो 5 वर्ष में बालक की मृत्यु हो जाती है।[6]

---

1 बृहज्जातक, अध्याय-6, श्लोक 9-11

2 वही

3 जातक पारिजात, अध्याय-4, श्लोक 40-45

4 वही

5 वही

6 वही

12. शनि चन्द्रमा के नवांश में हो, उसे चन्द्रमा की दृष्टि हो तो बालक 6 वर्ष में मर जाता है।[1]

13. यदि जन्मलग्न में निगड, अहि, या पाशधर संज्ञक द्रेष्काण हो और उसमें क्रूर ग्रह हों तथा उसे उसका स्वामी ग्रह न देखता हो तो बालक 7 वर्ष में मर जाता है।[2]

14. लग्न में सूर्य, मंगल एवं शनि हों, सप्तम स्थान में वृष या तुला राशि में क्षीण चन्द्रमा हो तथा उसे गुरू न देखता हो तो बालक 7 या 8 वर्ष में मर जाता है।[3]

15. सूर्य, चन्द्रमा एवं मंगल 5वें स्थान में हो तो ऐसे योग में उत्पन्न बालक 9 वर्ष में मर जाता है।[4]

16. जन्म कुण्डली में किसी भी भाव में मकर के नवांश में शनि हो और उसे बुध देखता हो तो बालक 10 माह में मर जाता है।[5]

17. सूर्य के साथ स्थित बुध को शुभ ग्रह न देखते हों तो बालक राजकुमार जैसे सुख भोगकर 11 वर्ष में मर जाता है।[6]

---

1 जातक पारिजात, अध्याय-4, श्लोक 40-45

2 वही

3 वही, श्लोक 46-47 तथा 49-51

4 वही

5 वही

6 वही

18. चन्द्र लग्न का स्वामी होकर सूर्य शनि के साथ अष्टम स्थान में हो तथा उन्हें शुक्र देखता हो तो बालक 12 वर्ष में मर जाता है।[1]

19. लग्नेश या राशीश दुर्बल होकर दुःस्थान में स्थित हो तो राशि की संख्या तुल्य वर्ष में बालक मर जाता है।[2]

20. यदि चन्द्रमा एवं सूर्य के साथ मंगल हो तो बालक 9 वर्ष में मर जाता है।[3]

21. कर्क या सिंह राशि में लग्न से षष्ठ, अष्टम या द्वादश स्थान में शुक्र हो और उसे सब ग्रह देखते हों तो बालक 6 वर्ष में मर जाता है।[4]

22. जन्मकुण्डली में केन्द्र स्थान में स्थित राहु को पापग्रह देखते हों तो बालक 10वें वर्ष में मर जाता है।[5]

23. जिस बालक का जन्म दिन मृत्यु, दिन रोग, या विष घटी में हो तो वह मर जाता है।[6]

उपरोक्त योग में वर्णित दिन मृत्यु, दिन रोग, और विष घटी के विषय में यहाँ जानना आवश्यक है।

दिनमृत्यु

हस्त एवं धनिष्ठा के प्रथम चरण में या आर्द्रा एवं विशाखा के द्वितीय चरण में अथवा आश्लेषा एवं उत्तराभाद्रपद के तृतीय चरण में या भरणी एवं मूल के चतुर्थ चरण में दिन के समय जन्म हो तो दिन में मृत्यु योग होता है।

---

1 जातक पारिजात, अध्याय-4, श्लोक 46-47 तथा 49-51
2 फलदीपिका, अध्याय-13, श्लोक-13
3 जातकाभरण, अरिष्टाध्याय, श्लोक - 4,6,11,14 एवं 20
4 वही
5 वही
6 फलदीपिका, अध्याय-13, श्लोक - 8

दिन रोग

आश्लेषा एवं उत्तराभाद्रपद के प्रथम चरण में या भरणी एवं मूल के द्वितीय चरण में अथवा उत्तराफाल्गुनी एवं श्रवण के तृतीय चरण में या स्वाति एवं मृगशिरा के चतुर्थ चरण मे दिन के समय जन्म हो तो यह योग 'दिन रोग' कहलाता है।

विष घटी

विष घटी चक्र

नक्षत्र	विषघटी	नक्षत्र	विषघटी	नक्षत्र	विषघटी
अश्विनी	51-54 घटी	मघा	31-34 घटी	मूल	57-60 घटी
भरणी	25-28 घटी	पू0फा0	21-24 घटी	पू0षा0	25-28 घटी
कृत्तिका	31-34 घटी	उ0फा0	19-22 घटी	उ0षा0	21-24 घटी
रोहिणी	41-44 घटी	हस्त	22-25 घटी	श्रवण	11-14 घटी
मृगशीर्ष	15-18 घटी	चित्रा	21-24 घटी	धनिष्ठा	11-14 घटी
आर्द्रा	22-25 घटी	स्वाति	15-18 घटी	शतभिषा	19-22 घटी
पुनर्वसु	31-34 घटी	विशाखा	15-18 घटी	पू0भा0	17-20 घटी
पुष्य	21-24 घटी	अनुराधा	11-14 घटी	उ0भा0	25-28 घटी
आश्लेषा	33-36 घटी	ज्येष्ठा	15-18 घटी	रेवती	31-34 घटी

24. जन्म कुण्डली में छठे या आठवें स्थान में स्थित चन्द्रमा को शुभ एवं पापग्रह देखते हों तो बालक 4 वर्ष में मर जाता है।[1]

---

1 जातकाभरण, अरिष्टाध्याय, श्लोक 20 एवं 26,
षष्ठ प्रकाश, श्लोक - 14, 25, 28, 31, 33, 35, 37, 39

25. सूर्य एवं मंगल के साथ चन्द्रमा मिथुन या कन्या राशि में हो और उसे अन्य ग्रह न देखते हो तो बालक 9वें वर्ष में मर जाता है।[1]

26. यदि चन्द्रमा सप्तम में हो, अष्टमेश लग्न में हो तथा शनि उसे देखता हो तो बालक 9वें वर्ष में मर जाता है।[2]

27. लग्नेश एवं चन्द्रमा अष्टम स्थान में हो तथा उन्हें सब पापग्रह देखते हों तो बालक 3 साल में मर जाता है।[3]

28. मंगल की राशि में गुरु हो तथा गुरु की राशि में मंगल हो तो बालक 12वें वर्ष में मर जाता है।[4]

29. कर्क राशि में षष्ठ या अष्टम स्थान में बुध हो या उसे बुध देखता हो तो बालक 4 वर्ष में मर जाता है।[5]

30. मंगल की राशि में द्वितीय, षष्ठ या अष्टम स्थान में गुरु हो तो बालक छठे वर्ष में मर जाता है।[6]

31. कर्क या सिंह राशि में षष्ठ अष्टम या द्वादश स्थान में शुक्र हो तथा उस पर सब पाप ग्रहों की दृष्टि हो तो 6 वर्ष में बालक मर जाता है।[7]

---

1 जातकाभरण, अरिष्टाध्याय, श्लोक 20 एवं 26,
षष्ठ प्रकाश, श्लोक - 14, 25, 28, 31, 33, 35, 37, 39

2 वही

3 वही

4 वही

5 वही

6 वही

7 वही

32. मंगल की राशि में केन्द्र, षष्ठ या अष्टम स्थान में शनि हो और उसे बलबान् मंगल देखता हो तो बालक मात्र 2 वर्ष जीता है।[1]

33. चतुर्थ स्थान में शनि के साथ सूर्य हो तो बालक 9 वर्ष में मर जाता है।[2]

34. लग्न में राहु हो और उस पर पापग्रह की दृष्टि हो तो 5 वर्ष में बालक मर जाता है।[3]

35. अष्टम स्थान में राहु हो और उस पर पापग्रह की दृष्टि हो तो बालक दो वर्ष में मर जाता है।[4]

36. केन्द्र स्थान में राहु हो और उस पर पापग्रहों की दृष्टि हो तो बालक 10 वर्ष में मर जाता है।[5]

37. सिंह, वृश्चिक एवं कुम्भ लग्न में राहु हो तथा उस पर पापग्रह की दृष्टि हो तो बालक 7 वर्ष में मर जाता है।[6]

38. चतुर्थ स्थान में राहु तथा केन्द्र में चन्द्रमा हो तो बालक 10 वर्ष में मर जाता हे।[7]

---

1 जातकाभरण, अरिष्टाध्याय, श्लोक 20 एवं 26,
षष्ठ प्रकाश, श्लोक - 14, 25, 28, 31, 33, 35, 37, 39

2 वही

3 वही

4 जातकाभरण, षष्ठप्रकाश, श्लोक - 40, 44, 46, 78-79

5 वही

6 वही

7 वही

39. केन्द्र में सूर्य तथा क्षीण चन्द्रमा हो और उसे मंगल तथा शनि देखता हो तो बालक 2 वर्ष में मर जाता है।[1]

40. केन्द्र षष्ठ या अष्टम स्थान में मंगल की राशि में चन्द्रमा हो तथा उस पर शनि एवं एवं राहु की दृष्टि हो तो बालक 2 वर्ष में मर जाता है।[2]

41. त्रिकोण तथा केन्द्रों में पापग्रह हों, 6-8-12 स्थानों में शुभ ग्रह हों, सूर्योदय के समय जन्म हो, तो शीघ्र मरण जानना चाहिए।[3]

42. सूर्य पापग्रह से युक्त हो या पापग्रहों के मध्य में हो या सूर्य से सातवें पापग्रह हो तो बालक की शीघ्र मृत्यु होती है।[4]

43. शुभ ग्रह से रहित अष्टम स्थान में सूर्य हो, तो शीघ्र मृत्यु होती है।[5]

44. षष्ठ या अष्टम चन्द्रमा पापग्रह से दृष्ट हो, तो तत्काल मृत्यु होती है। यदि शुभग्रहों से दृष्ट हो तो 8 वर्ष में मृत्यु होती है, यदि शुभ ग्रह तथा पापग्रह दोनों से दृष्ट हो, तो 4 वर्ष में मृत्यु करता है।[6]

45. क्षीण चन्द्रमा लग्न में हो, पापग्रह केन्द्र या अष्टम में हो, तो अवश्य विपत्ति होती है यह यवनाचार्य का मत है।[7]

---

1 जातकाभरण, षष्ठप्रकाश, श्लोक - 40, 44, 46, 78-79

2 वही

3 ज्योतिष तत्त्व प्रकाश, अध्याय-4, श्लोक 43-50

4 वही

5 वही

6 वही

7 वही

46. जब चन्द्रमा पापग्रह से युक्त हो या पापग्रहों के मध्य में हो या चन्द्रमा से सप्तम में पापग्रह हो तो माता की मृत्यु होती है।[1]

47. जब मंगल अपने घर में हो, चन्द्रमा 6-8 में हो, तो देवता से रक्षित का भी मरण छठे या आठवें वर्ष में होता है।[2]

48. लग्न में मंगल हो, शुभग्रह न देखते हों या मंगल छठे या आठवें स्थान में हो और शनि उसको देखे या सप्तम में शनि, मंगल हो और शुभग्रहों से दृष्ट न हो, तो तत्काल मृत्यु होती है।[3]

49. जन्म के समय 1-6-8 वें स्थान में बुध हो तो चौथे वर्ष में मृत्यु अवश्य होती है।[4]

50. लग्न से छठे या आठवें स्थान में बुध कर्क राशि का हो, चन्द्रमा से दृष्ट हो, तो 4 वर्ष में बालक की मृत्यु होती है।[5]

51. यदि बृहस्पति, सूर्य, चन्द्रमा से युक्त हो और बुध क्रूर ग्रहों से दृष्ट हो, तो 11 वर्ष में बालक की मृत्यु हो जाती है।[6]

---

1 ज्योतिष तत्त्व प्रकाश, अध्याय-4, श्लोक 43-50

2 वही

3 वही

4 वही

5 वही

6 वही

52. यदि बृहस्पति मंगल के घर का होकर 8वें स्थान में हो, सूर्य चन्द्रमा, मंगल और शनि इनकी दृष्टि हो, शुक्र की दृष्टि न हो, तो 3 वर्ष के भीतर बालक की मृत्यु होती है।[1]

53. यदि सूर्य चन्द्रमा के घर में 12-6-8 स्थानों में शुक्र हो, अशुभ ग्रहों की दृष्टि हो तो 6 वर्ष में बालक की मृत्यु होती है।[2]

54. वक्री शनि मंगल के घर में होकर 8-6-1-4-10 स्थानों में बैठा हो, बलवान् मंगल की दृष्टि हो, तो 2 वर्ष में बालक की मृत्यु होती है।[3]

55. पापग्रह से दृष्ट शनि लग्न में हो, तो 16 दिन के भीतर, यदि शुभग्रह से युक्त हो तो एक महीने में, शुक्र से युक्त हो तो 1 वर्ष में बालक की मृत्यु होती है। लग्न से दसवें में शनि हो तो बालक की शीघ्र मृत्यु हो जाती है।[4]

56. यदि आठवें स्थान में राहु और केन्द्र में चन्द्रमा हो, तो निःसन्देह बालक की तत्काल मृत्यु होती है।[5]

57. राहु केन्द्र में हो और पापग्रह की दृष्टि हो, तो दसवें वर्ष में बालक की मृत्यु होती है।[6]

---

1 ज्योतिष तत्त्व प्रकाश, अध्याय-4, श्लोक 43-50

2 वही

3 वही

4 वही

5 वही, श्लोक 58-61

6 वही

58. लग्न पापग्रह से युक्त हो या पापग्रह के मध्य में हो और लग्न से सातवें पापग्रह हो तो शीघ्र ही बालक की मृत्यु हो जाती है।[1]

59. यदि लग्न का स्वामी तथा जन्मराशि का स्वामी 6-8-12 स्थानों में अस्त होकर स्थित हो तो राशि की संख्या के समान वर्षों में मृत्यु होती है।[2]

60. यदि जन्म समय में वक्री शनि भौम राशि (1-8) में हो एवं चन्द्रमा 1-4-7-10-6 एवं 8 में बली भौम से दृष्ट हो तो बालक 2 वर्ष में मृत्यु को प्राप्त होता है।[3]

61. यदि लग्न से 6,8,12 भाव में कर्क राशिस्थ बुध, चन्द्रमा से दृष्ट हो तो चार वर्ष में बालक का मरण हो जाता है।[4]

62. जन्म काल के समय यदि भौम की राशि (1-8) में अष्टम भाव में गुरु हो और सूर्य चन्द्रमा, भौम व शनि से दृष्ट हो एवं शुक्र की दृष्टि से रहित हो तो बालक का तीसरे वर्ष में मरण होता है।[5]

63. यदि जन्म के समय में शुक्र, सिंह या कर्क राशि में स्थित होकर वारहवें, षष्ठ या अष्टम भाव में शुभग्रहों से दृष्ट हो तो बालक का छठे वर्ष में मरण होता है।[6]

---

1 ज्योतिष तत्त्व प्रकाश, अध्याय-4, श्लोक 58-61

2 वही

3 सारावली, अध्याय-10, श्लोक-5

4 वही, श्लोक-10

5 वही, श्लोक-4

6 वही, श्लोक-9,14,27,15,43,13,16

64. यदि लग्न में निगड़, सर्प, पक्षी, पाशधर संज्ञक द्रेष्काण पापग्रह से युत हो और द्रेष्काणेश की दृष्टि न हो तो बालक का निधन सप्तम वर्ष में हो जाता है।[1]

65. यदि जन्मकाल में चन्द्रमा, भौम एवं सूर्य से युत तथा शुभग्रह से अदृष्ट मिथुन या कन्या में हो तो बालक का नवम वर्ष में मरण होता है।[2]

66. यदि जन्मकाल में 1,4,7,10 भाव में पापग्रह से दृष्ट हो तो 10 अथवा 16 वर्ष में बालक का मरण होता है।[3]

67. यदि जन्मकाल में शुक्र, सूर्य शनि से युत हो तथा गुरु से दृष्ट भी हो तो बालक का नवम वर्ष में मरण हो जाता है।[4]

68. यदि भौम की राशि 1-8 या शनि की राशि 10-11 में दशम भाव स्थित सूर्य, बली पापग्रहों से दृष्ट हो तो बालक का शीघ्र मरण हो जाता है।

69. यदि सूर्योदय के समय जन्म हो और पापग्रह 5,9,1,4,7,10 भाव में हो तथा शुभग्रह 6,8,12 भाव में हो तो बालक का शीघ्र मरण होता है।[5]

70. यदि नवांश पति, राशि स्वामी, लग्नस्वामी ये तीनों जिस जातक के अस्त हों तो अल्प ही वर्षों में मरण होता है।[6]

---

1 सारावली, अध्याय-10, श्लोक-9,14,27,15,43,13,16

2 वही

3 वही

4 वही

5 वही

6 वही, श्लोक-17,22,29,30,35,36

71. यदि चन्द्रमा लग्न से षष्ठभाव वा अष्टम भाव में पापग्रह से दृष्ट हो तो शीघ्र ही 1 वर्ष के मध्य में मरण, यदि शुभग्रह से दृष्ट चन्द्रमा हो तो अष्टम वर्ष में निधन होता है। यदि शुभ पाप दोनों से दृष्ट हो तो चतुर्थ वर्ष में बालक का मरण हो जाता है।[1]

72. यदि जन्म राशीश सूर्य, शनि से युत होकर अष्टम भाव में शुक्र से दृष्ट हो तो राशि तुल्य वर्ष में बालक का मरण हो जाता है।[2]

73. यदि 1,6,8,12 भाव में चन्द्रमा पाप ग्रह से युत व शुभ ग्रह से अदृष्ट एवं केन्द्र (1-4-7-10) में शुभग्रह न हो तो बालक की मृत्यु हो जाती है।[3]

74. यदि दो पापग्रह के बीच में चन्द्रमा, लग्न सप्तम, एवम् अष्टम भाव में निर्बल शुभ ग्रह से दृष्ट हो तो बालक की मृत्यु शीघ्र हो जाती है।[4]

75. यदि दो पापग्रह के बीच में चन्द्रमा, सप्तम और अष्टम भाव में निर्बल पापग्रह से दृष्ट हो तो माता के साथ बालक की मृत्यु हो जाती है।[5]

76. यदि जन्म के समय चन्द्रमा का ग्रहण हो और चन्द्रमा पापग्रहों के साथ लग्न में व मंगल अष्टम भाव में हो तो माता के साथ बालक का मरण होता है।[6]

---

1 सारावली, अध्याय-10, श्लोक-17,22,29,30,35,36

2 वही

3 वही

4 वही

5 वही

6 वही, श्लोक-37-41

77. यदि सूर्य ग्रहण काल में जन्म हो एवं पापग्रह से युत सूर्य लग्न में हो और अष्टम भाव में मंगल हो तो माता के सहित बालक का निधन शस्त्र (आपरेशन) से होता है।[1]

78. यदि क्षीण चन्द्रमा लग्न में हो एवं पाप ग्रह, 1-4-7-8-10 भाव में शुभ ग्रह से अदृष्ट हो तो बालक की मृत्यु शीघ्र होती है।[2]

79. यदि जन्म समय में सप्तम भाव में सूर्य हो व लग्न से शनि वा भौम हो तो बालक की मृत्यु शीघ्र हो जाती है।[3]

80. यदि अष्टम भाव में शनि या भौम हो और लग्न में सूर्य हो तो बालक की मृत्यु शीघ्र हो जाती है।[4]

81. यदि लग्न, अष्टम, सप्तम भाव में पापग्रह हों तथा क्षीण चन्द्रमा व्यय (द्वादश) भाव में हो और केन्द्र (1-4-7-10) में शुभ न हो तो बालक की मृत्यु शीघ्र हो जाती है।[5]

82. यदि जन्म के समय लग्न, द्वादश, नवम्, अष्टम भाव में चन्द्रमा, सूर्य, शनि, भौम से युत व गुरु से अदृष्ट हो तो बालक का निधन शीघ्र हो जाता है।[6]

---

1 सारावली, अध्याय-10, श्लोक-37-41

2 वही

3 वही

4 वही

5 वही

6 वही

83. यदि लग्न में चन्द्रमा वा सूर्य हो और बलवान पाप ग्रह पञ्चम, नवम, अष्टम भाव में शुभ ग्रहों की दृष्टि व युति से हीन हो तो शीघ्र मरण होता है।[1]

84. यदि चन्द्रमा से अष्टम राशि में वा नवम में अथवा सप्तम में समस्त पाप ग्रह हों या एक पाप ग्रह हो तो माता के साथ बालक की मृत्यु हो जाती है।[2]

85. यदि जन्म के समय पागग्रह प्रथम, अष्टम, सप्तम, षष्ठ द्वादश, भाव में हो तो निःसन्देह माता के साथ बालक का निधन होता है।[3]

86. यदि जन्म के समय गुरु त्रिकोण में और लग्न स्वामी लग्न में हो तथा गुरु या जन्म लग्न से केन्द्र में भौम हो तो बालक की शीघ्र मृत्यु हो जाती है।[4]

87. यदि जन्म के समय में सूर्य-चन्द्र-भौम-गुरु-एक राशि में हों या भौम-गुरु-शनि-चन्द्र एक राशि में हों तो पाँच वर्ष में बालक का मरण होता है।[5]

88. यदि जन्म के समय सब शुभ ग्रह दृश्य चक्रार्ध में हों और समस्त पाप ग्रह अदृश्य चक्रार्ध में हो तथा राहु लग्न में हो तो 5 वर्ष में बालक की मृत्यु हो जाती है।[6]

---

1 सारावली, अध्याय-10, श्लोक-42,50,55

2 वही

3 वही

4 वही, श्लोक-92,100,106

5 वही

6 वही

89. यदि लग्नेश से अष्टम स्थान में अत्यन्त क्षीण चन्द्रमा हो और समस्त पाप ग्रहों से दृष्ट एवं शुभग्रहों से अदृष्ट हो तो 3 वर्ष में बालक की मृत्यु हो जाती है।[1]

90. यदि क्षीण चन्द्रमा केन्द्र में सूर्य से युत हो तथा भौम व शनि से दृष्ट या युत हो तो 4 वर्ष में बालक की मृत्यु हो जाती है।[2]

91. यदि लग्न में सूर्य-शनि-भौम हो तथा सप्तम भाव में शुक्र की राशि (2-7) में क्षीण चन्द्रमा गुरु से अदृष्ट हो तो सात-वर्ष में बालक की मृत्यु हो जाती है।[3]

92. यदि कुम्भ, सिंह अथवा वृश्चिक, लग्न में राहु पापग्रहों से दृष्ट हो तो निश्चित ही 7 वर्ष में बालक की मृत्यु हो जाती है।[4]

93. यदि पापग्रह लग्नेश होकर चन्द्रमा के नवांश में चन्द्रमा राशि से बारहवें स्थान में हो एवं पापग्रहों से दृष्ट हो तो बालक की मृत्यु 9 वर्ष में हो जाती है।[5]

94. यदि सूर्य से युत बुध पाप ग्रहों से दृष्ट हो तो 11 वर्ष में बालक की मृत्यु हो जाती है।[6]

95. यदि राहु सप्तम भाव में सूर्य एवम् चन्द्रमा से दृष्ट हो एवं शुभग्रह से अदृष्ट हो तो 12 वर्ष में बालक की मृत्यु हो जाती है।[7]

---

1 सारावली, अध्याय-10, श्लोक-100-108

2 वही

3 वही

4 वही

5 वही

6 वही

7 वही

ग. अल्पायु योग

जिन योगों के प्रभाव से बालक की मृत्यु 12 वर्ष के बाद होती है, उन्हें फलित शास्त्र में अल्पायु योग कहते हैं। ये योग दो प्रकार के होते हैं। प्रथम प्रकार के योगों में मृत्यु की वर्ष संख्या का उल्लेख नहीं रहता। इन योगों में मात्र अल्पायु का संकेत मिलता है। ऐसे योगों में उत्पन्न बालकों को जब मारकेश-ग्रह[1] की दशा अन्तर्दशा आती है तब उसकी मृत्यु हो जाती है। अतः इन दोनों में उत्पन्न व्यक्ति की जन्म कुण्डली से अल्पायु योग तथा विंशोत्तरी दशा द्वारा मारकेश ग्रह की दशा-अन्तर्दशा का निर्माण कर इनकी आयु या मृत्यु का निर्णय किया जा सकता है।

अल्पायु के योगों का उल्लेख पराशर जैमिनी प्रभृति महर्षियों के आर्षग्रन्थों में तथा कल्याण वर्मा, वैद्यनाथ, गुणाकर, मन्त्रेश्वर प्रभृति आचार्यों के ग्रन्थों में किया गया है। जिस बालक की कुण्डली में निम्नलिखित योगों में कोई एक या एकाधिक योग हों उसकी अल्पायु होती है -

1. लग्नेश एवं अष्टमेश से, जन्मलग्न एवं होरा लग्न से तथा शनि एवं चन्द्रमा से आयु का विचार किया जाता है। यदि दोनों स्थिर राशियों में हो अथवा इनमें सें कोई एक चर राशि में हो तथा दूसरा द्विस्वभाव राशि में हो तो अल्पायु होती है।[2]

---

1 लघुपाराशरी - आयुर्विचाराध्याय, श्लोक-1-6

2 जैमिनिसूत्र-अध्याय-1, पा0सू0-1-4-6

2. यदि चन्द्रमा लग्न या सप्तम में हो तो चन्द्रमा एवं शनि से ही आयु का विचार करना चाहिए।[1] इस स्थिति में शनि एवं चन्द्रमा दोनों स्थिर राशि में हो या इनमें से एक चरराशि में और दूसरा द्विस्वभाव राशि में हों तो बालक अल्पायु होता है।

3. तुला के नवांश में शनि हो तथा उसे गुरु देखता हो तो बालक 13 वर्ष में मर जाता है।[2]

4. कन्या के नवांश में शनि हो और उसे बुध देखता हो तो 14 वर्ष में बालक की मृत्यु हो जाती है।[3]

5. सिंह राशि के नवांश में शनि हो तथा उसे राहु देखता हो तो बालक की 15वें वर्ष में मृत्यु हो जाती है।[4]

6. कर्क के नवांश में शनि हो और उसे गुरु देखता हो तो 16वें वर्ष में मृत्यु हो जाती है।[5]

7. मिथुन के नवांश में शनि हो तथा उसे लग्नेश देखता हो तो 17 वर्ष में बालक की मृत्यु हो जाती है।[6]

---

1 जैमिनि सूत्र, अध्याय-1, पा0सू0-9

2 जातक-पारिजात, अध्याय-4, श्लोक-53-54

3 वही

4 वही, श्लोक-55-64

5 वही

6 वही

8. लग्नेश एवं अष्टमेश दोनों में पापग्रह हों, परस्पर एक दूसरे की राशि में हों या छठे एवं 12वें स्थान में हो किन्तु गुरु के साथ न हो तो बालक 18वें वर्ष में मर जाता है।[1]

9. गुरु के नवांश में शनि हो, उसे राहु देखता हो और लग्नेश उच्च राशि के नवांश में हो तो बालक 19वें वर्ष में मरता है।[2]

10. अष्टमेश या शनि क्रूरषष्ट्यंश में हो तो बालक की अल्पायु होती है।[3]

11. द्वितीय एंव द्वादश स्थान में पापग्रह हों, उन पर शुभग्रहों की दृष्टि न हो तथा क्रूरषष्ट्यंश में हो तो बालक की अल्पायु होती है।[4]

12. लग्नद्रेष्काण राशि एवं चन्द्रद्रेष्काण राशि ये दोनों स्थिर हो अथवा इनमें से एक चर और दूसरी द्विस्वभाव हो तो बालक की अल्पायु होती है।[5]

13. लग्नेश के नवांश की राशि तथा अष्टमेश के द्वादशांश की राशि ये दोनों स्थिर हों अथवा इनमें से एक चर और दूसरी द्विस्वभाव हो तो बालक की अल्पायु होती है।[6]

---

1 जातक-पारिजात, अध्याय-4, श्लोक-55-64

2 वही, श्लोक-64

3 वही, श्लोक-65-66, 68-70

4 वही

5 फलदीपिका, अध्याय-13, श्लोक-14

6 वही

14. लग्नेश के द्वादशांश की राशि तथा अष्टमेश के द्वादशांश की राशि ये दोनों स्थिर हो या इनमें से एक चर तथा दूसरी द्विस्वभाव हो तो बालक की अल्पायु होती है।[1]

15. यदि लग्नेश एवं समस्त शुभग्रह आपोक्लिम (3,6,9 एवं 12) स्थान में हो तो बालक की अल्पायु होती है।[2]

16. जन्म राशि तथा उससे अष्टम स्थान का स्वामी ये दोनों परस्पर शत्रु हो लग्नेश एवम् अष्टमेश परस्पर शत्रु हो तथा लग्नेश एवं सूर्य आपस में शत्रु हों तो बालक की अल्पायु होती है।[3]

17. यदि केन्द्र एवं त्रिकोण में स्थित शुभग्रहों की लग्नेश पर दृष्टि न हो तथा लग्नेश एवं लग्नेशाधिष्ठित राशि के स्वामी पर भी शुभग्रहों की दृष्टि न हो तो बालक की अल्पायु होती है।[4]

18. यदि निर्बल अष्टमेश अष्टम में हो या वह केन्द्र में हो तथा लग्नेश भी निर्बल हो तो बालक की अल्पायु होती है।[5]

19. यदि अष्टमेश नीचराशि में हो शनि निर्बल हो तथा पापग्रह लग्न में हो तो बालक की अल्पायु होती है।[6]

---

1 फलदीपिका, अध्याय-13, श्लोक-14

2 वही

3 वही, श्लोक-17

4 उत्तरकालामृत, आयुर्दाय खण्ड, श्लोक-7

5 भावचन्द्रिका, श्लोक-132-135

6 वही

20. यदि अष्टम में शुभ ग्रह भी हों अष्टमेश बलवान् हो तथा लग्नेश निर्बल हो तो बालक की अल्पायु होती है।[1]

21. अष्टमेश पापग्रहों के साथ षष्ठ स्थान में हो तथा षष्ठेश एवं लग्नेश एक-साथ हो तो बालक की अल्पायु होती है।[2]

22. लग्नेश के साथ व्ययेय एवं अष्टमेश हो, तृतीयेश अष्टम में हो इन दोनों को पाप-ग्रह देखते हों तो बालक की अल्पायु होती है।[3]

23. अष्टमेश पाप-ग्रहों के साथ लग्न में हो, लग्नेश पर गुरु की दृष्टि न हो, वह षष्ठ या व्यय स्थान में हो तथा चन्द्रमा त्रिक (6,8 एवं 12) स्थान में हो तो बालक की अल्पायु होती है।[4]

24. केन्द्र में पापग्रह हों, उन पर शुभ ग्रहों की दृष्टि न हो तथा लग्नेश बलहीन हो तो बालक की अल्पायु होती है।[5]

25. षष्ठ, अष्टम एवं व्यय स्थान में पापग्रह हों तथा लग्नेश दुर्बल हो तो बालक की अल्पायु होती है।[6]

---

1 भावचन्द्रिका, श्लोक-132-135

2 दैवज्ञाभरण, षोड्श प्रकाश, श्लोक-16-19

3 वही

4 वही, श्लोक - 16-19, 34 एवं 42

5 वही

6 वही

26. लग्नेश, अष्टमेश एवं दशमेश-ये तीनों आपोक्लिम (3,6,9 एवं 12) स्थान में हो तो बालक की अल्पायु होती है।[1]

27. लग्नेश, दशमेश एवं शनि - ये तीनों अष्टम स्थान में हों तो बालक की अल्पायु होती है।[2]

28. लग्नेश एवं अष्टमेश दोनों छठे या 12वें स्थान में हो तो बालक की अल्पायु होती है।[3]

29. लग्न में शनि एवं मंगल, अष्टम में चन्द्रमा एवं षष्ठ स्थान में गुरु हो तो बालक की अल्पायु होती है।[4]

घ. मध्यमायु योग

जिन योगों के प्रभाव-वश जातक की आयु 33 वर्ष से 70 वर्ष तक की होती है उन्हें फलित शास्त्र में मध्यमायु कहते हैं।[5] ये योग भी दो प्रकार के होते है। प्रथम प्रकार के योगों में आयु या मृत्यु के वर्ष का उल्लेख रहता है। तथा दूसरे प्रकार के योगों में किसी वर्ष विशेष का स्पष्टतः उल्लेख नहीं रहता। इस प्रकार के योगों में मारकेश ग्रहों का विविध प्रकार से निर्णय कर उनकी दशा-अन्तरदशा के अनुसार मृत्यु के वर्ष की जानकारी कर आयु का निर्धारण किया जाता है।

---

1 जातक तत्व, अष्टविवेक, सूत्र 20 एवं 22

2 वही

3 वही

4 वही

5 वही

ङ दीर्घायु योग

जिन योगों के प्रभाववश जातक की आयु 71 से 100 वर्ष की होती है, उन्हें दीर्घायु योग कहते हैं। इन योगों में से कुछ में वर्ष का स्पष्ट रूप से उल्लेख रहता है और कुछ में नहीं। जिन योगों में वर्ष का उल्लेख न हो वहाँ मारकेश का निर्णय कर उसकी महादशा एवं अन्तर्दशा के अनुसार मृत्यु का वर्ष निर्धारण कर जातक की आयु का निर्णय किया गया है।

च. अमितायु योग

अमितायु योग में उत्पन्न जातक की आयु 100 वर्ष से अधिक होती है। आचार्य वराहमिहिर एवं भट्टोत्पल आदि का कथन है कि इस योग में आयुर्दाय की गणित करने की कोई आवश्यकता नहीं है।[1] आचार्य वैद्यनाथ के अनुसार इन योगों में उत्पन्न जातक की आयु काफी लम्बी होती है, जिसे उन्होंने युगान्तमायु या ''चिरायु'' कहा है। इस प्रकार के कतिपय योग जातक ग्रंथों में मिलते है।

2. निसर्गादि आयु

योगायु का विचार करते समय सद्योरिष्ट, बालारिष्ट, अल्पायु, मध्यायु, पूर्णायु एवम् अमितायु योगों का विवेचन किया गया है। किन्तु इन योगों में से सद्योरिष्ट एवम् अमितायु योग का प्रत्येक जातक की कुण्डली में मिलना सम्भव नहीं है। अल्पायु, मध्यायु एवं पूर्णायु योगों से व्यक्ति की आयु कितने वर्ष, मास, एवं दिन की होगी? इसकी ठीक-ठीक जानकारी के लिए निसर्गादि आयु का स्पष्टीकरण किया जाता है।

---

1 बृहज्जातक, अध्याय--7, श्लोक-14

वस्तुतः जन्म एवं मृत्यु एक पहेली है। जिसको हल करने के लिए भारतीय मनीषियों ने अनेक पद्धतियों का आश्रय लिया है। भारतीय ज्योतिष शास्त्र के प्रणेताओं ने इस पहेली का हल निकालकर जातक की आयु का ठीक-ठीक निर्धारण करने का प्रयास किया है।

पराशर आदि महर्षि एवं मय, यवन, मणित्थ, शक्रि, जीव-शर्मा, सत्याचार्य एवं वराहमिहिर प्रभृति आचार्यों ने निसर्गादि आयु का स्पष्टीकरण कर उसके द्वारा जातक की आयु का निर्धारण किया है।[1]

निसर्गादि आयु के निम्नलिखित चार भेद होते हैं -

क. निसर्गायु

ख. पिण्डायु

ग. लग्नायु

घ. अंशकायु

क. निसर्गायु

सूर्य आदि सात ग्रहों की निसर्ग आयु क्रमशः - 20,1,2,9,18,20 एवं 50 वर्ष होती है।[2]

---

1 क. जातक पारिजातक, अध्याय-5, श्लोक-1

ख. बृहज्जातक, अध्याय-7, श्लोक-1

2 क. जातक पारिजातक, अध्याय-5, श्लोक-2

ख. सारावली, अध्याय-4, श्लोक-20

निसर्ग-आयुचक्र

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
आयु वर्ष	20	1	2	9	18	20	50

ग्रहों की निसर्ग आयु के उक्त वर्ष उनके उच्चराशि में स्थित होने पर बतलाए गए हैं। यदि ग्रह उच्च राशि से भिन्न राशि में हो तो वक्ष्यमाण विधि से निसर्ग आयु का स्पष्टीकरण किया जाता है।

ख. पिण्डायु

सूर्य आदि ग्रह अपनी-अपनी राशि में हो तो उनकी पिण्डायु इस प्रकार होती है, यथा-सूर्य की 19 वर्ष, चन्द्रमा की 25 वर्ष, मंगल की 15 वर्श, बुध की 12 वर्ष गुरु की 15 वर्ष, शुक्र की 21 वर्ष तथा शनि की 20 वर्ष।[1]

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
आयु वर्ष	19	25	15	12	15	21	20

जो ग्रह अपनी उच्च राशि में हो उसकी पिण्डायु पठितवर्षों के समान होती है। यदि वह नीच राशि में हो तो उसकी आयु आधी रह जाती है तथा इसके भिन्न राशि में

1 क. बृहज्जातक, अध्याय-7, श्लोक-1

ख. सारावली, अध्याय-40, श्लोक-13

होने अनुपात द्वारा उसकी आयु का साधन करना चाहिए - यह मय, यवन, मणित्थ एवं शक्रि प्रभृति प्राचीन आचार्यों का मत है।[1]

निसर्ग एवं पिण्डायु का स्पष्टीकरण

स्पष्टग्रह में से उसके उच्च को घटा कर शेष 6 राशि से अधिक हो तो यथावत् रखना चाहिए। फिर सबकी कला बनाकर उसे निसर्ग या पिण्डायु के वर्ष से गुणा कर उनमें 21,600 का भाग देने से प्राप्त लब्धि वर्ष, मास, दिन एवं घटी उस ग्रह की स्पष्ट निसर्ग या पिण्डायु होती है।[2]

ग्रहों की उच्च राशियाँ[3]

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
उच्च	मेष	वृष	मकर	कन्या	कर्क	मीन	तुला
राशि अंश	10	3	28	15	5	27	20

ग. लग्नायु

जिस प्रकार ग्रहों की निसर्ग आयु या पिण्डायु निकालते हैं, उसी प्रकार लग्न के बलवान् होने पर वक्ष्यमाण रीति से लग्न की आयु निकालनी चाहिए उसे लग्नायु कहते हैं। लग्न अपने स्वामी ग्रह अथवा बुध या गुरु से दृष्ट या युत हो तो वह बलवान् होता है।

---

1 बहृज्जातक, अध्याय-7, श्लोक 1-3

2 जातक पारिजात, अध्याय-5, श्लोक 4-6

3 बृहज्जातक, अध्याय-1, श्लोक-13

लग्नायु साधन की दो रीतियों का जातक ग्रन्थों में वर्णन मिलना है। प्रथम रीति के अनुसार स्पष्ट लग्न की कला बनाकर उसमें 200 का भाग देने से जो वर्ष आदि लब्धि मिले वह लग्नायु होती है। दूसरी रीति के अनुसार लग्न की जितनी राशियाँ भुक्त हो उतने वर्ष का भुक्त अंशों द्वारा अनुपात से मासादि जानकर उन सबका योग लग्नायु होती है।[1] यह आचार्य मणित्थ का मत है।

उक्त दोनों रीतियों में से प्रथम रीति वरामिहिर, कल्याण वर्मा, केशव एवं वैद्यनाथ आदि आचार्यों को स्वीकार होने के कारण बहुसम्मत है। आचार्य कल्याण वर्मा ने इन दोनों रीतियों का विस्तारपूर्वक विचार करने के बाद कहा है कि यदि लग्न का नवमांशपति बलवान् हो तो प्रथम रीति के द्वारा और यदि लग्नेश बलवान् हो तो द्वितीय रीति के द्वारा लग्नायु का साधन करना चाहिए।[2]

घ. अंशकायु

अंशकायु का स्पष्टीकरण सत्याचार्य ने किया है। वराहमिहिर, कल्याण वर्मा, गुणाकर एवं वैद्यनाथ प्रभृति परवर्ती सभी विद्वानों ने भी सत्याचार्य के इस मत को स्वीकार किया है। इनके मतानुसार अंशकायु का स्पष्टीकरण इस प्रकार किया जाता है।

---

1 क. बृहज्जातक, अध्याय-7, श्लोक-2
  ख. जातकपारिजात, अध्याय-5, श्लोक 14-15
  ग. सारावली, अध्याय-40, श्लोक-5

2 क. बृहज्जातक, अध्याय-7, श्लोक-10
  ख. जातकपारिजात, अध्याय-5, श्लोक-18

स्पष्ट ग्रहण के राश्यादि का कलापिण्ड बनाकर उसमें 200 का भाग लेने पर जो लब्धि मिले वह वर्ष तथा शेष को 12 से गुणाकर पुनः 200 से भाग देकर मास आदि का साधन करना चाहिए। यहाँ संख्या या प्रथम लब्धि 12 से अधिक होने पर 12 का भाग दे देना चाहिए।[1]

जन्म काल में लग्नेश, सूर्य एवं चन्द्रमा इन तीनों में लग्नेश यदि सबसे अधिक बली हो और वह शुभग्रह से दृष्ट हो तो अंशायु की रीति से आयु का स्पष्टीकरण करना चाहिए। यदि सूर्य सबसे अधिक बली हो तो पिण्डायु की तथा चन्द्रमा सबसे अधिक बली हो तो निसर्गायु की रीति से आयुर्दाय ज्ञात करना चाहिए।[2]

यदि लग्नेश, सूर्य एवं चन्द्रमा में से दो ग्रह तुल्य बली हों तो उन दोनों की आयु का योगार्ध ले लेना चाहिए। तात्पर्य यह है कि यदि सूर्य एवं चन्द्रमा तुल्य बली हों तो अंशायु एवं पिण्डायु तथा निसर्गायु का योगार्ध लेना चाहिए। यदि कदाचित् लग्नेश, सूर्य एवं चन्द्रमा तीनों ही तुल्य बली हो तो अंशायु, पिण्डायु एवं निसर्गायु के योग का तृतीयांश ग्रहण करना चाहिए।

3. दशायु

दशा के द्वारा साधित आयु को दशायु कहते हैं। योगायु के साधन में सद्योरिष्ट योग, बालारिष्ट योग तथा अमितायु योग अपने प्रभाववश कथित वर्ष में मृत्यु की सूचना देते हैं अर्थात् इन योगों के होने पर इन योगों में कहे गये वर्ष की समाप्ति पर

---

1 जातक पारिजात, अध्याय-5, श्लोक 4-6

2 क. बृहत्पाराशर होरा शास्त्र, अध्याय-43, श्लोक-31

ख. जातक पारिजात, अध्याय-5, श्लोक-28

मृत्यु होती है। योगायु में अल्पायु योग, मध्यमायु योग तथा दीर्घायु योग होने पर मृत्यु काल का निर्णय दशा-अन्तर्दशा की अपेक्षा रखता है। अतः इन योगों के होने पर योग एवं दशा की एकरूपता द्वारा मृत्यु काल का निर्णय करना चाहिए।[1]

2. मृत्युदायक बालरोगों का परिज्ञान

मृत्युदायक बालरोगों का विचार अष्टम स्थान में स्थित ग्रह, अष्टम स्थान को देखने वाले ग्रह, तृतीय भाव में स्थित ग्रह, अष्टम भाव की राशि, अष्टमेश ग्रह तथा मृत्युदायक योगों से किया जाता है। मृत्युदायक बालरोगों का विचार करने के लिए सर्वप्रथम बालक की कुण्डली में अष्टम भाव का गम्भीरतापूर्वक विचार - करना चाहिए। यदि बालक की कुण्डली में अष्टम स्थान में कोई ग्रह न हो तो अष्टम स्थान को देखने वाले ग्रह से मृत्युदायक बालरोग विचार किया जाता है।

यदि कुण्डली में अष्टम स्थान में कोई ग्रह न हो तथा उस पर किसी ग्रह की दृष्टि न हो तो तृतीय भाव में स्थित ग्रह से मृत्युदायक रोग का निर्णय किया जाता है। यदि कदाचित् तृतीय भाव में भी कोई ग्रह न हो तो अष्टम भाव की राशि, या 22वें द्रेष्काण से मृत्युदायक रोग का विचार किया जाता है।

1. अष्टम भाव में स्थित ग्रह के मृत्युदायक बाल रोग

जन्म कुण्डली में अष्टम भाव में सूर्य हो तो दाह, तृष्णा एवं जलन से, चन्द्रमा हो तो जलोदर आदि रोग से, मंगल हो तो शस्त्रादि की चोट से, बुध हो तो ज्वर से, गुरु हो तो अज्ञात रोग से, शुक्र हो तो तृषा एवं प्रमेह से तथा शनि हो तो सूखा एवं

---

1 प्रश्न मार्ग, अध्याय-10, श्लोक-2

कमजोरी से मृत्यु होती है।[1] आचार्य मन्त्रेश्वर का मत है कि अष्टम स्थान मे सूर्य आदि ग्रह हो तो निम्नलिखित रोगों से बालक की मृत्यु होती है[2] -

ग्रह	मृत्युदायक बाल रोग
सूर्य	आग से जलना, उष्मज्वर, पित्तविकार।
चन्द्रमा	विषूचिका (हैजा), जलोदर (प्लूरिसी) एवम् राजयक्ष्मा (टी0बी0)।
मंगल	जल जाना, रक्त पात, चोट एवं अभिचार जन्य रोग।
बुध	पाण्डु (पीलिया), रक्त की कमी तथा भ्रान्ति।
गुरु	कफज रोग।
शुक्र	वीर्य रोग, मूत्रकृच्छ्र एवं गुप्त रोग।
शनि	सन्निपात, लकवा एवं वायु रोग।
राहु	कुष्ठ, विषरोग, सर्प एवं जहरीले जीव का काटना या चर्म रोग।
केतु	आकस्मिक दुर्घटना, कृमिरोग, कीट दंश एवं किसी जानवर से चोट।

2. अष्टम स्थान को देखने वाले ग्रहों के मृत्युदायक बाल रोग

यदि अष्टम स्थान में कोई ग्रह न हो तो जो ग्रह अष्टम स्थान को देखता हो उसकी धातु के विकार से या पूर्वोक्त दाह आदि रोगों से मृत्यु होती है।[3]

---

1 क. बृहज्जातक, अध्याय-25, श्लोक-1
ख. प्रश्नमार्ग, अध्याय-11, श्लोक-1

2 फलदीपिका, अध्याय-14, श्लोक-14-15

3 प्रश्न मार्ग, अध्याय-11, श्लोक-2

हड्डी, रक्त, मज्जा, त्वचा, वसा (मांस), वीर्य एवं स्नायु ये सूर्य आदि ग्रहों की धातु होती है।[1]

ग्रह	धातु	बाल-रोग
सूर्य	अस्थि	अस्थिज्वर, अस्थिस्राव, हड्डी में चोट।
चन्द्रमा	रक्त	रक्त स्राव, रक्ताभाव, रक्तचाप एवं अन्य रक्तविकार।
मंगल	मज्जा	व्रण, स्फोट, विसर्प, विद्रधि एवं मसूरिका।
बुध	त्वचा	दाद, खाज, खुजली, गाँठ, फोड़ा एवं कुष्ठ।
गुरु	वसा	सूखा, स्थौल्य आदि।
शुक्र	वीर्य	वीर्य विकार, प्रमेह, मधुमेह एवं गुप्त रोग।
शनि	स्नायु	सन्निपात, पक्षाघात एवं स्नायु रोग।

3. तृतीय भाव में स्थित ग्रहों के मृत्युदायक बाल रोग

यदि अष्टम स्थान में कोई ग्रह न हो तथा उक्त स्थान में कोई ग्रह न हो तथा उक्त स्थान पर किसी ग्रह की दृष्टि भी न हो तो तृतीय स्थान में स्थित ग्रह के अनुसार बालक की मृत्यु के कारक का विचार करना चाहिए। तृतीय स्थान आयु का प्रतिनिधित्व करता है। अतः इस स्थान में स्थित ग्रह से आयु की समाप्ति या मृत्यु का विचार किया जाता है। इस स्थान में सूर्य आदि ग्रह हों तो निम्नलिखित रोगों के कारणों से बालक की मृत्यु होती है।[2]

---

1 प्रश्न मार्ग, अध्याय-11, श्लोक-3

2 बृहत्पाराशर होरा शास्त्र-अध्याय-44, श्लोक 25-31

ग्रह	मृत्युदायक बाल-रोग
सूर्य	राजकोप, राजदण्ड।
चन्द्रमा	राजयक्ष्मा (टी0बी0)।
मंगल	शस्त्र की चोट, आग से जलना या घाव।
बुध	ज्वर।
गुरु	शोक आदि रोग।
शुक्र	प्रमेह।
शनि एवं राहु	विष, जल, अग्नि, गड्ढे में गिरना, उपर से गिरना या फाँसी।

4. अष्टम स्थान की राशिवश मृत्युदायक बाल रोग

यदि अष्टम एवं तृतीय स्थान किसी भी ग्रह से दृष्ट या युत न हो तो अष्टम स्थान की राशि के अनुसार मृत्युदायक बाल-रोग का निर्णय करना चाहिए। वराहमिहिर आदि आचार्यों का मत है कि अष्टम स्थान की राशि कालपुरुष के जिस अंग का प्रतिनिधित्व करती है बालक के शरीर के उसी अंग में मृत्युदायक रोग पैदा करती है।[1] अष्टम स्थान में मेष आदि राशियाँ होने पर निम्नलिखित रोगों से बालक की मृत्यु होती है -

राशियाँ	मृत्युदायक बाल-रोग
मेष	शिरोरोग, मानसिक रोग।

---

1 क. बृहज्जातक, अध्याय-25, श्लोक-1

क. प्रश्नमार्ग, अध्याय-11, श्लोक-5

वृष	नेत्र, कर्ण, नासिका, मुख एवं कण्ठ के रोग।
मिथुन	हस्तरोग, फेफड़े एवं श्वास नली के रोग।
कर्क	हृदय रोग
सिंह	उदर रोग
कन्या	नाभि एवं गुर्दे के रोग
तुला	वस्ति एवं मूत्राशय के रोग
वृश्चिक	गुप्तरोग एवं वृषण रोग
धनु	गठिया
मकर	जानुरोग
कुम्भ	जंघाक्षति
मीन	श्लीपद एवं पोलियो

5. 22वें द्रेष्काण वश मृत्युदायक बाल रोग

आचार्य ढुण्ढिराज का मत है कि यदि अष्टम आदि स्थान किसी ग्रह से युत या दृष्ट न हो तो लग्न से 22वें द्रेष्काण के द्वारा बाल-मृत्यु के कारण या मृत्युदायक बाल-रोग का विचार करना चाहिए।[1] प्रत्येक राशि में 10-10 अंश के द्रेष्काण होते हैं। यदि वह 22वें द्रेष्काण का मेष आदि राशियों का प्रथम आदि द्रेष्काण हो तो निम्नलिखित कारणों या रोगों से बालक की मृत्यु होती है-[2]

1 जातकाभरण, निर्णयाध्याय, श्लोक-5

2 वही

मेष आदि राशियों के द्रेष्काण	बाल-मृत्यु के कारण/ रोग
मेष का प्रथम द्रेष्काण	प्लीहा, विष, पित्तरोग या सर्पदंश।
मेष का द्वितीय द्रेष्काण	जल, कृमि या जंगली जन्तु से।
मेष का तृतीय द्रेष्काण	कूएँ या तालाब में डूबने से।
वृष का प्रथम द्रेष्काण	गधा, उँट या घोड़े से गिरने अथवा कुत्ते के काटने से।
वृष का द्वितीय द्रेष्काण	पित्तविकार, वायुविकार या अग्निकाण्ड से।
वृष का तृतीय द्रेष्काण	उच्च स्थान, घोड़ा या वाहन से गिरना।
मिथुन का प्रथम द्रेष्काण	पित्तविकार, वायुविकार या अग्नि काण्ड से।
मिथुन का द्वितीय द्रेष्काण	त्रिदोष, विष या सन्निपात से।
मिथुन का तृतीय द्रेष्काण	पर्वत, हाथी या चतुष्पद से गिरकर।
कर्क का प्रथम द्रेष्काण	विषपान, पानात्यय या गोह से।
कर्क का द्वितीय द्रेष्काण	आघात, विष या अतिसार से।
कर्क का तृतीय द्रेष्काण	श्वास, प्रमेह, रक्तविकार, गुल्म या मूर्च्छा से।
सिंह का प्रथम द्रेष्काण	विष, जल या पैर के रोग से।
सिंह का द्वितीय द्रेष्काण	श्वास या जल रोग से।
सिंह का तृतीय द्रेष्काण	गुदारोग, विष, शाप या शस्त्र से।
कन्या का प्रथम द्रेष्काण	शिरोरोग या वातविकार से।
कन्या का द्वितीय द्रेष्काण	सर्प, पर्वत या राजकोप से।
कन्या का तृतीय द्रेष्काण	गधा, उँट, अस्त्र, जल में डूबना।
तुला का प्रथम द्रेष्काण	गिरने, पशु या स्त्री से।
तुला का द्वितीय द्रेष्काण	उदर रोग से।
तुला का तृतीय द्रेष्काण	सर्प या जलजन्तु से।

वृश्चिक का प्रथम द्रेष्काण	विष, शस्त्र या विषाक्त अन्न से।
वृश्चिक का द्वितीय द्रेष्काण	भार, श्रम, कटि या वस्ति के रोग से।
वृश्चिक का तृतीय द्रेष्काण	ईंट या पत्थर की चोट या पैर की हड्डी टूटने से।
धनु का प्रथम द्रेष्काण	गुदा रोग या वात रोग से
धनु का द्वितीय द्रेष्काण	विष, ताप, या शर से।
धनु का तृतीय द्रेष्काण	जल में डूबने, जल-जन्तुओं के खाने या उदर रोग से।
मकर का प्रथम द्रेष्काण	सिंह, बाघ, सूअर या हिंसक जन्तु से।
मकर का द्वितीय द्रेष्काण	पैरों में पीड़ा, विष या सर्प से।
मकर का तृतीय द्रेष्काण	चोर, अग्नि, शस्त्र या ज्वर से।
कुम्भ का प्रथम द्रेष्काण	स्त्री, पुत्र, जल या उदर रोग से।
कुम्भ का द्वितीय द्रेष्काण	मुख रोग, मैथुन रोग या पशुओं से।
कुम्भ का तृतीय द्रेष्काण	गुल्म, संग्रहणी, स्त्री रोग, जंघा या उदर रोग से।
मीन का प्रथम द्रेष्काण	जलोदर या नौका डूबने से।
मीन का द्वितीय द्रेष्काण	घृणित रोगों से।

बालक को रोग होने पर मृत्यु होगी या नही?

रोग होने पर बालक की मृत्यु होगी या नहीं? फलित शास्त्र के ग्रन्थों में इस प्रकार का शास्त्रीय रीति से विचार किया गया है। रोगोत्पन्न होने के समय जो तिथि, नक्षत्र वार एवं ग्रह स्थिति होती है, उसके द्वारा रोगी के जीवन-मृत्यु का विचार किया जाता है। कुछ आचार्यो का मत है कि इस बारे में जब भी प्रश्न किया जाय, उस

समय की प्रश्न कुण्डली बनाकर वक्ष्यमाण योगों के अनुसार रोगी के जीवन-मरण का निश्चय कर लेना चाहिए।

बाल रोग होने पर मृत्यु के योग

1. आश्लेषा, आर्द्रा, ज्येष्ठा, शतभिषा, भरणी, तीनों पूर्वा, विशाखा, धनिष्ठा एवं कृतिका इन 11 नक्षत्रों में सूर्य, मंगल या शनिवार में, चतुर्थी, षष्ठी, नवमी, द्वादशी या चतुर्दशी तिथि में रोग उत्पन्न हो तो रोगी बालक की शीघ्र मृत्यु हो जाती है।[1]

2. ज्येष्ठा, स्वाति, आश्लेषा, आर्द्रा, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वषाढ़ा एवं पूर्वा-भाद्रपद-इन सात नक्षत्रों में से किसी एक नक्षत्र में उत्पन्न रोग मृत्युदायक होता है।[2]

3. छिद्म तिथियों[3] में पापग्रहों (सूर्य, मंगल एवं शनि) के वारों में, कृतिका, धनिष्ठा, भरणी एवं शतभिषा नक्षत्र में उत्पन्न रोग मृत्युदायक होता है।[4]

4. अष्टमी पर्व (अमावस्या एवं पूर्णिमा) या रिक्ता तिथि में, पापग्रह के बार में तथा त्रिजन्मनक्षत्र[5] विपत् प्रत्यरि या वध नक्षत्र में चन्द्रमा होने पर जो रोग शिशु को उत्पन्न होता है, वह मृत्युदायक होता है।[6]

5. सूर्य एवम् आरूढ़राशि के नक्षत्र से 9वें, 12वें या 21वें नक्षत्र में रोग पैदा हो तो वह रोगी शिशु शीघ्र मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।[7]

---

1 मुहूर्तचिन्तामणि, प्रकरण-2, श्लोक-47
2 प्रश्न मार्ग, अध्याय-13, श्लोक-17
3 वही
4 वही
5 वही
6 जन्म, आधान एवम् अनुजजन्म - इन तीन नक्षत्रों को त्रिजन्मनक्षत्र कहते हैं।
7 प्रश्नमार्ग, अध्याय-13, श्लोक-18,20,22

6. सूर्य के पार्श्ववर्ती, आरूढ़ के पार्श्ववर्ती तथा इन दोनों से 9वें 15वें एवं 21वें नक्षत्र - इस प्रकार इन 10 नक्षत्रों में से किसी एक में रोग पैदा हो तो वह रोगी शिशु शीघ्र मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।[1]

7. जन्म नक्षत्र से रोगारम्भ के नक्षत्र तक गणना कर उस संख्या को 3 से गुणा कर 4 से भाग देना चाहिए। यदि 1 शेष बचे तो रोगी शिशु की शीघ्र मृत्यु होती है, 2 शेष बचे तो धीरे-धीरे बढ़ने से मृत्यु होती है, 3 शेष बचे तो कष्ट से जीवन बचता है और यदि शून्य शेष बचे तो चिकित्सा का प्रयास न करने पर भी रोगी-शिशु ठीक हो जाता है।[2]

8. प्रश्न कुण्डली में अष्टम स्थान में चन्द्रमा हो तथा लग्न में सर्ववेष्टित, गृध्र, शूकर, आदि द्रेष्काण हों - उन पर पापग्रहों की दृष्टि हो तो रोगी शिशु शीघ्र मर जाता है।[3]

9. प्रश्न लग्न में पृष्ठोदय राशि हो, केन्द्र स्थानों में पापग्रह हों तथा चन्द्रमा अष्टम में हो तो रोगी शिशु शीघ्र मर जाता है।[4]

10. प्रश्न कुण्डली में द्वितीय, सप्तम एवं द्वादश स्थान में पापग्रह हो तथा लग्न, षष्ठ या अष्टम में चन्द्रमा हो तो रोगी शिशु शीघ्र मर जाता है।[5]

---

1 प्रश्नमार्ग, अध्याय-13, श्लोक-18,20,22

2 वही

3 कृष्णीयम्-कृष्णाचार्य, अध्याय-13, श्लोक-1-2

4 वही

5 भुवनदीपक-विज्ञानभाष्य, सम्पादक-शुकदेवचतुर्वेदी, श्लोक-115-116

11. प्रश्नकाल में चन्द्रमा के दोनों ओर पापग्रह हो तो रोगी शिशु शीघ्र मर जाता है।[1]

12. प्रश्नलग्न में सूर्य तथा सप्तम में चन्द्रमा हो तो रोगी शिशु शीघ्र मर जाता है।[2]

13. प्रश्नकुण्डली में चन्द्रमा एवं लग्नेश अष्टम स्थान में हो तो रोगी शिशु शीघ्र मर जाता है।[3]

14. प्रश्नकाल में लग्नेश एवं अष्टमेश का इत्थशाल हो तो रोगी शिशु शीघ्र मर जाता है।[4]

15. प्रश्न कुण्डली में लग्नेश एवम् अष्टमेश 8वें एवं 11वें स्थान में हो तथा उन पर पापग्रहों की दृष्टि हो तो रोगी-शिशु की शीघ्र मृत्यु हो जाती है।[5]

16. प्रश्न के समय लग्नेश एवं चन्द्रमा केन्द्र में या अष्टम में स्थित पापग्रहों से इत्थशाल करते हो या अस्तंगत होकर पापग्रहों से दृष्ट हों तो रोगी-शिशु शीघ्र मर जाता है।[6]

17. प्रश्न कुण्डली में चन्द्रमा लग्न में, शनि 12वें, सूर्य 8वें तथा मंगल 10वें स्थान में हो तो रोगी-शिशु शीघ्र मर जाता है।[7]

---

1 भुवनदीपक-विज्ञानभाष्य, सम्पादक-शुकदेवचतुर्वेदी, श्लोक-115-116

2 वही

3 वही

4 प्रश्नशिरोमणि-रूद्रमणि, पृष्ठ 71-72, श्लोक-8-13

5 वही

6 वही

7 वही

18. प्रश्न के समय केन्द्र में पापग्रह तथा अष्टम में पृष्टोदय राशि में चन्द्रमा हो तो रोगी-शिशु शीघ्र मर जाता है।[1]

19. प्रश्नकाल में लग्न, सप्तम एवं अष्टम स्थान में पापग्रह हों तथा शुभग्रह निर्बल हो तो रोगी-शिशु शीघ्र मर जाता है।[2]

20. प्रश्नकुण्डली में चन्द्रमा चतुर्थ या अष्टम स्थान में दो पापग्रहों के मध्य में हो तो रोगी-शिशु की मृत्यु शीघ्र हो जाती है।[3]

रोगी बालक की मृत्यु कितने दिन में होगी?

उक्त रीति से रोगी-शिशु की मृत्यु का निश्चय करने के बाद, उसकी मृत्यु कितने दिन में होगी? - इस प्रकार का विचार करना चाहिए। प्रश्न शास्त्र में रोगी की मृत्यु के दिनों का ज्ञान निम्नलिखित योगों[4] के द्वारा किया जाता है -

1. लग्न से अष्टम और दशम में पापग्रह हों तो रोगी शिशु 3 दिन में मर जाता है।

2. गुरु एवं शुक्र तृतीय स्थान में हो तथा दशम में पापग्रह हो तो रोगी शिशु 7 दिन में मर जाता है।

3. लग्न चतुर्थ एवम् अष्टम स्थान में पाप ग्रह हो तो रोगी-शिशु 8 दिन में मर जाता है।

---

1 प्रश्नशिरोमणि-रूद्रमणि, पृष्ठ 71-72, श्लोक-8-13

2 वही

3 वही

4 भुवनदीपक-विज्ञानभाष्य, पृष्ठ-225

4. तृतीय स्थान में सूर्य एवं दशम स्थान में पापग्रह हो तो रोगी शिशु 10 दिन में मर जाता है।
5. चतुर्थ और दशम स्थान में पापग्रह हो तो रोगी शिशु 10 दिन में मर जाता है।
6. लग्न एवं द्वितीय स्थान में पापग्रह हो तो रोगी शिशु 14 दिन में मर जाता है।
7. लग्नेश अपनी उच्चराशि, मित्रराशि या स्वराशि में हो, वह बलवान् हो तथा उस पर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो।[1]
8. केन्द्र एवं त्रिकोण स्थानों में शुभग्रह हों।[2]
9. लग्नेश चर राशि में हो तथा उस पर शुभग्रहों की दृष्टि हो।[3]
10. बलवान् लग्नेश केन्द्र में हो, उस पर केन्द्रगत शुभग्रहों की दृष्टि हो तथा पापग्रह न देखते हों।[4]

रोगारम्भ काल से असाध्य बाल रोग

यदि रोगारम्भ काल में निम्नलिखित ग्रहयोगों में से कोई एक हो तो रोगी बालक की मृत्यु हो जाती है अथवा रोग दीर्घकाल तक चलता है ओर वह असाध्य होता है -

1. जन्म कुण्डली में अष्टमेश, गुलिक, शनि, 22वाँ द्रेष्काण या उसके स्वामी जिस राशि में हों उस राशि में गोचरीय चारवश शनि गया हुआ हो।[5]

---

1 दैवज्ञाभरण, प्रकाश-9, श्लोक-51-52
2 बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्, अध्याय-11, श्लोक-48
3 वही
4 जातकपारिजात, अध्याय-1, श्लोक-48
5 फलदीपिका, अध्याय-17, श्लोक-2-5 एवं 19

2. जन्म लग्न के द्रेष्काण का स्वामी, अष्टमेश या 22वें द्रेष्काण का स्वामी जिस राशि में हो उस राशि में गोचरीय क्रम से गुरु चल रहा हो।[1]

3. जन्म कुण्डली में सूर्य के द्वादशांश की राशि, अष्टमेश के नवांश की राशि या लग्नेश के नवांश की राशि में रोगारम्भ के समय गुरु एवं सूर्य हो।[2]

4. जन्मकाल में जो अष्टमेश या सूर्य की राशि हो, रोगारम्भ के समय उस राशि में चन्द्रमा हो।[3]

5. रोगारम्भ के समय चन्द्रमा उस राशि जिसमें लग्न से 22वाँ द्रेष्काण हो।[4]

6. रोगारम्भ के समय चन्द्रमा प्रश्न लग्न से अष्टम स्थान में हो।[5]

7. रोगारम्भ के समय चन्द्रमा प्रश्न लग्न से पृष्ठोदय राशि में हो तथा पापग्रह केन्द्र या अष्टम में हो।[6]

8. रोगी की राशि से त्रिकोण में गुलिक हो।[7]

9. रोगी की जन्मराशि या जन्मलग्न से अष्टम में गुलिक हो।[8]

10. रोगी के नक्षत्रेश की राशि में गुलिक हो।[9]

---

1 फलदीपिका, अध्याय-17, श्लोक-2-5 एवं 19

2 वही

3 वही

4 वही

5 प्रश्न मार्ग, अध्याय-9, श्लोक-25

6 वही

7 वही

8 वही, श्लोक-13

9 वही

11. रोगी का नक्षत्रेश अष्टम स्थान में हो।[1]

12. रोगी जन्म नक्षत्रेश या गुलिक नक्षत्रेश उसकी राशि से अष्टम में हो।[2]

उक्त योगों के अलावा रोगारम्भ के समय यदि निम्नलिखित में से कोई एक दोष हो तो उस समय होने वाला रोग असाध्य होता है, तथा चिकित्सा एवम् अन्य उपाय करने पर वह ठीक नहीं होता। ये दोष इस प्रकार है -

1. रोगारम्भकालीन लग्न एवं चन्द्रमा का निर्बल होना।
2. तात्कालिक लग्न एवं चन्द्रमा पर पापग्रहों की दृष्टि।
3. तात्कालिक लग्न एवं चन्द्रमा की पापग्रहों से युति।
4. जन्मलग्नेश एवं राशीश का अस्त होना या पापाक्रान्त होना।
5. जन्म लग्नेश एवं राशीश का निर्बल होना या त्रिक स्थान में होना।
6. रोगारम्भ के समय अपशकुन एवम् अशुभ निमित्तों का होना।
7. तात्कालिक लग्न एवं चन्द्रमा का मृत्युसंज्ञक अंशों में होना।
8. तात्कालिक चन्द्रमा का पापग्रहों के साथ केन्द्र या अष्टम स्थान में मृत्युसंज्ञक अंशों में होना।
9. तात्कालिक लग्नेश से दृष्ट चन्द्रमा का षष्ठ या अष्टम स्थान में होना।
10. तात्कालिक लग्न में चरराशि हो तथा उस पर वक्री एवं पापग्रह की दृष्टि हो।
11. शुभग्रह षष्ठ एवं अष्टम में तथा पापग्रह लग्न एवं सप्तम में हों।
12. केन्द्र, त्रिकोण तथा अष्टम स्थान में पापग्रह हो।

---

1 प्रश्न मार्ग, अध्याय-9, श्लोक-25

2 वही, श्लोक-13

मृत्युदायक बाल रोगों के योग

मृत्यु के कारणों का भलीभाँति विचार करने के लिए ज्योतिष शास्त्र के आचार्यों ने मृत्युपरक बाल रोगों का विस्तारपूर्वक विवेचन किया है। प्रायः सभी जातक - ग्रन्थों में इन योगों का उल्लेख मिलता है। इन योगों में से मृत्युदायक रोगों से कुछ प्रमुख योग इस प्रकार हैं -

1. जन्म कुण्डली में शनि-कर्क में तथा चन्द्रमा मकर में हो तो जलोदर से मृत्यु होती है।[1]
2. दो पापग्रहों के मध्य में स्थित चन्द्रमा कन्या राशि में हो तो रक्तविकार से मृत्यु होती है।[2]
3. द्वितीय स्थान में शनि, चतुर्थ में चन्द्रमा एवं दशम में मंगल हो तो शरीर में कीड़े पड़ने से मृत्यु होती है।[3]
4. क्षीण चन्द्रमा पर बलवान् मंगल की दृष्टि हो तथा अष्टम भाव में शनि हो तो गुदा रोग, कृमिरोग या से मृत्यु होती है।[4]
5. अष्टम भाव में स्थित क्षीण चन्द्रमा को शनि देखता हो तो गुदा रोग, नेत्र रोग या शस्त्र के घाव से मृत्यु होती है।[5]

---

1 क. बृहज्जातक, अध्याय-25, श्लोक 3,7 एवं 9
ख. सारावली, अध्याय-47, श्लोक 4 एवं 47

2 वही

3 जातकपारिजात, अध्याय-5, श्लोक

4 वही

5 वही

6. लग्नेश, चतुर्थेश एवं गुरु एक-साथ हो तो अजीर्ण से मृत्यु होती है।[1]

7. सप्तमेश, चतुर्थेश एवं द्वितीयेश एक-साथ हो तो अजीर्ण से मृत्यु होती है।[2]

8. क्षीण चन्द्रमा अष्टम में हो तो अपस्मार (मिरगी) से मृत्यु होती है।[3]

9. अष्टम स्थान में निर्बल सूर्य या मंगल हो तथा द्वितीय स्थान में पापग्रह हो तो पित्तरोग से मृत्यु होती है।[4]

10. अष्टम स्थान में जलचर राशि में चन्द्रमा या गुरु हो तो क्षयरोग से मृत्यु होती है।[5]

11. अष्टम स्थान में शुक्र हो और उसे पापग्रह देखते हों तो वातरोग, क्षय या प्रमेह से मृत्यु होती है।[6]

12. सूर्य के स्थान में बुध हो और उसे पापग्रह देखते हों तो त्रिदोष या ज्वर से मृत्यु से मृत्यु होती है।[7]

13. अष्टम स्थान में राहु हो और उसे पापग्रह देखते हों तो फोड़ा-फुंसी गर्मी या सर्पदंश से मृत्यु होती है।[8]

---

1 जातकपारिजात, अध्याय-5, श्लोक

2 वही

3 वही, श्लोक 90-92, 114 एवं 15

4 वही

5 वही

6 वही

7 वही

8 वही

14. अष्टम स्थान में राहु हो तो चेचक या पित्तरोग से मृत्यु होती है।[1]

15. लग्नेश यदि मेष के नवांश में हो तो ताप ज्वर से, वृष के नवांश में हो तो श्वास एवं शूल से, मिथुन के नवांश में हो तो शिर पीड़ा से, कर्क के नवांश में हो तो वात एवम् उन्माद से, सिंह के नवांश में हो तो स्फोट से, कन्या के नवांश में हो तो मन्दाग्नि या गुप्त-रोग से, तुला के नवांश में हो तो ज्वर से, वृश्चिक के नवांश में हो तो घाव से, धनु के नवांश में हो तो वात रोग से, मकर के नवांश में हो तो शूल रोग से, कुम्भ के नवांश में हो तो हिंसक जीव के काटने से तथा मीन के नवांश में हो तो ज्वर या अतिसार से मृत्यु होती है।[2]

16. क्षीण चन्द्रमा, मंगल, शनि एवं सूर्य क्रमशः अष्टम, दशम, लग्न एवं चतुर्थ स्थान में हो तो अनेक रोगों से मृत्यु होती है।[3]

17. अष्टमेश तृतीयेश के साथ लग्न में हो तो स्फोट से मृत्यु होती है।[4]

18. अष्टमेश मंगल के साथ लग्न में हो तो स्फोट रोग से मृत्यु होती है।[5]

19. चन्द्रमा अष्टमेश हो तथा राहु के साथ शनैश्चर हो तो अपस्मार (मिरगी) से मृत्यु होती है।[6]

---

1 जातक पारिजात, अध्याय-5, श्लोक 90-92, 114 एवं 15

2 वही, श्लोक 90-92, 114 एवं 15

3 जातकाभरण-निर्याणाध्याय, श्लोक-27

4 दैवज्ञाभरण,-प्रकरण-16, श्लोक-56

5 वही

6 वही, श्लोक - 61, 66

20. लग्नेश, चतुर्थेश एवं द्वितीयेश एक साथ हो तो अजीर्ण से मृत्यु होती है।[1]

21. षष्ठ भाव में स्थित मंगल पर सूर्य की दृष्टि हो तो कफ या अतिसार से मृत्यु होती है।[2]

22. अष्टम स्थान में सूर्य एवं शनि हो तो विभूति रोग से मृत्यु होती है।[3]

23. चतुर्थ भाव में शनि मंगल तथा दशम में शनि हो तो शूल रोग से मृत्यु होती है।[4]

दुर्घटना से बालक की मृत्यु के योग

जिस बालक की कुण्डली में निम्नलिखित योगों में से कोई एक योग हो वह किसी दुर्घटना का शिकार होकर मरता है -

1. लग्न एवं चतुर्थ स्थानों में से एक में सूर्य तथा दूसरे में मंगल हो तो पत्थर की चोट से मृत्यु होती है।[5]

2. शनि, चन्द्रमा एवं मंगल क्रमशः चतुर्थ, सप्तम एवं दशम में हों तो कुएँ में गिरने से मृत्यु होती है।[6]

3. लग्न में द्विस्वभाव राशि में सूर्य एवं चन्द्रमा हो तो जल में डूबने से मृत्यु होती है।[7]

---

1 दैवज्ञाभरण,-प्रकरण-16, श्लोक - 61, 66
2 जातक तत्व, अष्टमविवेक, सूत्र - 53, 57, 75-77
3 वही
4 वही
5 बृहज्जातक, अध्याय-25, श्लोक - 3,6, 8 एवं 10
6 वही
7 वही

4. मकर या कुम्भ राशि में स्थित चन्द्रमा दो पापग्रहों के बीच में हो तो फाँसी से या जलने से मृत्यु होती है।[1]

5. अष्टम, दशम, लग्न एवं चतुर्थ भाव में क्रमशः क्षीणचन्द्र, मंगल, शनि एवं सूर्य हो तो लाठी की चोट से मृत्यु होती है।[2]

6. दशम, नवम, लग्न एवं पंचम में क्रमशः क्षीण चन्द्रमा, मंगल, शनि एवं सूर्य हो तो अग्नि या लकड़ी के प्रहार से मृत्यु होती है।[3]

7. दशम में सूर्य तथा चतुर्थ में मंगल हो तो वाहन से गिरने से मृत्यु होती है।[4]

8. सप्तम स्थान में मंगल तथा लग्न में सूर्य, चन्द्रमा एवं शनि हो तो मशीन से कुचलकर या कटकर मृत्यु होती है।[5]

9. लग्न, पंचम, अष्टम एवं नवम में सूर्य, मंगल, शनि एवं क्षीण चन्द्रमा हो तो पर्वत के शिखर पर से गिरने, दीवाल गिरने या वज्रपात होने से मृत्यु होती है।[6]

10. दशम स्थान में सूर्य, चतुर्थ में मंगल तथा लग्न में बुध हो तो गाय बैल के सींग से या शूली से मृत्यु होती है।[7]

---

1 बृहज्जातक, अध्याय-25, श्लोक - 3,6, 8 एवं 10

2 वही

3 वही

4 वही

5 वही

6 वही

7 जातक पारिजात, अध्याय-5, श्लोक-99-100, 104 एवं 108

11. लग्न में सूर्य तथा सप्तम में चन्द्रमा हो और उन्हें पापग्रह देखते हों तो जल में डुबने से मृत्यु होती है।[1]

12. द्वितीय चतुर्थ एवं दशम भाव में क्रमशः शनि, चन्द्रमा एवं मंगल हो तो चोट एवं घाव से मृत्यु होती है।[2]

13. दशम एवं चतुर्थ में पापग्रह, षष्ठ स्थान में क्षीण चन्द्रमा हो तो यात्रा में शत्रु की घात से मृत्यु होती है।[3]

14. लग्न में शनि एवं मंगल तथा अष्टम में क्षीण चन्द्रमा हो तो शस्त्र की चोट से मृत्यु होती है।[4]

15. चतुर्थेश एवं केतु छठे भाव में हो तो शस्त्र की चोट से मृत्यु होती है।[5]

16. अष्टम स्थान में राहु के साथ शनि एवं मंगल हो तो शस्त्र से मृत्यु होती है।[6]

17. शुक्र की राशि में चन्द्रमा एवं शनि हो तो शस्त्र से मृत्यु होती है।[7]

18. षष्ठ या अष्टम भाव में सूर्य एवं चन्द्रमा साथ-साथ हो तो शेर से मृत्यु होती है।[8]

---

1 जातक पारिजात, अध्याय-5, श्लोक-99-100, 104 एवं 108

2 वही

3 वही

4 जातक तत्व, अष्टम विवेक, सूत्र - 37

5 वही

6 वही

7 वही

8 वही, सप्तम विवेक, सूत्र-31-36

19. चतुर्थ भाव में मंगल तथा दशम में शनि हो तो सिंह से मृत्यु होती है।[1]

20. दशम स्थान में राहु एवं शुक्र हों तो सर्पदंश से मृत्यु होती है।[2]

21. कारकांश लग्न में स्थित सूर्य पर पापग्रहों की दृष्टि हो तो सर्पदंश से मृत्यु होती है।[3]

22. चतुर्थ में मंगल, अष्टम में शनि तथा दशम में रवि हो तो सर्पदंश से मृत्यु होती है।[4]

23. सूर्य शनि एवं राहु सप्तम स्थान में हो तो सर्पदंश से मृत्यु होती है।[5]

24. सप्तम में रवि तथा दशम स्थान में गुरु एवं मंगल हो तो कुत्ते के काटने से मृत्यु होती है।[6]

25. शनि अष्टम भाव में हो तो गाड़ी या वाहन के टकराने या दुर्घटनाग्रस्त हो जाने से मृत्यु होती है।[7]

26. बुध एवं शनि दोनों अष्टम में हो तो फाँसी से मृत्यु होती है।[8]

27. मंगल एवं शनि दोनों अष्टम स्थान में हों तो फाँसी से मृत्यु होती है।[9]

---

1 जातक तत्व, अष्टम विवेक, सूत्र - 31-36, 42, 54-55, 58

2 वही

3 वही

4 वही

5 वही

6 वही

7 वही

8 वही

9 वही

28. धनेश एवं त्रिकेश दोनों राहु या केतु के साथ त्रिक स्थान में हो तो फाँसी से मृत्यु होती है।[1]

29. मकर या कुम्भ राशि में लग्नेश के साथ सूर्य हो तो बिजली गिरने से मृत्यु होती है।[2]

30. शनि के साथ चतुर्थेश षष्ठ स्थान में हो तो वाहन से मृत्यु होती है।[3]

31. मंगल चतुर्थ में तथा सूर्य दशम स्थान में हो तो वाहन से मृत्यु होती है।[4]

32. लग्नेश, चतुर्थेश एवं अष्टमेश-एक-साथ हो तो वाहन से मृत्यु होती है।[5]

33. राहु एवं चतुर्थेश षष्ठ स्थान में हो तो चोर या डाकु से मृत्यु होती है।[6]

34. लग्नेश एवं अष्टमेश दोनों राहु या केतु के साथ षष्ठ में हो तो चोर या डाकु से मृत्यु होती है।[7]

35. अष्टम स्थान में स्थित शुभ ग्रह पर पापग्रह या उसके शत्रु की दृष्टि हो तो युद्ध या फौजदारी में मृत्यु होती है।[8]

36. निद्रा या शयनावस्था में पापग्रह अष्टम भाव में हो तो शत्रु से मृत्यु होती है।[9]

---

1 जातक तत्व, अष्टम विवेक, सूत्र-59-63 एवं 65

2 वही

3 जातक तत्व, सूत्र - 59-63 एवं 65, 66, 89-91, 93-94, 31-36, 42, 45-55,58

4 वही

5 वही

6 वही

7 वही

8 वही

9 वही

37. लग्न पर सूर्य एवं मंगल की दृष्टि हो तथा गुरु या शुक्र की दृष्टि न हो तो सांड से मृत्यु होती है।[1]

38. लग्न में स्थित सूर्य एवं शनि पर राहु की दृष्टि हो तो वृक्ष के गिरने से मृत्यु होती है।[2]

39. नवम स्थान में स्थित पापग्रह पर शुभग्रहों की दृष्टि हो तो बाण से मृत्यु होती है।[3]

40. तृतीयेश लग्नेश के साथ अष्टम स्थान में हो तो अग्निकाण्ड में मृत्यु होती है।[4]

41. शनि की राशि में लग्नेश हो तथा वह मंगल एवं केतु से युत-दृष्ट हो तो आग से जलने से मृत्यु होती है।[5]

42. अष्टमेश के साथ शनि हो उस पर पापग्रह की दृष्टि हो तथा चन्द्रमा निर्बल हो तो जल में डूबने से मृत्यु होती है।[6]

43. लग्न के दोनों ओर चन्द्रमा एवं शनि हो तो जल में डूबने से मृत्यु होती है।[7]

---

1 जातक तत्व, सूत्र - 59-63 एवं 65, 66, 89-91, 93-94, 31-36, 42, 45-55,58

2 वही

3 वही

4 दैवज्ञाभरण, प्रकरण-16, श्लोक-57-58, 60 एवं 67

5 वही

6 वही

7 वही

3. बालारिष्ट भंग परिज्ञान

बालारिष्ट में मुख्य रूप से चन्द्रमा का पीड़ित होना माना जाता है। यह चन्द्रमा विभिन्न ग्रहों के साथ विभिन्न स्थितियों में बचपन में अकाल मृत्यु के सूचक बालारिष्ट योग बनाता है। मृत्यु किसी न किसी रोग या आकस्मिक दुर्घटना के बहाने आती है और प्राणों का उत्सर्ग साथ ले जाती है। जातक ग्रन्थों में ऐसे योगों का भी वर्णन मिलता है जो अरिष्ट कारक योगों का नाश कर देते हैं। बच्चों का जीवन सुरक्षित रहता है - अर्थात् रोग चिकित्सा द्वारा ठीक हो जाते है। अरिष्ट भंग हो जाने पर बालक मध्यमायु, दीर्घायु अथवा अमितायु प्राप्त कर सकता है। यदि हमें अरिष्ट भंग योग की पूर्व सूचना मिल जाए तो अरिष्ट एवं रोग जन्य कष्टानुभूति से मानवीय सभ्यता को राहत मिल सकती है, साथ ही आयुष्य की दीर्घता भी बढ़ सकती है।

बालारिष्ट भंग योग

1. यदि जन्म समय में चन्द्रमा पूर्णबिम्ब अर्थात् सोलह कला परिपूर्ण हो और समस्त ग्रहों से दृष्ट हो तो अरिष्ट का नाश करता है।[1]
2. यदि पूर्ण बिम्ब से युत चन्द्रमा, मित्र के नवमांश में स्थित हो व शुक्र से दृष्ट हो तो बालारिष्ट को दूर करता है।[2]
3. यदि चन्द्रमा जन्म के समय में अपने परमोच्च राशि अंश में स्थित हो और शुक्र से दृष्ट हो तो बालारिष्ट का नाश करता है।[3]

---

1 सारावली, अध्याय-11, श्लोक-3

2 वही, श्लोक - 4-12

3 वही

4. यदि क्षीण चन्द्रमा शुभ ग्रहों के वर्ग में, शुभ ग्रह से दृष्ट हो तो बालारिष्ट का नाश करता है।[1]

5. यदि चन्द्रमा से 7,8,6 भावों में पापग्रह से रहित शुभ ग्रह हों तो बालारिष्ट का नाश करते है।[2]

6. यदि चन्द्रमा शुभफल देने वाले शुभग्रह से युत हो और शुभग्रह के द्रेष्काण में हो तो बालारिष्ट का नाश करता है।[3]

7. यदि जन्माङ्ग में चन्द्रमा पूर्ण बिम्ब से युत होकर शुभ ग्रह के द्वादशांश में हो तो बालारिष्ट का विनाशक होता है।[4]

8. यदि चन्द्रमा शुभ ग्रह की राशि में लग्नेश से दृष्ट हो और अन्य ग्रहों से अदृष्ट हो तो अरिष्ट का नाशक होता है।[5]

9. यदि चन्द्रमा पापग्रह की राशि में या पापग्रह के वर्ग में राशि स्वामी से दृष्ट हो तो बालक की रक्षा करता है।[6]

10. यदि राशि स्वामी बली हो और शुभ मित्र ग्रह से दृष्ट हो तो बालारिष्ट का नाश करता है।[7]

---

1 सारावली, अध्याय-11, श्लोक-3

2 वही

3 वही, श्लोक-4-12

4 वही

5 वही

6 वही

7 वही

11. यदि जन्म का अधिपति अर्थात् राशि का स्वामी लग्न में समस्त ग्रहों से दृष्ट हो तो अरिष्ट का नाश करता है।[1]

12. यदि पूर्ण बिम्ब चन्द्रमा अपनी उच्चराशि में अथवा अपनी राशि (कर्क) में अथवा मित्र राशि के षड्वर्ग में या शुभग्रह के वर्ग में या अपने वर्ग में शुभग्रह से दृष्ट हो और स्वशत्रुग्रह एवं पापग्रह से अदृष्ट तथा अयुत हो तो बालक के अरिष्ट का विनाश करता है।[2]

13. यदि चन्द्रमा से बारहवें भाग में बुध या शुक्र हों और ग्यारहवें भाव में पापग्रह हों एवं दशम भाव में गुरु हो तो बालक के अरिष्ट का विनाश करता है।[3]

14. यदि लग्न स्वामी से 6, 3, 10, 11, 4 में चन्द्रमा शुभग्रह से दृष्ट हो तो बालक के सब अरिष्टों का विनाश करता है।[4]

15. यदि एक ही राशि स्वामी बलवान् शुभग्रह से दृष्ट हो तो चन्द्रकृत अरिष्ट का नाश करता है।[5]

16. यदि शुक्ल पक्ष में रात्रिजन्म हो और कृष्ण पक्ष में दिन में जन्म हो और चन्द्रमा 6, 8 भाव में स्थित हो तथा शुभाशुभ ग्रहों से दृष्ट हो तो सभी अरिष्टों का नाश करता है।[6]

---

1 सारावली, अध्याय-11, श्लोक 13-18

2 वही

3 वही

4 वही

5 वही

6 वही

17. यदि जन्माङ्ग में देदीप्यमान किरणों से युत बली गुरु अकेला भी लग्न में स्थित हो तो समस्त अरिष्टों का विनाश करता है।[1]

18. यदि जन्म कुण्डली में समस्त शुभग्रह पूर्ण बलवान् हों तथा सब पापग्रह निर्बल हों और शुभग्रह की राशि में लग्न, शुभग्रह से दृष्ट हो तो बालक के समस्त अरिष्टों का विनाश करता है।[2]

19. यदि जन्म काल में सब पापग्रह शुभग्रह के षड्वर्ग में, शुभग्रह के नवमांशों के वर्गों में स्थित शुभग्रहों से दृष्ट हों तो समस्त अरिष्टों का विनाश करता है।[3]

20. यदि जन्म के समय में लग्न से 3, 6, 11 भाव में राहु शुभग्रह दृष्ट हो तो बालक के सब अरिष्टों को शीघ्र नष्ट करता है।[4]

21. यदि जन्मकाल के समय समस्त ग्रह शीर्षोदय (सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, कुम्भ, मिथुन) राशि में मार्गी हों तो जातक के अरिष्ट का नाश होता है।[5]

22. यदि जन्म-कुण्डली में कोई भी शुभग्रह युद्ध में विजयी हो एवं शुभग्रह से दृष्ट शुभ-वर्ग में हो तो अवश्य ही समस्त अरिष्टों का विनाशक होता है।[6]

23. यदि अरिष्टकारक ग्रह किसी ग्रह से युत एवं पापग्रह से दृष्ट हो तो बालक के समस्त अरिष्टों का विनाश करता है।[7]

---

1 लघुजातक, अध्याय-8, श्लोक-1
2 वही, अध्याय-8, श्लोक-2
3 लघुजातक, अध्याय-8, श्लोक-12,13,14,15
4 वही
5 वही
6 वही
7 वही

24. यदि जन्मकाल में सुन्दर मन्द वायु तथा मेघ हों और ग्रहसमुदाय बली व निर्मल बिम्ब हो तो क्षणभर में अरिष्ट का शमन होता है।[1]

25. जिस जातक का जन्म अगस्त्य मुनि या मरीच्यादि सात ऋषिगण के उदय समय में होता है उस बालक के समस्त अरिष्टों का विनाश होता है।[2]

26. यदि जन्मकाल में मेष वृष और कर्क लग्न में राहु हो तो समस्त अरिष्टों से बालक की रक्षा करता है।[3]

27. यदि अरिष्टकारक ग्रह के बिना सब ग्रह अपने-अपने द्रेष्काण में हो तो बालक के समस्त अरिष्टों का विनाश करता है।[4]

28. यदि जन्म समय में अधिक ग्रह शुभ फल देने वाले हों तो बालक के अरिष्टों का विनाश करते हैं।[5]

29. यदि जन्मकुण्डली में गुरु-शुक्र केन्द्र में हो तो सौ वर्ष का जीवन होता है, तथा ग्रह जन्य व चन्द्रजन्य अनिष्ट शीघ्र नष्ट होता है।[6]

30. यदि चन्द्रमा की दृष्टि सूर्य पर हो, बुध की दृष्टि चन्द्रमा पर हो तो बालक के अरिष्टों का विनाश करता है।[7]

---

1 लघुजातक, अध्याय-8, श्लोक-12,13,14,15

2 वही, अध्याय-13, श्लोक-9-13

3 सारावली, अध्याय-13, श्लोक 9-13

4 वही

5 वही

6 वही

7 ज्योतिषतत्त्व प्रकाश, अध्याय-4, श्लोक 62-65

31. लग्नेश या राशि का स्वामी त्रिकोण, केन्द्र, लाभ या तृतीय में हो तो बालक के समस्त अरिष्टों एवं रोगों का विनाश करता है।[1]

32. केन्द्र में एक भी ग्रह बलवान् होकर बैठा हो तो सभी अरिष्टों का विनाश करता है।[2]

33. जिस बालक के सभी ग्रह उच्च अथवा स्वराशिस्थ हो तो अरिष्ट नाश कर दीर्घायु करता है।[3]

34. यदि 3, 6, 11 स्थानों में मंगल, शनि और राहु हों तो बालक के सब अरिष्टों का विनाश करता है।[4]

अरिष्ट भंग हो जाने पर एवं रोग ठीक हो जाने पर बालक की जन्मकुण्डली में बनने वाले अमितायु, दीर्घायु एवं मध्यमायु योग।

बालक की जन्म कुण्डली में बनने वाले अमितायु योग

अमितायु योग में उत्पन्न बालक की आयु 100 वर्ष से अधिक होती है। इसे युगान्तमायु या चिरायु कहा जाता है। इस प्रकार के कतिपय योग जातक ग्रन्थों में मिलते हैं, जो निम्नलिखित हैं -

1. यदि बालक की जन्म कुण्डली में कर्क राशि में चन्द्रमा एवं गुरु हो केन्द्र में बुध, शुक्र हों तथा शेष ग्रह (सूर्य, मंगल एवं शनि) तृतीय, षष्ठ एवं एकादश स्थान में हो तो अमितायु होती है।[5]

---

1 ज्योतिषतत्त्व प्रकाश, अध्याय-4, श्लोक 62-65

2 वही

3 वही

4 वही, श्लोक-69

5 वही, श्लोक - 96, 97, 99

2. सूर्य, मंगल एवं गुरु - ये तीनों शनि के नवांश में नवम भाव में या उसके नवांश में बलवान् हों तथा चन्द्रमा लग्न में हो तो बालक की चिरायु होती है।[1]

3. यदि बालक का जन्म-सूर्योदय के समय हो, गुरु एवं शनि एक ही नवांश में नवम या दशम में हों तथा उन पर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो तो चिरायु होती है।[2]

4. मेष का अन्तिम नवांश लग्न में हो, उसमें गुरु या शुक्र हो, वृष के मध्य नवांश में चन्द्रमा हो तथा मंगल सिंहासनांश में हो तो बालक की असंख्यायु होती है।[3]

5. कर्क लग्न हो, गुरु केन्द्र में गोपुरांश में हो तथा शुक्र त्रिकोण में पारावतांश में हो तो बालक की युगान्त आयु होती है।[4]

6. यदि जन्मकुण्डली में पूर्ण चन्द्रमा व गुरु कर्क राशि में स्थित होकर चतुर्थ, दशम या लग्न में हों एवं शनि व बुध तुला राशि में हों अन्य ग्रह तृतीय, षष्ठ, लाभ में हों तो बालक की अमित आयु होती है।[5]

बालक की जन्म कुण्डली में बनने वाले दीर्घायु योग

जिस बालक की जन्मकुण्डली में दीर्घायु योग हो उसकी आयु 71 से 100 वर्ष की होती है।

दीर्घायु के योगों में से कुछ महत्त्वपूर्ण योग इस प्रकार हैं -

---

1 ज्योतिषतत्त्व प्रकाश, अध्याय-4, श्लोक 62-65

2 जातक, पारिजात, अध्याय-4, श्लोक- 96, 97, 99

3 वही, श्लोक-102

4 वही, श्लोक-104

5 सारावली, अध्याय-12, श्लोक-14

1. जिस बालक की जन्म कुण्डली में अष्टमेश एवं लग्नेश, चन्द्रमा एवं शनि तथा लग्न एवं होरा लग्न-ये दोनों चरराशि में हो अथवा इनमें से एक स्थिर राशि में तथा दूसरी द्विस्वभाव राशि में हो तो पूर्णायु होती है।[1]
2. यदि केन्द्र में शुभ ग्रह हों, लग्नेश शुभग्रह के साथ हों तथा उसे गुरु देखता हो तो बालक की पूर्णायु होती है।[2]
3. लग्नेश केन्द्र में गुरु एवं शुक्र के साथ हो तो पूर्णायु होती है।[3]
4. जिस बालक की जन्म कुण्डली में तीन ग्रह उच्चराशि में हैं, लग्नेश एवं अष्टमेश से युक्त हों तथा अष्टम स्थान में पापग्रह न हों तो पूर्णायु होती है।[4]
5. अष्टम स्थान में 3 ग्रह हों अथवा 3 ग्रह अपनी उच्च राशि मित्र स्थान या स्ववर्ग में हो तथा लग्नेश बलवान् हो तो बालक की दीर्घायु होती है।[5]
6. उच्च राशि में स्थित किसी भी ग्रह के साथ शनि या अष्टमेश हो तो बालक की दीर्घायु होती है।[6]
7. यदि बालक की जन्म कुण्डली में पागप्रह तृतीय, षष्ठ एवम् एकादश स्थान में हों, शुभग्रह केन्द्र त्रिकोण में हो तथा लग्नेश बली हो तो पूर्णायु होती है।[7]

---

1 जैमिनि सूत्र, अध्याय-2, पाठ-1, सूत्र-1-2, 5-6

2 जातक पारिजात, अध्याय-4, श्लोक-85-89

3 वही

4 वही

5 वही

6 वही

7 वही, श्लोक 89-96

8. षष्ठ, सप्तम एवम् अष्टम में शुभग्रह हों तथा तृतीय षष्ठ एवम् एकादश स्थान में पापग्रह हों तो दीर्घायु होती है।[1]

9. यदि बालक की जन्म कुण्डली में पापग्रह षष्ठ स्थान में हों तथा लग्नेश केन्द्र में हो तो दीर्घायु होती है।[2]

10. यदि बालक की जन्म कुण्डली में अष्टम स्थान में पापग्रह हों तथा दशमेश अपनी उच्च राशि में हो तो दीर्घायु होती है।[3]

11. अष्टमेश जिस राशि में हो, उसका स्वामी जिस राशि में हो, उस राशि का स्वामी तथा लग्नेश - ये दोनों केन्द्र में हों तो बालक चिरकाल तक जीवित रहता है।[4]

12. जन्मलग्न में द्विस्वभाव राशि हो तथा लग्नेश केन्द्र, उच्च राशि या मूलत्रिकोण राशि में हो तो बालक चिरकाल तक जीवित रहता है।[5]

13. जन्म लग्न में द्विस्वभाव राशि हो तथा लगनेश से केनद्र (1,4,7 एवं 10) में दो पापग्रह हों तो बालक की दीर्घायु होती है।[6]

14. सूर्य मंगल एवं शनि ये तीनों चरनवांश में हो, गुरु एवं शुक्र ये दोनों स्थिर नवांश में हो तथा शेष ग्रह द्विस्वभाव नवांश में हों तो इस योग में उत्पन्न बालक 100 वर्ष तक जीवित रहता है।[7]

---

1 जातक पारिजात, अध्याय-4, श्लोक-89-96
2 वही
3 वही
4 वही
5 वही
6 वही
7 वही

15. यदि लग्न द्रेष्काण राशि एवं चन्द्र द्रेष्काण राशि - ये दोनों चर हों अथवा इनमें से एक स्थिर एवं दूसरी द्विस्वभाव हो तो बालक की दीर्घायु होती है।[1]

16. यदि बालक की जन्म कुण्डली में लग्नेश नवांश राशि एवं चन्द्रेश नवांश राशि-ये दोनों चर हों अथवा इनमें एक स्थिर एवं दूसरी द्विस्वभाव हो तो दीर्घायु होती है।[2]

17. लग्नेश द्वादशाांश राशि तथा अष्टमेश द्वादशांश राशि - ये दोनों चर हों अथवा इनमें से एक स्थिर तथा दूसरा द्विस्वभाव हो तो बालक की दीर्घायु होती है।[3]

18. यदि लग्नेश एवं सभी शुभ ग्रह केन्द्र में हो तो बालक की दीर्घायु होती है।[4]

19. यदि बालक की जन्म कुण्डली में अष्टमेश एवं सभी पापग्रह आपोक्लिम में हो तो दीर्घायु होती है।[5]

20. जन्मराशि एवं अष्टमेश, लग्नेश एवम् अष्टमेश तथा लग्नेश एवं सूर्य परस्पर मित्र हों तो बालक की दीर्घायु होती है।[6]

21. यदि लग्नेश अष्टमेश से अधिक बलवान् हो, लग्न नवांशेश अपने अष्टमेश से अधिक बलवान् हो तथा चन्द्रनवांशेश अपने अष्टमेश से अधिक बलवान् हो तो बालक की दीर्घायु होती है।[7]

---

1 फलदीपिका, अध्याय-13, श्लोक-14-21
2 वही
3 वही
4 वही
5 वही
6 वही, अध्याय-12, श्लोक-14-21
7 वही

22. यदि लग्नेश अति बलवान् हो, पापग्रहों से दृष्ट न हो तथा केन्द्र में बैठा हो तो बालक की दीर्घायु होती है।[1]

23. यदि बालक की जन्म कुण्डली में बुध गुरु एवं शुक्र केन्द्र या त्रिकोण में हो तो दीर्घायु होती है।[2]

24. यदि केन्द्र त्रिकोण में स्थित शुभग्रहों की लग्नेश पर दृष्टि हो तथा लग्न या लग्नेशाधिष्ठित राशि के स्वामी पर शुभग्रहों की दृष्टि हो तो दीर्घायु होती है।[3]

25. यदि बालक की जन्मकुण्डली में अष्टमेश केन्द्र में, त्रिकोण में, या स्वराशि में हो तथा लाभेश अपनी उच्च राशि में हो तो दीर्घायु होती है।[4]

26. अष्टमेश केन्द्र - त्रिकोण स्थान में अपनी उच्च राशि या नीच राशि में हो तथा लग्नेश भी इन्हीं स्थानों में अपनी उच्च आदि राशि में हो तो बालक की दीर्घायु होती है।[5]

27. यदि बालक की जन्म कुण्डली में अष्टमेश लग्न में हो तथा लग्नेश गुरु एवं शुक्र से दृष्ट-युत हो तो पूर्णायु होती है।[6]

28. यदि बालक की जन्म कुण्डली में अष्टमेश अपनी उच्च राशि में हो, शुभग्रहों से युक्त तथा दृष्ट हो अष्टम भाव का कारक बलवान् हो तो दीर्घायु होती है।[7]

---

1 फलदीपिका, अध्याय-12, श्लोक-14-21
2 उत्तरकालामृत, आयुर्दाय खण्ड, श्लोक-6-7
3 वही
4 दैवज्ञाभरण, षोडशप्रकाश, श्लोक-24-27
5 वही
6 वही
7 वही

29. यदि बालक की जन्मकुण्डली में लग्नेश अष्टमेश के साथ षष्ठ या अष्टम स्थान में हो तथा षष्ठेश या व्ययेश लग्नेश के साथ हो और उस पर शुभ ग्रह की दृष्टि हो तो दीर्घायु होती है।[1]

30. यदि बालक की जन्म कुण्डली में अष्टमेश स्वराशि में हो तो दीर्घायु होती है।[2]

31. यदि बालक की जन्मकुण्डली में लग्नेश एवं लग्नेशाधिष्ठित राशीश-ये दोनों चर राशि में हों तो दीर्घायु होती है।[3]

32. अष्टमेश एवं तृतीयेश केन्द्र त्रिकोण में हो अथवा नवम एवम् एकादश स्थान में उच्चराशि में हो तो दीर्घायु होती है।[4]

33. यदि बालक की जन्मकुण्डली में तृतीयेश एवं दशमेश केन्द्र या तृतीय स्थान में आयु कारक के साथ हों तो पूर्णायु होती है।[5]

34. यदि बालक की जन्म कुण्डली में लग्नेश, अष्टमेश एवं दशमेश, केन्द्र त्रिकोण एवं लाभस्थान में हो तो दीर्घायु होती है।[6]

35. यदि बालक की जन्मकुण्डली में शुभग्रह अपनी राशि में हो तथा अष्टमेश सप्तम या अष्टम स्थान में हो तो चिरायु होती है।[7]

---

1 दैवज्ञाभरण, षोडशप्रकाश, श्लोक-24-27

2 वही, श्लोक-27-33, 42-47

3 वही

4 वही

5 वही

6 वही, श्लोक-27-33, 423-47

7 वही

36. यदि बालक की जन्मकुण्डली में लग्नेश केन्द्र में राहु एवं शुक्र के साथ हो या उनसे दृष्ट हो तो दीर्घायु होती है।[1]

37. यदि बालक की जन्म कुण्डली में स्वोच्चराशिगत किसी भी ग्रह की सूर्य, शनि एवम् अष्टमेश पर दृष्टि हो तो दीर्घायु होती है।[2]

38. यदि बालक की जन्म कुण्डली में लग्न से षष्ठ भाव पर्यन्त सभी बलवान् शुभ ग्रह हों तो सप्तम भाव से द्वादश भाव पर्यन्त सभी बलवान् पापग्रह हों तो दीर्घायु होती है।[3]

39. यदि बालक की जन्म कुण्डली में केन्द्र में शुभग्रह अष्टम के अलावा अन्य भावों में पापग्रह तथा षष्ठ स्थान में चन्द्रमा हो तो दीर्घायु होती है।[4]

40. यदि बालक की जन्म कुण्डली में लग्नेश से केन्द्र में गुरु हो तथा तृतीय, षष्ठ, एकादश एवं द्वादश स्थान में पापग्रह हों तो दीर्घायु होती है।[5]

बालक की जन्मकुण्डली में बनने वाले मध्यमायु योग

मध्यमायु योगों में बालक की आयु 33 वर्ष से 70 वर्ष तक जीवन में रहती है।[6] मध्यमायुदायक कुछ महत्वपूर्ण योग इस प्रकार हैं -

---

1 दैवज्ञाभरण, षोडशप्रकाश, श्लोक-27-33, 423-47

2 वही

3 वही

4 जातक तत्व, अष्टमविवेक, सूत्र-48 एवं 49

5 वही

6 वही, अध्याय-4, श्लोक-84

1. यदि बालक की जन्मकुण्डली में लग्नेश निर्बल हो गुरु केन्द्र या त्रिकोण में हो तथा पापग्रह त्रिक (6, 8 एवं 12) स्थान में हो तो मध्यमायु होती है।[1]
2. लग्न के द्रेष्काण की राशि तथा चन्द्रमा के द्रेष्काण की राशि - ये दोनों द्विस्वभाव हो और इनमें से एक चर और दूसरी स्थिर हो तो बालक की मध्यमायु होती है।[2]
3. यदि बालक की जन्म कुण्डली में लग्नेश के नवांश की राशि तथा राशीश के नवांश की राशि - ये दोनो द्विस्वभाव हों या इनमें से एक चर और दूसरी स्थिर हो तो मध्यमायु होती है।[3]
4. लग्नेश के द्वादशांश की राशि तथा अष्टमेश के द्वादशांश की राशि ये दोनों द्विस्वभाव हों या इनमें से एक चर और दूसरी स्थिर हो तो मध्यमायु होती है।[4]
5. यदि बालक की जन्म कुण्डली में लग्नेश एवं सब शुभ ग्रह पणफर (2, 5, 8 एवं 11) में हो तो मध्यमायु होती है।[5]
6. यदि बालक की जन्म कुण्डली में अष्टमेश एवं सब क्रूर ग्रह पणफर में हों तो मध्यमायु होती है।[6]

---

1 जातक तत्व, अष्टमविवेक, श्लोक-84

2 फलदीपिका, अध्याय-13, श्लोक 14-15

3 वही

4 वही

5 वही

6 वही

7. यदि जन्म राशीश एवम् उससे अष्टमेश परस्पर सम हो, लग्नेश एवं सूर्य परस्पर सम हों तो बालक की मध्यमायु होती है।[1]

8. यदि बालक की जन्मकुण्डली में बुध, गुरु एवं शुक्र द्वितीय, तृतीय एवं एकादश भाव में हों तो मध्यमायु होती है।[2]

9. यदि बालक की जन्म कुण्डली में लग्नेश निर्बल हो, गुरु केन्द्र या त्रिकोण में हो तथा पापग्रह त्रिक स्थान में हो तो मध्यमायु होती है।[3]

10. यदि बालक की जन्म कुण्डली में दो शुभग्रह केन्द्र या त्रिकोण में हो तथा बलवान् शनि षष्ठ या अष्टम स्थान में हो तो मध्यमायु होती है।[4]

11. यदि बालक की जन्म कुण्डली में भाग्येश के साथ लग्नेश हो, पंचमेश पर गुरु की दृष्टि हो तथा कर्मेश उच्चराशि में केन्द्र में हो तो मध्यमायु होती है।[5]

12. यदि बालक की जन्म कुण्डली में क्रूरग्रह दशम स्थान में हों दशमेश एवं पंचमेश के साथ शनि लाभस्थान में हो, तो मध्यमायु होती है।[6]

13. यदि बालक की जन्म कुण्डली में अष्टमाधिपति केन्द्र में हो, मंगल लग्न में हो तथा गुरु तृतीय, षष्ठ एवम् एकादश स्थान में हो तो मध्यमायु होती है।[7]

---

1 फलदीपिका, अध्याय-13, श्लोक 14-15

2 उत्तरकालामृत, आयुर्दाय खण्ड, श्लोक-6

3 दैवज्ञाभरण, षोडशप्रकाश, श्लोक-20-23

4 वही

5 वही

6 वही

7 वही

14. मेष या वृश्चिक राशि में लग्न में चन्द्रमा हो वह पापग्रहों से दृष्ट हो और शुभ ग्रह केन्द्र में न हों तो बालक की मध्यमायु होती है।[1]

15. लग्न में शत्रुराशि में दो पापग्रहों के मध्य में सूर्य हो तथा उसे शुभग्रह न देखते हों तो बालक की मध्यमायु होती है।[2]

16. यदि बालक का जन्म मिथुन लग्न में हो उसमें दो पापग्रहों के मध्य में लग्नेश हो तथा गुरु चतुर्थ स्थान में हो तो मध्यमायु होती है।[3]

17. लग्नेश पापग्रहों के साथ अष्टम स्थान में हो तथा शुभग्रह केन्द्र में न हों तो बालक की मध्यमायु होती है।[4]

18. यदि बालक की जन्म कुण्डली में मंगल के साथ अष्टमेश लग्न में बैठा हो तो उसका जीवन 42 वर्ष का होता है।[5]

19. यदि बालक की जन्म कुण्डली में उच्चराशि का शनि 10वें, गुरु 7वें, तथा राहु लग्न में हो तो 44 वर्ष का जीवन होता है।[6]

20. पापग्रह के साथ लग्नेश अष्टम में, पापग्रह के ही साथ अष्टमेश षष्ठ स्थान में हो तथा इस पर शुभग्रह की दृष्टि न हो तो 45 वर्ष का जीवन होता है।[7]

---

1 सर्वार्थचिन्तामणि, अध्याय-12, श्लोक-1

2 वही

3 वही

4 वही, श्लोक 5-15

5 वही

6 वही

7 वही

21. यदि बालक की जन्म कुण्डली में मेष राशि में पूर्ण चन्द्रमा लग्न में हो तथा उसको शुभग्रह देखते हो तो बालक का जीवन 48 वर्ष का होता है।[1]

22. यदि जन्मकुण्डली में लग्न में अकेला शनि हो तथा अष्टम या द्वादश स्थान में चन्द्रमा हो तो बालक का जीवन 52 वर्ष तक रहता है।[2]

23. यदि बालक की जन्म कुण्डली में धनु राशि में लग्न में गुरु हो तथा राहु के साथ मंगल अष्टम स्थान में हो तो बालक का जीवन 57 वर्ष का होता है।[3]

24. यदि बालक की जन्म कुण्डली में अष्टमेश सप्तम स्थान में तथा पापग्रह युक्त चन्द्रमा षष्ठ या अष्टम स्थान में हो तो बालक का जीवन 58 वर्ष तक रहता है।[4]

25. अष्टमेश के साथ गुरु लग्न में हो या पापग्रहों के साथ कुम्भ राशि में केन्द्र स्थान में गुरु हो तो बालक का जीवन 30 वर्ष का होता है।[5]

26. यदि बालक के जन्मलग्न में गुरु हो, मीन राशि में सूर्य, बुध एवं शनि किसी भी भाव में हों तथा चन्द्रमा 12वें स्थान में हो तो बालक का जीवन 66 वर्ष होता है।[6]

---

1 सर्वार्थचिन्तामणि, अध्याय-12, श्लोक 5-15

2 वही

3 वही, श्लोक 16-20

4 वही

5 वही

6 वही

27. कर्क लग्न में बालक का जन्म हो लग्न में चन्द्रमा, दसवें स्थान में शनि तथा सातवें स्थान में सूर्य हो तो बालक का जीवन 65 वर्ष रहता है।[1]

28. यदि बालक की जन्म कुण्डली में चन्द्रमा के साथ सूर्य दशम स्थान में, शनि लग्न में तथा गुरु चतुर्थ भाव में हो तो बालक का जीवन 68 वर्ष तक रहता है।[2]

29. नीच राशि में शनि केन्द्र या त्रिकोण स्थान में हो तथा शुभ ग्रह केन्द्र में हो तो बालक का जीवन 70 वर्ष तक रहता है।[3]

उपचार के बाद ठीक होने वाले बाल रोग

जो बाल रोग चिकित्सा या अन्य उपाय करने पर ठीक हो जाते हैं, साध्य कहलाते हैं। यदि रोगारम्भ के साथ रोगी बालक की आयु समाप्त न होती हो तथा रोगी बालक की कुण्डली में पूर्वोक्त असाध्य रोगों का कोई योग न हो तो रोग साध्य होता है।

जातक शास्त्र के आचार्यों ने कुछ ऐसे योगों को भी बतलाया है, जिनमें उत्पन्न बालक का स्वास्थ्य प्रायः आजीवन ठीक रहता है, तथा उसे होने वाले रोग चिकित्सा आदि से ठीक हो जाते हैं। ये योग इस प्रकार हैं -

1. शुभग्रह के साथ लग्नेश लग्न में स्थित हो।[4]

---

1 सर्वार्थचिन्तामणि, अध्याय-12, श्लोक-16-20

2 वही

3 वही

4 जातकालंकार, अध्याय-2, श्लोक-2

2. शुभग्रह के साथ लग्नेश केन्द्र में स्थित हो।[1]

3. लग्नेश केन्द्र या त्रिकोण स्थान में अपनी उच्चराशि या मित्र राशि में हो।[2]

4. शुभग्रह से युत या दृष्ट लग्नेश स्वनवांश में हो।[3]

5. लग्नेश केन्द्र, त्रिकोण या उच्च राशि में हो तथा लग्न पर किसी शुभग्रह की दृष्टि हो।[4]

6. लग्नेश किसी शुभग्रह के साथ केन्द्र, त्रिकोण या अपनी उच्च राशि में हो।[5]

रोगी शिशु के जीवित एवं स्वस्थ रहने के योग

प्रश्न कुण्डली में निम्नलिखित योगों में से कोई एक योग हो तो रोगी-शिशु जीवित रहता है तथा वह शीघ्र स्वस्थ हो जाता है -

1. प्रश्न लग्न से उपचय स्थान में चन्द्रमा हो तथा केन्द्र, त्रिकोण, द्वितीय एवम् अष्टम में शुभग्रह हों।[6]

2. प्रश्न लग्न में वर्तमान नवांशेश के द्वादशांश की राशि में चन्द्रमा के जाने पर रोग ठीक हो जाता है।[7]

---

1 क. जातकालंकार, अध्याय-2, श्लोक-2
  ख. भावप्रकाश, अध्याय-3, श्लोक-2

2 वही

3 जातकतत्व प्रकीर्णतत्व, सूत्र-9

4 दैवज्ञाभरण, प्रकाश-9, श्लोक 51-52

5 वही

6 प्रश्न ज्ञान, श्लोक 27-28

7 वही

3. जब गोचरीय चन्द्रमा गुलिक की राशि का अतिक्रमण कर लेता है, तब रोगी-शिशु ठीक हो जाता है।[1]

4. केन्द्र एवं त्रिकोण में शुभ ग्रह लग्न को देखते हों तथा चन्द्रमा केन्द्र, तृतीय या लाभ स्थान में हो।[2]

5. लग्न में बुध एवं पूर्ण चन्द्रमा, केन्द्र में गुरु एवं शुक्र तथा षष्ठ एवम् एकादश स्थान में पापग्रह हों।[3]

6. लग्नेश बलवान् हो तथा शुभग्रह उच्च या मूलत्रिकोण राशि में केन्द्र में हो।[4]

7. एक भी शुभग्रह बलवान् होकर लग्न में बैठा हो तथा चन्द्रमा को देखता हो।[5]

8. शुभग्रह 3,6,9 एवं 11वें स्थान में हो।[6]

9. लग्न एवं चन्द्रमा इन दोनों पर शुभग्रहों की दृष्टि हो।[7]

10. प्रश्न कुण्डली में 1,5,7 एवं 8वें स्थान में शुभग्रह हों तथा बलवान् चन्द्रमा उपचय स्थान में हो।[8]

11. लग्नेश एवं चन्द्रमा का शुभग्रह से इत्थशाल हो।[9]

---

1 प्रश्न ज्ञान, श्लोक 27-28

2 प्रश्नाशिरोमणि, पृष्ठ-72, श्लोक-15

3 वही

4 भुवनदीपक, विज्ञानभाष्य, पृष्ठ-126

5 वही

6 वही

7 वही

8 मूक प्रश्न विचार, पृष्ठ-155

9 ताजिक नीलकण्ठी, प्रश्नतन्त्र, श्लोक-47

रोगी-शिशु कब ठीक होगा?

रोगी शिशु की मृत्यु का योग न होने पर प्रश्नकालीन तथा गोचरीय ग्रहस्थिति द्वारा रोग के ठीक होने का समय जाना जाता है। निम्नलिखित योगों द्वारा रोग के होने के समय का ज्ञान किया जाता है -

1. गोचरीय क्रम से जब लग्न, लग्नेश एवं चन्द्रमा शुभग्रहों से युत एवं दृष्ट हों तब बालक का रोग ठीक हो जाता है।[1]
2. प्रश्न लग्न में वर्तमान नवांशेश के द्वादशांश की राशि में चन्द्रमा के जाने पर बालक का रोग ठीक हो जाता है।[2]
3. जब गोचरीय चन्द्रमा गुलिक की राशि का अतिक्रमण कर लेता है तब बालक का रोग ठीक होता है।[3]
4. अष्टम राशि का चन्द्रमा द्वारा अतिक्रमण हो जाने पर बालक का रोग ठीक हो जाता है।[4]

रोग के ठीक होने पर तथा मृत्यु योग न होने पर रोगारम्भ के नक्षत्र द्वारा रोग का समाप्ति काल जाना जाता है[5] यथा -

रोगारम्भ का नक्षत्र	**समाप्तिकाल**
उत्तराषाढ़, मृगशीर्ष	1 मास
धनिष्ठा, हस्त एवं मूल	15 दिन

---

1 प्रश्नमार्ग, अध्याय-13, श्लोक 11-13 एवं 17
2 वही
3 वही
4 वही
5 वही

चित्रा, रोहिणी, भरणी एवं श्रवण	11 दिन
मघा	20 दिन
पुष्य, ज्येष्ठा, उ0भा0 एवं पू0भा0	7 दिन
मूल, अश्विनी एवं कृतिका	9 दिन

बालरोगों की उत्पत्ति का सम्भावित समय

जन्मजात एवं जीवन भर चलने वाले रोगों के प्रारम्भ काल का विचार नहीं किया जाता। इन रोगों का विचार मात्र ग्रह योगों के आधार पर किया जाता है। अन्य सभी बालरोगों के होने की सम्भावना का विचार रोगकारक ग्रह की दशा, अन्तर्दशा, प्रत्यन्तरदशा, सूक्ष्मदशा, प्राणदशा, प्रश्नकालीन ग्रहस्थिति एवं गोचरीय ग्रहस्थिति के आधार पर किया जाता है। यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि दीर्घकालीन रोग बहुधा ग्रहों की महादशा एवं अन्तर्दशा के समय में होते हैं। अल्पकालीन रोग उनकी प्रत्यन्तरदशा, सूक्ष्मदशा एवं प्राणदशाओं में होते हैं। महादशा एवम् अन्तर्दशा के दीर्घकालीन समय में रोग कब होगा? इसका निश्चय सम्बन्धित ग्रहों के गोचरीय परिभ्रमण के आधार पर करना चाहिए।

बालक के जीवन में आने वाली ग्रहों की दशा प्रश्नकालीन ग्रह स्थिति तथा गोचरीय ग्रह स्थिति, उसके जीवन में होने वाले रोगों की महत्वपूर्ण सूचना देती है। महादशा, अन्तर्दशा, प्रत्यन्तरदशा, सूक्ष्मदशा, प्राणदशा एवं प्रश्नकालीन या गोचरीय ग्रहस्थिति द्वारा जीवन में समय-समय पर होने वाले बाल रोगों की जानकारी दी जा सकती है।

दशा, अन्तर्दशा एवं प्रत्यन्तरदशा द्वारा बालरोगोत्पत्ति के सम्भावित समय का निर्धारण किया जाता है। इन दशाओं का काल स्थूल या अपेक्षाकृत लम्बा होता है। तथा बालरोगोत्पत्ति के वास्तविक क्षण की जानकारी करने के लिए सूक्ष्मदशा, प्राणदशा एवं गोचरीय ग्रहस्थिति का उपयोग किया जाता है। भारतीय ज्योतिष के अनुसार चार प्रकार से बालरोगोत्पत्ति का सम्भावित समय जाना जा सकता है -

1. योग द्वारा बाल रोगोत्पत्तिकाल का ज्ञान।
2. प्रश्नकालीन ग्रहस्थिति द्वारा रोगारम्भका का ज्ञान।
3. गोचरीय ग्रहस्थिति द्वारा रोगारम्भकाल का ज्ञान।
4. दशा के द्वारा रोगोत्पत्ति काल का ज्ञान।

1. योग द्वारा बाल रोगोत्पत्ति काल का ज्ञान

योगों द्वारा बालरोगोत्पत्ति काल का ज्ञान तो होता ही है, इनके द्वारा जीवन भर रहने वाले रोगों की भी जानकारी प्राप्त होती है। इस प्रकार के कुछ प्रमुख योग इस प्रकार हैं -

1. षष्ठ या अष्टम भाव में राहु हो तो बालक को 1 या 2 वर्ष की आयु में अग्नि-भय होता है।[1]
2. षष्ठ या अष्टम में सूर्य हो तथा उसे 12वें चन्द्रमा हो तो 5वें या 9वें वर्ष में जल से भय होता है।[2]

---

1 बृहत्पाराशर होरा शास्त्रम्, अध्याय-17, श्लोक 18-28

2 वही

3. अष्टमेश षष्ठभाव में द्वादशेश लग्न में तथा चन्द्रमा षष्ठेश के साथ हो तो 8वें वर्ष में पशु से बालक को चोट लगाते हैं।[1]

4. अष्टमभाव में शनि तथा सप्तम भाव में मंगल हो तो 10 वें वर्ष में विस्फोट आदि से चोट लगती है।[2]

5. षष्ठभाव में मंगल तथा अष्टम भाव में षष्ठेश हो तो छठे या 8वें वर्ष में ज्वर होता है।[3]

6. षष्ठ भाव में गुरु हो तथा चन्द्रमा गुरु की राशि में हो तो 19वें वर्ष में कुष्ठ रोग होता है।[4]

7. षष्ठ भाव एवं षष्ठेश पापयुक्त हो तथा शनि-राहु से युक्त-दृष्ट हो तो मनुष्य जीवन भर रोगी रहता है।[5]

8. अष्टमेश अपने नवांश में राहु के साथ अष्टम भाव में त्रिकोण में हो तो 18वें वर्ष में गठिया या प्रमेह होता है।[6]

9. लग्नेश एवं षष्ठेश दोनों षष्ठस्थान में हों तो 10वें एवं 19वें वर्ष में कुत्ते से भय होता है।[7]

---

1 बृहत्पाराशर होरा शास्त्रम्, अध्याय-17, श्लोक 18-28

2 वही

3 वही, श्लोक 13-16

4 वही

5 वही

6 वही, श्लोक 18-28

7 सर्वार्थचिन्तामणि, अध्याय-13

प्रश्नकालीन ग्रहस्थिति द्वारा रोगारम्भकाल का ज्ञान

प्रश्न शास्त्र में बालक के रोगारम्भ काल का गम्भीरतापूर्वक विचार किया गया है। बालक को रोग कब होगा? इसकी ठीक-ठीक भविष्यवाणी करने के लिए प्रश्नशास्त्र के आचार्यों ने कुछ महत्त्वपूर्ण योग बतलाये हैं, जो इस प्रकार हैं[1]-

1. प्रश्न लग्न के नक्षत्र से जितने संख्यक नक्षत्र पर प्रश्नकालीन चन्द्रमा हो, चन्द्रमा के उस नक्षत्र से उतनी संख्या वाले अग्रिम नक्षत्र में रोग की शुरूआत होती है।
2. प्रश्नकालीन स्पष्ट गुलिक (मान्दि) के नवांश या द्वादशांश के नक्षत्र में जब-जब चन्द्रमा आता है तब-तब रोग होता है।
3. स्पष्टगुलिक एवं स्पष्ट चन्द्रमा के योग नक्षत्र में जब चन्द्रमा आता है, तब रोग होता है।
4. पृच्छक के विपत् प्रत्यरि या वध नक्षत्र में चन्द्रमा के आने पर रोग होता है।
5. आरूढ़राशि से षष्ठेश जितनी संख्या आगे हो, प्रश्नकाल से उतने मास में रोग होता है।
6. आरूढ़ लग्न के नक्षत्र से षष्ठेश जितना आगे हो, प्रश्नकालीन सूर्य नक्षत्र से उतनी संख्या वाले अग्रिम नक्षत्र पर जब सूर्य आता है तब रोग होता है।
7. प्रश्नकालीन षष्ठेश के भुक्त नवांशों की संख्या को उसके काल (अयन, ऋतु, मास, पक्ष, दिन या क्षण) से गुणा कर रोगारम्भ का समय बतलाना चाहिए।

---

1 प्रश्नमार्ग, अध्याय-13, श्लोक 1-3 एवं 9

8. प्रश्नकालीन नक्षत्र से षष्ठेशाश्रित नक्षत्र जितना आगे हो, उस संख्या को षष्ठेश के अयनादिकाल से गुणाकर रोगारम्भ का समय माना जा सकता है।

रोग दिन में होगा या रात में?

प्रश्न कुण्डली में जो ग्रह रोग (षष्ठ) स्थान में स्थित हो वह दिवावली[1] हो तो दिन में, और यदि वह रात्रिबली[2] हो तो रात्रि में रोग का प्रारम्भ होता है। यदि प्रश्न कुण्डली में षष्ठ स्थान में कोई ग्रह न हो तो षष्ठेश द्वारा विचार करना चाहिए। अर्थात् यदि षष्ठेश ग्रह दिवाबली हो तो दिन में तथा वह रात्रिबली हो तो रात्रि में रोग होता है।[3]

किस प्रहर में रोग होगा?

प्रश्नकर्ता या उसका दूत जिस दिशा में बैठा हो, पूर्व आदि अनुलोम क्रम से गणना कर उस दिशा की संख्या जान लेनी चाहिए। फिर सूर्योदय से गणना कर उतने संख्यक प्रहर में रोगारम्भ बतलाना चाहिए।[4]

गोचरीय ग्रहस्थिति द्वारा रोगारम्भकाल का ज्ञान

गोचरीय क्रम से विविध राशियों में ग्रहों का परिभ्रमण भी बालक के जीवन में घटित होने वाली महत्वपूर्ण घटनाओं की जानकारी देता है। अतः ज्योतिषशास्त्र में गोचरीय ग्रहस्थिति वश रोगारम्भ काल का विचार किया जाता है। गोचरीय ग्रहस्थितिवश रोगारम्भ का निर्णय निम्नलिखित योगों के द्वारा किया जाता है -

---

1 सूर्य, गुरु एवं शुक्र दिवा बली होते हैं।
2 चन्द्रमा, मंगल एवं शनि रात्रिबली होते हैं।
3 प्रश्नमार्ग अध्याय-13, श्लोक-8
4 वही, श्लोक-6

1. जन्मकुण्डली में षष्ठेश जिस राशि में हो उस राशि में गोचरीय क्रम से जब-जब चन्द्रमा पहुँचता है, तब-तब रोग होता है।
2. लग्न, लग्नेश एवं चन्द्रमा पापग्रहों के साथ जब-जब अनिष्ट स्थान में आता है, तब-तब रोग होता है।
3. रोगकारक ग्रह जब-जब लग्न, लग्नेश एवं चन्द्रमा की युति या दृष्टि द्वारा प्रभावित होता है, तब-तब रोग होता है।

दशा के द्वारा बालरोगोत्पत्ति काल का ज्ञान

रोगेश, अष्टमेश, मारकेश, अवरोही, नीचराशिगत, शत्रुराशिगत, नीचांशगत, निर्बल, पापयुत, पापदृष्ट, अनिष्ट स्थान में क्रूरषष्ठ्यंश में स्थित आदि ग्रह बाल-रोगकारक होते हैं। जीवन में जब-जब इन ग्रहों की दशा, अन्तरदशा, प्रत्यन्तरदशा, सूक्ष्मदशा एवं प्राणदशायें आती हैं, तब-तब बच्चों को रोग होते हैं।

किस-किस ग्रह की दशा में कौन-कौन सा रोग हो सकता है? यह जानकारी ग्रहों के वक्ष्यमाण दशाफल के आधार पर कर लेनी चाहिए -

सूर्य की दशा में उत्पन्न होने वाले रोग

सामान्यतया सूर्य की दशा में ज्वर, पित्त प्रकोप एवं सिर-दर्द होता है। किन्तु वह किसी कारण से रोगकारक हो तो विविध स्थितियों में विविध रोगों को उत्पन्न करता है। विविध स्थितियों में इसकी दशा में होने वाले रोगों का विवरण इस प्रकार[1]-

---

1 सर्वार्थचिन्तामणि, अध्याय-13

विविध स्थितियाँ	उत्पन्न होने वाले रोग
अवरोही सूर्य की दशा में	अग्निपीड़ा, जलना
परमनीचस्थ सूर्य की दशा में	विपत्ति एवं मृत्यु
अधिशत्रु राशिगत सूर्य की दशा में	शारीरिक कष्ट
शत्रु राशिगत सूर्य की दशा में	अग्नि एवं चोर से भय
समराशिगत सूर्य की दशा में	लड़ाई में चोट
नीचग्रह से युक्त सूर्य की दशा में	मनोविकार
पापदृष्ट सूर्य की दशा में	कृशता या कमजोरी
नीचांशस्थ सूर्य की दशा में	ज्वर एवं प्रमेह
षष्ठस्थ सूर्य की दशा में	गुल्म, अतिसार, मूत्रकृच्छ्र
अष्टमभावस्थ सूर्य की दशा में	अग्नि भय, ज्वर एवं अतिसार
द्वादशभावस्थ सूर्य की दशा में	विषभय
द्वितीय भावस्थ सूर्य की दशा में	वाग्विकार
चतुर्थ भावस्थ सूर्य की दशा में	विष या अग्नि से भय
स्थान बलहीन सूर्य की दशा में	सन्ताप
क्रूरषष्ठ्यंशगत-सूर्य की दशा में	कोपाधिक्य, सिरदर्द
सर्पद्रेष्काण युक्त सूर्य की दशा में	विषभय

चन्द्रमा की दशा में उत्पन्न होने वाले रोग

चन्द्रमा की दशा में सामान्यतया सर्दी, जुकाम, खाँसी, मूत्राधिक्य मानसिक अस्थिरता एवं कामजन्य रोग होते हैं। जब यह किसी कारण से रोगकारक हो जाता है, तो विविध रोगों को उत्पन्न करता है। बच्चों में जिन-जिन शारीरिक एवं मानसिक रोगों के योग में चन्द्रमा का वर्णन मिलता है, वे सभी रोग इसकी दशा में होते हैं। विविध स्थितियों में इसकी दशा में उत्पन्न होने वाले रोगों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है[1]-

विविध स्थितियाँ	उत्पन्न होने वाले रोग
अवरोही चन्द्रमा की दशा में	तालाब या जलाशय में गिरना
नीचांशगत चन्द्रमा की दशा में	मानसिक विकार एवं नेत्र रोग
अधिशत्रुराशिगत चन्द्रमा की दशा में	कलह एवं द्वेष
नीच राशिगत चन्द्रमा की दशा में	अग्नि भय
क्षीण चन्द्रमा की दशा में	उन्माद
पाप युक्त चन्द्रमा दशा में	अग्निभय एवं मनोव्यथा
षष्ठभावगत चन्द्रमा की दशा में	मूत्रकृच्छ
अष्टम भावस्थ चन्द्रमा की दशा में	जलभय एवं जलोदर
क्रूरद्रेष्काण युत - चन्द्रमा की दशा में	विविध रोग

---

1 सर्वार्थचिन्तामणि, अध्याय-14

मंगल की दशा में उत्पन्न होने वाले रोग

मंगल की दशा में सामान्यतया मूत्रकृच्छ्र, देह में जड़ता, व्रण, महाव्याधि मनोव्यथा इत्यादि बिमारियां हो जाती है किन्तु यह किसी कारणवश रोगकारक बन जाता है, तो उसकी दशा में निम्नलिखित रोग उत्पन्न होते है[1]-

विविध स्थितियाँ	उत्पन्न होने वाले रोग
अवरोही मंगल की दशा में	देह में जड़ता, मानसिक व्यथा
अस्तंगत मंगल की दशा में	अग्निभय एवं मूत्रकृच्छ
षष्ठस्थ मंगल की दशा में	महाव्याधि, चर्मरोग
अतिनीचांशगत मंगल की दशा में	फोड़ा-फुसी, सर्पदंश
नीचग्रहयुत मंगल की दशा में	चर्म रोग, विषभय

बुध की दशा में उत्पन्न होने वाले रोग

बुध की दशा में सामान्यतया ज्वर, चर्मरोग एवं मानसिक अस्थिरता रहती है। किन्तु जब वह किसी कारणवश रोगकारक बन जाता है, तो इसकी दशा में अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। इसके रोगकारक बनने के कारण तथा दशाकाल में उत्पन्न वाले रोगों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है[2]-

विविध स्थितियाँ	उत्पन्न होने वाले रोग
अवरोही बुध की दशा में	मानसिक कष्ट, चोरभय

1 सर्वार्थचिन्तामणि, अध्याय-15

2 वही

शत्रुराशिस्थ बुध की दशा में	विपत्ति
समराशिगत बुध की दशा में	फोड़ा-फुन्सी
नीचराशिगत बुध की दशा में	मानसिक रोग
पापदृष्ट बुध की दशा में	कृच्छ्ररोग
तृतीय भावस्थ बुध की दशा में	जड़ता एवं गुल्म
पंचमस्थ बुध की दशा में	चिन्ता, सिरदर्द
षष्ठ या अष्टमस्थ बुध की दशा में	चर्म रोग, वमन, पाण्डु (पीलिया)
द्वादशस्थ बुध की दशा में	अंगों में विकलता, अपमृत्यु
अस्तंगत बुध की दशा में	मानसिक व्यथा, आँख व कान के रोग
षष्ठ्यंशगत बुध की दशा में	चोर, अग्नि एवं राजा से भय

गुरु की दशा में उत्पन्न होने वाले रोग

गुरु की दशा में सामान्यतया गुल्म, उदरविकार एवं स्थूलता बढ़ जाती है। किन्तु यह किसी कारण वश रोगकारक बन जाता है, तो उसकी दशा के समय में निम्नलिखित रोग उत्पन्न होते हैं[1]-

विविध स्थितियाँ	उत्पन्न होने वाले रोग
अवरोही गुरु की दशा में	स्वास्थ्य में अनेक प्रकार की गड़बड़ी
अतिनीचांशगत गुरु की दशा में	मानसिक व्यथा
नीचग्रहयुत गुरु की दशा में	गुल्म विचर्चिक

1 सर्वार्थचिन्तामणि, अध्याय-15

अस्तंगत गुरु की दशा में	अनेक रोग
षष्ठस्थ गुरु की दशा में	मेदारोग, वातरोग, उदर रोग

शुक्र की दशा में उत्पन्न होने वाले रोग

शुक्र की दशा में सामान्यतया वीर्य रोग, काम रोग एवं स्त्रीजन्य रोगों के होने की सम्भावना रहती है। किन्तु जब यह रोगकारक हो जाता है, तो विविध स्थितियों में अपनी दशा में विविध रोगों को उत्पन्न करता है।[1]-

विविध स्थितियाँ	उत्पन्न होने वाले रोग
अवरोही शुक्र की दशा में	हृदय रोग
परमनीचगत शुक्र की दशा में	मानसिक रोग
अधिशत्रुराशिगत शुक्र की दशा में	गुल्म, संग्रहणी, नेत्ररोग
समराशिगत शुक्र की दशा में	प्रमेह, गुल्म, नेत्ररोग, गुदारोग
सप्तमस्थ शुक्र की दशा में	प्रमेह, गुल्म
षष्ठस्थ शुक्र की दशा में	शस्त्र से चोट
क्रूरषष्ठ्यंशत शुक्र की दशा में	चोर एवं अग्निभय

शनि की दशा में उत्पन्न होने वाले रोग

शनि की दशा में सामान्यतया कृशता, वायुविकार एवं व्यग्रता रहती है। किन्तु जब यह किसी कारणवश रोगकारक हो जाता है, तब वह विविध परिस्थितियों में अपनी दशा में विविध रोग उत्पन्न करता है[2] यथा-

---

1 सर्वार्थचिन्तामणि, अध्याय-15

2 वही

विविध स्थितियाँ	उत्पन्न होने वाले रोग
अधिशत्रुराशिगत शनि की दशा में	चोर एवं राजा के भय
शत्रुराशिगत शनि की दशा में	कृशता
समराशिगत शनि की दशा में	क्षय, वात रोग, पित्तरोग
लग्नस्थ शनि की दशा में	कृशता, सिर-दर्द
तृतीयस्थ शनि की दशा में	मानसिक रोग
पंचमस्थ राशिगत शनि दशा में	जड़ता
षष्ठस्थ राशिगत शनि की दशा में	वातव्याधि, विषभय
सप्तमस्थ राशिगत शनि की दशा में	मूत्रकृच्छ्र
व्ययगत राशिगत शनि की दशा में	अग्नि भय
क्रूरद्रेष्काणगत राशिगत शनि की दशा में	चोर, राजा एवं अग्नि भय

राहु की दशा में उत्पन्न होने वाले रोग

राहु की दशा के समय में सामान्यतया उदर विकार, मानसिक उद्वेग तथा छोटी-मोटी बीमारियाँ चलती रहती हैं। इसकी दशा के समय में शत्रुओं के प्रपंच तथा अभिचार जन्य रोग भी बच्चों को होते हैं। जब यह किसी कारणवश रोगकारक हो जाता है, तब विविध स्थितियों में निम्नलिखित रोगों को बच्चों में उत्पन्न करता है[1]-

विविध स्थितियाँ	उत्पन्न होने वाले रोग
नीचराशिस्थ राहु की दशा में	विष भय

---

1 सर्वार्थचिन्तामणि, अध्याय-16

लग्नस्थ राहु की दशा में	विष, अग्नि एवं शस्त्र से भय
द्वितीयस्थ राहु की दशा में	मानसिक विकार
चतुर्थ राहु की दशा में	मनोव्यथा
पञ्चस्थ राहु की दशा में	बुद्धि भ्रम
षष्ठस्थ राहु की दशा में	प्रमेह, गुल्म, क्षय, पित प्रकोप एवं चर्म रोग
सप्तमस्थ राहु की दशा में	सर्पदंश
अष्टमस्थ राहु की दशा में	दुर्घटना से मृत्यु
व्ययराशिगत राहु की दशा में	मानसिक रोग
पापराशिगत राहु की दशा में	प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, क्षय एवं खाँसी
पापदृष्ट राहु की दशा में	अग्नि-भय

केतु की दशा में उत्पन्न होने वाले रोग

केतु की दशा के समय सामान्यतया, भ्रम, भय एवं मन में चंचलता रहती है। किन्तु जब किसी कारणवश यह रोगकारक बन जाता है, तब विविध परिस्थितियों में अपनी दशा में विविध रोगों को बच्चों में उत्पन्न करता है।[1]

विविध स्थितियाँ	उत्पन्न होने वाले रोग
नीचराशिस्थ केतु की दशा में	ज्वर, अतिसार, प्रमेह, विस्फोट, हैजा
द्वितीय भावगत केतु की दशा में	मानसिक व्यथा

1 सर्वार्थचिन्तामणि, अध्याय-16

तृतीय भागवत केतु की दशा में	मानसिक विकलता
पंचमभावगत केतु की दशा में	बुद्धिभ्रम
षष्ठभावगत केतु की दशा में	चोर, अग्नि एवं विष से भय
सप्तमभावगत केतु की दशा में	मूत्रकृच्छ्र, मानसिक रोग
अष्टमभावगत केतु की दशा में	श्वास, खाँसी, संग्रहणी, क्षय
दशमभावगत केतु की दशा में	मन में जड़ता आदि विकार
द्वादशभावगत केतु की दशा में	नेत्रविकार, नेत्र नाश
पापदृष्ट केतु की दशा में	ज्वर, अतिसार, प्रमेह, चर्मरोग

अन्तर्दशा द्वारा बालरोगोत्पत्ति काल का निर्णय

जातक शास्त्र के आचार्यों का मत है कि प्रत्येक ग्रह अपनी दशा में अपने सम्बन्धी या सधर्मी ग्रह की अन्तर्दशा में अपना फल देता है।[1] जो ग्रह परस्पर एक दूसरे को देखते है, एक दूसरे की राशि में होते हैं या एक साथ किसी भी राशि में होते है - आपस में सम्बन्धी कहलाते हैं तथा जो ग्रह आपस में मिलकर कोई योग बनाते हैं या एक जैसे प्रभाव का प्रतिनिधित्व करते हैं - वे सधर्मी कहलाते हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि किसी भी रोगकारक ग्रह की दशा में जब-जब उसके सम्बन्धी या सधर्मी ग्रह की अन्तर्दशा आती है, तब-तब बालक के शरीर में रोग पैदा होता है।[2]

---

1 सर्वार्थचिन्तामणि, अध्याय-16

2 लघुपाराशरी, दशाफलाध्याय

इसके अतिरिक्त निम्नलिखित ग्रहों की अन्तर्दशाओं में भी बच्चों को रोग उत्पन्न होते हैं[1] -

1. षष्ठेश की अन्तर्दशा में।
2. अष्टमेश की अन्तर्दशा में।
3. दशाधीश से षष्ठस्थ पापग्रह की अन्तर्दशा में।
4. दशाधीश से व्ययगत पापग्रह की अन्तर्दशा में।
5. दशाधीश से अष्टमस्थ पापग्रह की अन्तर्दशा में।
6. मारकेश ग्रह की अन्तर्दशा में।
7. अरिष्ट योगकारक ग्रह की अन्तर्दशा में।
8. अरिष्ट स्थान में स्थित ग्रहों की अन्तर्दशा में।
9. पापग्रहों की अन्तर्दशा में।
10. रोगकारक ग्रहों की अन्तर्दशा में।

किस ग्रह की अन्तर्दशा में कौन-सा रोग होगा?

अन्तर्दशा द्वारा बच्चों में रोगोत्पत्ति के सम्भावित समय का विचार करते हुए फलित ज्योतिष के आचार्यों ने किस ग्रह की अन्तर्दशा में कौन सा रोग होगा? इस बात का विस्तारपूर्वक विवेचन किया है। इस विवेचन के आधार पर जीवन में होने वाले विविध रोगों के सम्भावित समय का यथार्थ रूप से निर्धारण किया जा सकता है।

सूर्य आदि ग्रहों की दशा में अन्य ग्रहों की अन्तर्दशा आने पर बच्चों को उत्पन्न होने वाले रोगों का संक्षिप्त विवरण[2] इस प्रकार है -

---

1 बृहत्पाराशरहोराशास्त्र, अध्याय 52-60

2 वही, अध्याय-61

1. **सूर्य की महादशा में विभिन्न ग्रहों की अन्तर्दशा आने पर उत्पन्न होने वाले रोगों की तालिका -**

दशापति	अन्तर्दशापति	रोग
सूर्य	नीचस्थ सूर्य	नेत्र रोग
सूर्य	द्वितीयेश सूर्य	हृदय दुर्बलता
सूर्य	सप्तमेश सूर्य	अपमृत्यु
सूर्य	क्षीण या पापयुक्त चन्द्रमा	मनोव्यथा
सूर्य	षष्ठाष्टमव्ययगत चन्द्रमा	जलभय, मानसिक रोग
सूर्य	द्वितीयेश/सप्तमेश चन्द्रमा	अपमृत्यु
सूर्य	त्रिकस्थ मंगल	मानसिक रोग
सूर्य	पापदृष्टयुत मंगल	चोट
सूर्य	द्वितीयेश/ सप्तमेश मंगल	अपमृत्यु
सूर्य	राहु	सर्पदंश
सूर्य	सूर्य से अष्टमव्यय में स्थित राहु	अतिसार, गुल्म, क्षय
सूर्य	द्वितीय / सप्तम में स्थित राहु	सर्पभय
सूर्य	सूर्य से षष्ठ या अष्टम में स्थित गुरु	देहपीड़ा
सूर्य	सूर्य से अष्टम/व्यय में स्थित शनि	वातशूल
सूर्य	द्वितीयेश/ सप्तमेश शनि	अपमृत्यु
सूर्य	सूर्य से षष्ठ/अष्टम स्थित गुरु	देहपीड़ा
सूर्य	नीचस्थ बुध	मनस्ताप
सूर्य	द्वितीयेश/ सप्तमेश बुध	जड़ता, ज्वर
सूर्य	केतु	देह पीड़ा, मनोव्यथा
सूर्य	सूर्य से अष्टम/ व्यय स्थित केतु	दन्त रोग, मूत्रकृच्छ्र

सूर्य	सूर्य से षष्ठ/अष्टम/व्यय में स्थित शुक्र	मानसिक क्लेश
सूर्य	रन्ध्रेश / रिष्फेश शुक्र	अपमृत्यु

2. चन्द्रमा की महादशा में विभिन्न ग्रहों की अन्तर्दशा आने पर उत्पन्न होने वाले रोगों की तालिका -

दशापति	अन्तर्दशापति	रोग
चन्द्रमा	नीचस्थित पापयुत चन्द्रमा	देहालस्य, मनस्ताप
चन्द्रमा	द्वितीयेश/ सप्तमेश चन्द्रमा	देह में जड़ता
चन्द्रमा	अष्टम/ व्यय में स्थित पापयुत मंगल	देह कष्ट
चन्द्रमा	द्वितीयेश/ सप्तमेश मंगल	घाव, चोट, अंग भंग
चन्द्रमा	लग्न/त्रिकोण में स्थित राहु	सर्पभय, पशु से चोट
चन्द्रमा	अष्टम/व्यय में स्थित राहु	मनोव्यथा, सर्पभय
चन्द्रमा	द्वितीय/सप्तम में स्थित राहु	देहबाधा, कृशता
चन्द्रमा	षष्ठ/ अष्टम में स्थित गुरु	मानसिक तनाव
चन्द्रमा	चन्द्रमा से त्रिकस्थ गुरु	मनोव्यथा
चन्द्रमा	द्वितीयेश / सप्तमेश गुरु	अपमृत्यु
चन्द्रमा	द्वितीय एवं त्रिक स्थान में स्थित शनि	शस्त्राघात
चन्द्रमा	द्वितीयेश/ सप्तमेश शनि	देह बाधा, वातव्याधि
चन्द्रमा	चन्द्रमा से त्रिक स्थान में स्थित बुध	देह पीड़ा
चन्द्रमा	नीचराशिस्थ बुध	देह कष्ट
चन्द्रमा	द्वितीयेश / सप्तमेश बुध	ज्वर
चन्द्रमा	केतु	मनोव्यथा
चन्द्रमा	द्वितीयेश / सप्तमेश शुक्र	अपमृत्यु
चन्द्रमा	उच्चस्वराशि में स्थित सूर्य	आलस्य, ज्वर

चन्द्रमा	चन्द्रमा से अष्टम/ व्यय में स्थित सूर्य	सर्पदंश, ज्वर
चन्द्रमा	द्वितीयेश/ सप्तमेश सूर्य	विषमज्वर

3. **मंगल की महादशा में विभिन्न ग्रहों की अन्तर्दशा आने पर उत्पन्न होने वाले रोगों की तालिका -**

दशापति	अन्तर्दशापति	रोग
मंगल	अष्टम/ व्यय में स्थित मंगल	मूत्रकृच्छ्र
मंगल	पापयुत/ पापदृष्ट मंगल	व्रण
मंगल	द्वितीयेश/ सप्तमेश मंगल	देह में जड़ता, मानसिक रोग
मंगल	अष्टम/ द्वादश में स्थित राहु	सर्पदंश
मंगल	पापयुत/ प.पदृष्ट राहु	वात एवं पित्त रोग
मंगल	सप्तम में स्थित सूर्य	अपमृत्यु
मंगल	त्रिकस्थ/नीचस्थ/निर्बल गुरु	पित्तरोग, प्रेतपीड़ा
मंगल	अष्टम/व्यय में स्थित शनि	मनोव्यथा
मंगल	द्वितीयेश/ सप्तमेश शनि	मानसिक रोग
मंगल	मंगल से केन्द्र/त्रिकोण एवं एकादश में स्थित शनि	मूत्रकृच्छ
मंगल	मंगल से अष्टम/ व्ययस्थित शनि	वातव्याधि, शूल
मंगल	षष्ठ / व्यय में स्थित अस्तंगत बुध	हृदय रोग
मंगल	मंगल के साथ स्थित बुध	अनेक रोग
मंगल	मंगल से त्रिक में स्थित बुध	दस्युओं से चोट
मंगल	द्वितीयेश/सप्तमेश बुध	भयंकर रोग

मंगल	मंगल से त्रिक स्थान में स्थित केतु	दंतरोग, ज्वर, अतिसार, कुष्ठ
मंगल	मंगल से द्वितीय/सप्तम स्थित केतु	महाव्याधि
मंगल	मंगल से त्रिक स्थान में स्थित शुक्र	देह पीड़ा
मंगल	द्वितीयेश/ सप्तमेश शुक्र	दीर्घकालीन रोग
मंगल	मंगल से त्रिक स्थान में स्थित सूर्य	मानसिक रोग, ज्वर

4. राहु की महादशा में विभिन्न ग्रहों की अन्तर्दशा आने पर उत्पन्न होने वाले रोगों की तालिका -

दशापति	अन्तर्दशापति	रोग
राहु	अष्टम/ द्वादश स्थान में स्थित राहु	चोर से चोट
राहु	पापयुत/ पापदृष्ट राहु	चोट
राहु	द्वितीयेश/ सप्तमेश के साथ स्थित या सप्तम स्थान में स्थित राहु	सदैव रोग, महाकष्ट
राहु	त्रिक स्थान / नीच राशि में स्थित या अस्तंगत गुरु	हृदय रोग
राहु	राहु से 6, 8 वें स्थान में स्थित गुरु	देह पीड़ा
राहु	द्वितीयेश/ सप्तमेश गुरु	अपमृत्यु
राहु	षष्ठ/ व्यय में स्थित नीच/ शत्रुराशिस्थ शनि	राजदण्ड, मानसिक रोग
राहु	राहु से 6,8 या 12वें में स्थित पापयुत शनि	हृदय रोग, गुल्म रोग
राहु	द्वितीयेश/ सप्तमेश शनि	अपमृत्यु

राहु	त्रिकस्थान में स्थित तथा शनि से दृष्ट बुध	राजा, चोर एवं सर्प से भय
राहु	राहु से 6, 8 या 12वें में स्थित पापयुत बुध	राजा, चोर एवं सर्प से भय
राहु	द्वितीयेश/ सप्तमेश बुध	अपमृत्यु
राहु	केतु	वातज्वर
राहु	अष्टमेश के साथ स्थित केतु	जड़ता, मानसिक व्यथा
राहु	अष्टम/ व्यय में स्थित निर्बल केतु	सर्पदंश, मानसिक रोग
राहु	द्वितीय/ सप्तम में स्थित केतु	दीर्घकालीन रोग
राहु	त्रिकस्थान/ शत्रुराशि/ नीचराशि में पापयुत शुक्र	शूल
राहु	राहु से 6,8 या 12वें स्थित पापयुत बुध	मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, रुधिरातिसार
राहु	द्वितीयेश/ सप्तमेश शुक्र	अपमृत्यु
राहु	राहु से 6,8 या 12वें में स्थित निर्बल चन्द्र	घाव, चोट, फोड़ा
राहु	द्वितीयेश/ सप्तमेश चन्द्र	अपमृत्यु
राहु	राहु से 6,8 या 12वें में स्थित पापयुत मंगल	सर्पभय, व्रणभय, देहपीड़ा
राहु	द्वितीयेश/ सप्तमेश मंगल	आलस्य, कमजोरी

5. **गुरु की महादशा में विभिन्न ग्रहों की अन्तर्दशा आने पर उत्पन्न होने वाले रोगों की तालिका –**

दशापति	अन्तर्दशापति	रोग
गुरु	त्रिक स्थान में नीच नवांश में स्थित गुरु	महा दुःख, लम्बी बीमारी
गुरु	सप्तमेश गुरु	शारीरिक कष्ट
गुरु	त्रिकस्थान में नीच/ अस्तंगत शनि	मानसिक रोग, ज्वर, व्रण
गुरु	गुरु से 6,8 या 12वें में स्थित शनि	शरीर में दर्द
गुरु	द्वितीयेश / सप्तमेश शनि	अपमृत्यु
गुरु	मंगल से दृष्ट बुध	ज्वर, व्रण, दाह, नेत्ररोग
गुरु	त्रिकस्थान में पापयुक्र बुध	आकस्मिक मृत्यु
गुरु	द्वितीयेश/ सप्तमेश बुध	मृत्यु तुल्य कष्ट
गुरु	गुरु से 6,8 या 12वें में स्थित पापयुत केतु	मानसिक रोग
गुरु	द्वितीय/ सप्तम में स्थित केतु	शारीरिक कष्ट
गुरु	द्वितीयेश / सप्तमेश शुक्र	लम्बी बीमारी
गुरु	गुरु से 6,8 या 12वें में स्थित सूर्य	सिरदर्द, ज्वर
गुरु	द्वितीयेश/ सप्तमेश सूर्य	शरीर में दर्द
गुरु	द्वितीयेश/ सप्तमेश चन्द्र	देह पीड़ा
गुरु	गुरु से 6,8 या 12वें में स्थित पापयुत-दृष्ट मंगल	अनेक रोग, नेत्र रोग

गुरु	द्वितीयेश/ सप्तमेश मंगल	जड़ता
गुरु	गुरु से 6, 8 या 12वें में स्थित पापयुत राहु	व्रण, क्षुद्र रोग, मूर्च्छा
गुरु	द्वितीय/ सप्तम में स्थित राहु	देह पीड़ा

6. शनि की महादशा में विभिन्न ग्रहों की अन्तर्दशा आने पर उत्पन्न होने वाले रोगों की तालिका –

दशापति	**अन्तर्दशापति**	**रोग**
शनि	अष्टम/ व्यय में अस्तंगत/ पापयुत शनि	व्याकुलता, भय
शनि	द्वितीयेश/ सप्तमेश शनि	देह पीड़ा
शनि	शनि से अष्टम/ व्यय में स्थित केतु	शीत ज्वर, अतिसार, व्रण
शनि	द्वितीय / सप्तम में स्थित केतु	शीतला
शनि	त्रिकस्थ नीचगत/अस्तंगत शुक्र	मानसिक रोग
शनि	शनि से 6,8 या 12वें में स्थित शुक्र	नेत्र रोग, ज्वर, दंतरोग, हृदय रोग, गुप्त रोग, पेड़ से गिरना
शनि	द्वितीयेश / सप्तमेश शुक्र	महाक्लेश
शनि	शनि से 1, 8 या 12वें स्थित सूर्य	हृदय रोग, मानसिक रोग, ज्वर
शनि	द्वितीयेश/ सप्तमेश सूर्य	देह पीड़ा
शनि	क्षीण, पापयुत/ दृष्ट, नीच क्रूर राशि में स्थित चन्द्र	महाकष्ट
शनि	शनि से 8 या 12वें स्थित निर्बल चन्द्र	आलस्य

शनि	द्वितीयेश/ सप्तमेश चन्द्र	कमजोरी
शनि	अष्टम / व्यय में स्थित नीच/ अस्तंगत मंगल	व्रण, शस्त्राघात,
शनि	सप्तमेश/ अष्टमेश मंगल	अनेक कष्ट
शनि	राहु	मानसिक रोग
शनि	द्वितीय/ सप्तम में स्थित राहु	देह पीड़ा
शनि	त्रिकस्थान में नीचगत पापयुत गुरु	कुष्ठ
शनि	शनि से 6,8 या 12वें में स्थित पापयुत गुरु	मानसिक रोग
शनि	द्वितीयेश/ सप्तमेश गुरु	देहबाधा

7. बुध की महादशा में विभिन्न ग्रहों की अन्तर्दशा आने पर उत्पन्न होने वाले रोगों की तालिका -

दशापति	अन्तर्दशापति	रोग
बुध	त्रिक में स्थित नीच/ अस्तंगत पापयुत दृष्ट बुध	शूल
बुध	द्वितीयेश/ सप्तमेश बुध	वातशूल
बुध	बुध से 8 या 11वें स्थित केतु	वाहन से गिरना
बुध	द्वितीये/ सप्तम में स्थित केतु	शरीर में जड़ता, लकवा
बुध	बुध से 6,8 या 12वें स्थित बलहीन शुक्र	हृदय रोग, ज्वर, अतिसार
बुध	द्वितीयेश/ सप्तमेश शुक्र	अपमृत्यु
बुध	बुध से 1,6,12वें में स्थित पापयुत सूर्य	शस्त्राघात, सिरदर्द, मनोव्यथा

बुध	द्वितीयेश/ सप्तमेश सूर्य	अपमृत्यु
बुध	नीच या शत्रुराशिगत चन्द्रमा	देहबाधा
बुध	अष्टम / व्यय में स्थित नीचस्थ मंगल	शस्त्राघात, व्रण, ताप, ज्वर
बुध	बुध से 6,8, 12वें स्थित पापयुत मंगल	नृपाग्नि चोर भय
बुध	द्वितीयेश/ सप्तमेश मंगल	अपमृत्यु
बुध	लग्न, अष्टम या व्यय में स्थित राहु	हृदय रोग
बुध	द्वितीय/ सप्तम में स्थित राहु	अपमृत्यु
बुध	त्रिकस्थ, नीच/ अस्तंगतपापदृष्ट गुरु	चोर भय, देह पीड़ा
बुध	बुध से 6,8,12वें में स्थित निर्बल गुरु	अंगताप, व्याकुलता
बुध	द्वितीय/ सप्तम में स्थित गुरु	शरीर में दर्द
बुध	बुध से 8 या 12 में स्थित शनि	बुद्धिनाश, मानसिक रोग
बुध	द्वितीयेश/ सप्तमेश शनि	अपमृत्यु

8. केतु की महादशा में विभिन्न ग्रहों की अन्तर्दशा आने पर उत्पन्न होने वाले रोगों की तालिका -

दशापति	**अन्तर्दशापति**	**रोग**
केतु	अष्टम/ व्यय में स्थित नीच/ अस्तंगत ग्रहों से युत केतु	हृदय रोग
केतु	द्वितीयेश/ सप्तमेश से सम्बन्धित केतु	रोग भय
केतु	केतु से 6,8,12 में स्थित पापयुत सूर्य	सर्पविष या रोगभय
केतु	केतु से 8,12 में स्थित पापयुत सूर्य	मानसिक कष्ट
केतु	द्वितीयेश/ सप्तमेश सूर्य	अपमृत्यु

केतु	षष्ठ/व्यय में स्थित नीच क्षीण चन्द्रमा	मानसिक ताप, मनोव्यथा
केतु	केतु से 6,8,12 में स्थित निर्बल चन्द्रमा	व्याकुलता
केतु	अष्टमेश चन्द्रमा	अपमृत्यु
केतु	केतु से 2,8,12 में स्थित मंगल	प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र
केतु	द्वितीयेश/ सप्तमेश मंगल	ताप, ज्वर, विषभय, अपमृत्यु
केतु	अष्टम/ व्यय में स्थित पापयुत दृष्ट राहु	बहुमूत्र, शीतज्वर, प्रमेह
केतु	द्वितीय/ सप्तम में स्थित राहु	महारोग
केतु	केतु से 6,8,12 में स्थित नीचस्थ गुरु	सर्पभय, व्रण
केतु	द्वितीयेश/सप्तमेश गुरु	अपमृत्यु
केतु	शनि	मनोव्यथा
केतु	अष्टम/ व्यय में स्थित शनि	आलस्य
केतु	केतु से 6,8,12 में स्थित पापयुत शनि	देह सन्ताप, मानसिकताप
केतु	द्वितीयेश/ सप्तमेश शनि	मृत्यु तुल्य कष्ट
केतु	त्रिकस्थान में पापयुत दृष्ट बुध	मनोव्यथा
केतु	केतु से 6,8,12 में बलहीन बुध	राजदण्ड से देहपीड़ा
केतु	द्वितीयेश/ सप्तमेश बुध	अपमृत्यु

9. शुक्र की महादशा में विभिन्न ग्रहों की अन्तर्दशा आने पर उत्पन्न होने वाले रोगों की तालिका -

दशापति	**अन्तर्दशापति**	**रोग**
शुक्र	त्रिक स्थान में स्थित पापयुत दृष्ट शुक्र	चोर भय

शुक्र	द्वितीयेश / सप्तमेश शुक्र	मृत्युभय
शुक्र	षष्ठ/अष्टम में नीचराशि/ पापवर्ग में स्थित सूर्य	ताप, मानसिक रोग, नाना रोग, भय
शुक्र	सप्तमेश सूर्य	देहपीड़ा
शुक्र	शुक्र से 6,8,12 में नीच/अस्तंगत चन्द्र	मनस्ताप
शुक्र	शुक्र से 6,8,12 में मंगल	शीतज्वर
शुक्र	द्वितीयेश/ सप्तमेश मंगल	देहपीड़ा
शुक्र	उपचय स्थान में स्थित राहु	ज्वर, अजीर्ण, मनोव्यथा
शुक्र	द्वितीयस्थ/ सप्तमस्थ राहु	आलस्य
शुक्र	शुक्र से 6,8,12 में पापयुत गुरु	चोर से पीड़ा, मनोव्यथा
शुक्र	द्वितीयेश/ सप्तमेश गुरु	शारीरिक कष्ट
शुक्र	नीचस्थ शनि	शारीरिक कलेश, आलस्य
शुक्र	शुक्र से 8,12 में स्थित शनि	अनेक रोग
शुक्र	शुक्र द्वितीयेश / सप्तमेश शनि	देह पीड़ा
शुक्र	शुक्र से 6,8,12 में निर्बल पापयुत/ दृष्ट बुध	शीत वात ज्वर
शुक्र	सप्तमेश बुध	शारीरिक पीड़ा
शुक्र	शुक्र से 8,11 में पापयुत केतु	व्रण, सिरदर्द, मनोव्यथा
शुक्र	द्वितीय/ सप्तम में स्थित केतु	शरीर पीड़ा

प्रत्यन्तर दशाओं में बच्चों को होने वाले विभिन्न रोग

प्रत्येक ग्रह की अन्तर्दशा में सभी 9 ग्रहों की प्रत्यन्तर दशाएँ चलती रहती हैं। प्रत्यन्तर दशाओं में सबसे छोटी दशा सूर्य की होती है, और 5 दिन 24 घटी रहती है सबसे बड़ी दशा शुक्र की होती है और 6 मास 20 दिन रहती है। इस प्रकार प्रत्यन्तर दशा द्वारा 5 दिन से 6 मास 20 दिन तक के योग मान वाले विविध कालखण्डों में घटित होने वाली घटनाओं की जानकारी की जा सकती है।

सूर्य आदि ग्रहों की अन्तर्दशा में विभिन्न ग्रहों की प्रत्यन्तर दशा अपने उत्पन्न होने वाले रोगों का संक्षिपत विवरण इस प्रकार[1] -

अन्तर्दशाधीश	प्रत्यन्तरदशाधीश	रोग
सूर्य	सूर्य	शिरोरोग
सूर्य	चन्द्र	उद्वेग
सूर्य	मंगल	शस्त्राघात, अग्निपीड़ा
सूर्य	राहु	श्लेष्मा, शस्त्र भय
सूर्य	शनि	लम्बी बीमारी
सूर्य	केतु	मृत्युभय
चन्द्र	शनि	वात-पित्त जन्य रोग
चन्द्र	केतु	अपमृत्यु
मंगल	मंगल	रक्तस्राव, मृत्युभय
मंगल	शनि	अंगों में विकलता
मंगल	बुध	ज्वर

1 बृहत्पाराशर होराशास्त्र, अध्याय-62

मंगल	केतु	आलस्य, शस्त्राघात, सिरदर्द
मंगल	शुक्र	शस्त्रभय, अतिसार, वमन
राहु	राहु	शस्त्रघात, अनेक रोग
राहु	शनि	निरन्तर वायुविकार
राहु	केतु	बुद्धिनाश
राहु	सूर्य	ज्वर, अपमृत्यु
राहु	चन्द्र	उद्वेग, चिंता, शरीर में विकलता
राहु	मंगल	भगन्दर, रक्तपित्त
गुरु	केतु	जलभय, अपमृत्यु
गुरु	मंगल	शस्त्रभय, गुप्तरोग, मन्दाग्नि
गुरु	राहु	मृत्युभय
शनि	शनि	देह-पीड़ा
शनि	केतु	मन में चिंता, भय एवं त्रास
शनि	सूर्य	ज्वर
शनि	मंगल	वातपित्तजन्य रोग
शनि	राहु	अपमृत्यु
बुध	केतु	उदररोग, कामला, रक्तपित
बुध	सूर्य	मानसिक रोग
बुध	मंगल	शस्त्रघात
बुध	राहु	आकस्मिक रोग
बुध	शनि	वात एवं पित्तजन्य रोग

केतु	केतु	आकस्मिक दुर्घटना
केतु	शुक्र	नेत्र रोग, सिर दर्द
केतु	चन्द्र	मतिभ्रम, आमवात
केतु	मंगल	शस्त्रघात, अग्निपीड़ा
केतु	राहु	क्षुद्र रोग
केतु	बुध	बुद्धिनाश
शुक्र	सूर्य	वातज्वर, सिरदर्द
शुक्र	मंगल	रक्तपित
शुक्र	केतु	अपमृत्यु

ग्रहों की सूक्ष्मदशाओं में बच्चों को होने वाले रोग

प्रत्येक ग्रह की प्रत्यन्तर दशा में 9ग्रहों की सूक्ष्मदशाएँ चलती हैं। इन सूक्ष्मदशाओं में सबसे छोटी दशा का मान 16 घटी 12 पल तथा सबसे बड़ी दशा का मान 1 मास 3 दिन 30 घटी होता है। इस प्रकार सूक्ष्मदशा के द्वारा 16 घटी (लगभग 6 1/2 घण्टा) से लेकर 33 दिन तक के विविध काल खण्डों में घटित होने वाली घटनाओं की जानकारी की जा सकती है।

सूर्य आदि ग्रहों की प्रत्यन्तर दशा में विभिन्न ग्रहों की सूक्ष्म दशा आने पर बच्चों को उत्पन्न होने वाले रोगों का सक्षिप्त विवरण इस प्रकार हैं[1] -

प्रत्यन्तरदशाधीश	सूक्ष्मदशाधीश	रोग
सूर्य	सूर्य	मृत्युभय
सूर्य	मंगल	रक्तस्राव

---

1 बृहत्पाराशर होरा शास्त्र, अध्याय-63

सूर्य	शनि	मानसिक वेदना
चन्द्रमा	मंगल	कुक्षि रोग
चन्द्रमा	शनि	राजदण्ड, अंग-भंग
चन्द्रमा	सूर्य	निरंतर क्लेश
मंगल	मंगल	अपस्मार
मंगल	राहु	अंग में रोग, अग्नि भय
राहु	राहु	मतिभ्रम, शून्यता
राहु	गुरु	दीर्घकालीन रोग
राहु	बुध	अरुचि
राहु	मंगल	अर्श, गुल्म
गुरु	शनि	मनस्ताप
गुरु	सूर्य	वातपित्तप्रकोप, शूल
गुरु	चन्द्र	नेत्र रोग, कुक्षि रोग
गुरु	मंगल	विष प्रयोग
गुरु	राहु	साँप, बिच्छु से भय
शनि	शनि	वातपीड़ा
शनि	केतु	कुष्ठ, सर्वाङ्ग पीड़ा
शनि	सूर्य	देह पीड़ा
शनि	मंगल	वातपित्तजन्य रोग
बुध	मंगल	अग्निदाह, विषोत्पत्ति, जड़ता
बुध	राहु	अग्नि भय, सर्पभय
बुध	शनि	असाध्य रोग
केतु	मंगल	घोड़े से गिरना, गुल्म,

		शिरोरोग
केतु	सूर्य	हृदयशूल
केतु	राहु	वमन, रक्तविकार, पित्त रोग
शुक्र	मंगल	जड़ता
शुक्र	राहु	अग्नि एवं सर्पभय
शुक्र	केतु	भूख, नेत्र एवं सिर में रोग

ग्रहों की प्राणदशाओं में बच्चों को उत्पन्न होने वाले रोग

प्रत्येक ग्रह की सूक्ष्मदशा में सभी ग्रहों प्राण दशाएँ चलती रहती हैं। इन प्राण दशाओं में सबसे छोटी दशा का मान 48 पल 36 विपल अर्थात् लगभग 20 मिनिट तथा सबसे बड़ी दशा का मान 5 दिन 30 घटी होती है। इस प्रकार हम प्राणदशा द्वारा 20 मिनिट से लेकर 5 दिन तक के विविध-काल खण्डों में घटित होने वाली घटनाओं की जानकारी कर सकते हैं।

सूर्य आदि ग्रहों की सूक्ष्मदशा में विभिन्न ग्रहों की प्राणदशा आने पर बच्चों को उत्पन्न होने वाले रोगों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है -

सूक्ष्मदशाधीश	**प्राणदशाधीश**	रोग
सूर्य	सूर्य	चोर एवं अग्नि भय
सूर्य	राहु	विषभय
सूर्य	शनि	मृत्यु
चन्द्र	मंगल	क्षय, कुष्ठ, रक्तस्राव
चन्द्र	शनि	मूर्छा, आकस्मिक वेदना
चन्द्र	केतु	विषभय, उदररोग
चन्द्र	सूर्य	मनोव्यथा

मंगल	मंगल	रक्तपित
मंगल	शनि	अग्निभय
मंगल	केतु	उपर से गिरना, नेत्र रोग
मंगल	सूर्य	ज्वर, उन्माद
मंगल	चन्द्र	शीतोष्ण व्याधि (सर्दी-गर्मी)
राहु	शनि	शारीरिक कष्ट
राहु	सूर्य	अर्श
गुरु	सूर्य	वातपित्त प्रकोप, शूल
गुरु	चन्द्र	नेत्र-रोग
गुरु	राहु	सर्प एवं बिच्छू का भय
शनि	शनि	ज्वर, कुष्ठ, उदर रोग
शनि	सूर्य	नेत्र रोग, शिरोरोग
शनि	मंगल	गुल्म, अग्नि, एवं विषभय
बुध	सूर्य	दाह, ज्वर, उन्माद
बुध	मंगल	कुक्षिरोग, दन्तरोग, नेत्र रोग
केतु	केतु	वाहन से गिरना
केतु	सूर्य	चोराग्नि भय, मनोव्यथा
केतु	मंगल	पित्तप्रकोप, सन्निपात
केतु	गुरु	शस्त्रघात, व्रण, हृदय रोग
शुक्र	सूर्य	गरमी
शुक्र	मंगल	ज्वर, चेचक, फोड़ा, खुजली, गाँठ

उपसंहार

उपसंहार

ज्योतिष वैदिक साहित्य के अन्तर्गत समाकलित वेदांगों में एक महत्वपूर्ण वेदांग है। ''भारतीय ज्योतिष में बालरोग एवं बालारिष्ट'' विषय पर प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का मुख्य आधार बालक की जन्मकुण्डली के ग्रहयोग, दशा, गोचर एवं प्रश्नकुण्डली की ग्रह स्थिति है। इनके द्वारा बालक के जीवन में उत्पन्न होने वाले रोगों, उनकी साध्यता या असाध्यता, उनका प्रारम्भ एवं समाप्ति का काल और बाल-रोगों से मुक्ति के उपायों का विचार किया गया है।

यह समग्र विचार एवं विवेचन प्रमुख रूप से जातक शास्त्र पर आधारित है। कारण यह है कि फलित ज्योतिष में होरा शास्त्र एक ऐसा शास्त्र है जो बालक के जीवन में घटित होने वाली घटनाओं का समय के पैमाने से विचार कर उनके समय-बद्ध परिणाम बतलाता है। यद्यपि सामुद्रिक शास्त्र, अंकविद्या, केरली शास्त्र, रमल शास्त्र एवं नाड़ी ग्रन्थों में भी जीवन के घटना-चक्र पर पर्याप्त प्रकाश डाल गया है। किन्तु इन सब विधाओं द्वारा घटनाचक्र की समयबद्ध जानकारी के लिए उतनी सूक्ष्मता एवं निश्चिंतता से विचार नहीं किया गया है जितना कि जातक शास्त्र में है। साथ ही ये शास्त्र बालरोग विचार के कुछ प्रमुख पहलुओं जैसे - बाल-रोगों का आरम्भ एवं समाप्ति-काल, बाल रोगों का साध्यत्व-असाध्यत्व एवं बाल-रोगों की मुक्ति के उपायों की भी विस्तार से विवेचना नहीं करते।

ताजिक शास्त्र मात्र एक वर्ष में घटित होने वाली घटनाओं का विचार करना है, जबकि शकुन शास्त्र केवल तात्कालिक घटनाओं की जानकारी देता है। बालक के

जीवन में कब-कब रोग पैदा हो सकते है? और उनका परिणाम क्या होगा? इनका विचार किए बिना - शोध प्रबन्ध पूर्ण नहीं माना जा सकता। इसलिए इस शोध-प्रबन्ध का मूल आधार जातक-शास्त्र है।

प्राचीन भारत में ज्योतिषशास्त्र के मनीषी चिन्तकों ने इस शास्त्र के सुमान्य नियमों द्वारा बालक के स्वास्थ्य तथा उसमें उत्पन्न होने वाले विकारों का विचार काफी गम्भीरता से किया है। आचार्य वराहमिहिर ने अपने बृहज्जातक में अपने से पूर्ववर्ती, मय, यवन, मणित्थ, शक्ति, जीव शर्मा एवं सत्याचार्य आदि मनीषियों का नामोल्लेख करते हुए बतलाया है, कि इन विद्वानों ने बालक की आयु के यथार्थ परिज्ञान के लिए अनेक महत्वपूर्ण एवम् उपयोगी सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। यद्यपि आजकल इन आचार्यों की कोई रचना या ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। प्राचीन काल में इनके द्वारा विरचित ग्रन्थ अवश्य रहे होंगे, जिनका सम्यक परिशीलन मनन एवं चिन्तन कर वराहमिहिर ने बालक की आयु और बालक को उत्पन्न होने वाले अनेक रोगों के योगों का प्रतिपादन किया है।

वराहमिहिर के काल (सन् 505 ई.) में जातक ग्रन्थों में जन्मजात एवं जन्म के बाद उत्पन्न होने वाले बाल-रोगों का योग, दशा, एवं गोचर के आधार पर विचार होने लगा था। यद्यपि उस समय अन्धता, काणत्व, मूकता, बधिरता, पंगुता एवं जन्मजात नपुसंकता आदि जन्मजात बालरोगों और ज्वर, अतिसार, पाण्डु उदरव्याधि, कास, कुष्ठ, जलोदर, क्षय गुल्म, राजयक्ष्मा प्रमेह, उन्माद एवं अपस्मार आदि जन्म के बाद उत्पन्न होने वाले बाल-रोगों के विचार तक सीमित रहा। इतने प्राचीन काल में इन बाल-रोगों को कर्मजन्य मानकर, जिनके कार्य-कारणों का आयुर्वेद में भी स्पष्टतया

प्रतिपादन नहीं हो पाया था। इस विषय में विचार एवं विवेचन करने का प्रयास इस शोध प्रबन्ध में किया गया है।

ज्योतिष शास्त्र एक विज्ञान है - क्योंकि ज्योतिष का आधार गणित है। उदाहरणार्थ बालक की कुण्डली की गणना कर यह बतलाया जा सकता है कि जीवन के किस आयुकाल में वह रोगग्रस्त होगा? कब तक रोग रहेगा? ये सारी जानकारी ज्योतिष में गणना के माध्यम से की जाती है।

भारतीय ज्योतिष में बालरोगों को जानने के लिए अर्थात् रोग कब होगा? इसका निर्धारण करने के लिए प्रमुख ग्यारह अवयवों जैसे-वर्ष, अयन, ऋतु, मास, पक्ष, वार, तिथि, नक्षत्र योग, कर एवं लग्न की भूमिका स्वीकार की गई है। ज्योतिष के अनुसार ग्रहों को बाल रोग बनाने वाले नौ प्रमुख कारण हुआ करते है जैसे - 1. रोग भाव का स्वामित्व, 2. अष्टम एवं व्ययभाव का स्वामित्व, 3. रोग भाव में स्थिति, 4. लग्न में स्थिति या लग्नेश होना, 5. नीच राशि, शत्रु राशि में स्थिति या निर्बलता, 6. अवरोहीपन, 7. क्रूरष्ट्यंश में स्थिति, 8. पाप ग्रहों का प्रभाव, 9. अरिष्टकारकता एवं मारकता।

इसके अलावा भाव एवं राशियाँ कब-कब बाल रोग कारक बनती है इसका समग्र चिन्तन प्रथम अध्याय में किया गया है।

इस शोध प्रबन्ध का मुख्य लक्ष्य भारतीय चिकित्सा पद्धति के विकास में आयुर्वेद शास्त्र ने जहां रोगों को कर्मजन्य मानकर उनका विचार एवं विवेचन करने के लिए हाथ खड़े कर दिये - वहां से कर्मजन्य - रोगों के बारे में कर्मवाद, पुनर्जन्मवाद सत्कार्यवाद एवं कार्य-कारणवाद के सिद्धान्तों की कसौटी पर गणित, युक्ति एवम्

उत्पत्ति द्वारा ज्योतिष शास्त्र की निर्धारित प्रविधि के अनुसार जाँच एवं परखकर कर्मजन्य बाल रोगों के विचार, चिन्तन एवं निरूपण को आगे बढ़ाया जाय। ताकि इससे न केवल मानवीय ज्ञान में अभिवृद्धि हो, अपितु बालरोगी एवं चिकित्सक दोनों को इस जानकारी से बाल रोगों के शमन में दिशा मिल सके।

भारतीय ज्योतिष के प्रवर्तक ऋषियों का मत है कि ग्रह शुभाशुभ फल के सूचक है, नियामक या भाग्यविधायक नहीं। इस आधारभूत सिद्धान्त का अर्थ है, कि बालक की कुण्डली उसके जीवन की शुभ या अशुभ संभावनाओं को अभिव्यक्त करती है। उदाहरणार्थ यदि किसी कुण्डली में लग्नेश पापाक्रान्त, पापयुत, पापदृष्ट या निर्बल है अथवा लग्नेश की त्रिक भावों में स्थिति है या लग्नेश एवं षष्ठेश अथवा लग्नेश की त्रिक भावों में स्थिति है या लग्नेश एवं षष्ठेश अथवा लग्नेश एवं अष्टमेश अन्योन्याश्रित हो तो इसका यह अर्थ है कि बालक के शरीर में रोगों की प्रतिरोध क्षमता कम होगी या उसके रोगी होने की सम्भावना रहेगी। केवल एक ही स्थिति में दीर्घकालीन रोग होना अनिवार्य हो सकता है, कि उसकी आनेवाली दशाएं एवं गोचर भी रोग-सूचक हो। तब ज्योतिषशास्त्र के सिद्धान्तानुसार इसका फलितार्थ यह होगा-कि अल्पप्रतिरोध क्षमता वाला बालक आने वाले समय में प्रतिकूल वातावरण एवं अनुचित खान-पान तथा दिनचर्या के कारण रोगी बन जायेगा।

बालरोगों को जानने के लिए तीन प्रमुख उपकरण भारतीय ज्योतिश में माने गए। 1. योग, 2. दशा एवं 3. गोचर। इन तीनों तत्वों के ज्ञान के लिए ग्रह, नक्षत्र, राशि, भाव द्रेष्काण आदि का ज्ञान आवश्यक है। जैसे कौन सा ग्रह, राशि, नक्षत्र, भाव बालक के किन-किन अगों को प्रभावित करता है। उसकी प्रकृति क्या है? वह

किन-किन रोगों को पैदा कर सकता है? इन सब तथ्यों का विवेचन द्वितीय अध्याय में विस्तार से किया गया है।

आज का आधुनिकतम विज्ञान बालक कि बीमार होने के बाद ही उसकी बीमारी का पता लगा पाता है, बालक की मृत्यु होने के बाद ही मृत्यु के कारणों का पता लगाने की अव्यर्थ कोशिश करता है। स्वस्थ बालक में छिपी हुई बीमारी कब प्रकट होगी? कौन-सी बीमारी होगी? क्यों होगी? किन परिस्थितियों में किन कारणों से बालक की मृत्यु होगी? इसके पूर्वानुमान का परिमापन न तो आयुर्वेद के पास है न आधुनिक - चिकित्सा विज्ञान के पास इसका कोई उत्तर नहीं है। इसका एकमात्र उत्तर यदि कहीं है तो केवल ज्योतिष शास्त्र में है।

ज्योतिष शास्त्र की मान्यतानुसार प्रत्येक छोटा-बड़ा रोग पूर्वाजित कर्मो के फलस्वरूप पैदा होता है और जन्मकाल, प्रश्नकाल एवं गोचर में प्रतिकूल ग्रहों के द्वारा उसकी जानकारी की जा सकती है। अपने इसी अटल सिद्धान्त के अनुसार वह किसी भी बालक की जन्मकुण्डली के आधार पर वर्षों पहिले यह बतला सकता है, कि उस बालक को कब-कब और कौन-सा रोग होगा? उसका परिणाम क्या रहेगा?

इस विषय में एक अन्य महत्वपूर्ण बात यह है - कि सामान्य बालक को भी इस शास्त्र के सम्यक् ज्ञान से अनेक रोगों से बचाया जा सकता है। क्योंकि अधिकांश बालरोग सूर्य एवं चन्द्रमा आदि के प्रभाव-वश उत्पन्न होते है। जिस प्रकार चन्द्रमा अपनी गति-स्थिति एवं कलाओं के ह्रास-बृद्धि द्वारा समुद्र के जल में उथल-पुथल मचा देता है उसी प्रकार यह बालक के शरीर की रक्त-संचार प्रणाली, उसके स्नायु-मण्डल एवं मन में उथल-पुथल पैदा कर निर्बल बालक को रोगी बना देती है। इसलिए

ज्योतिष वैसे पदार्थों के सेवन पर आत्मनियन्त्रण रखकर बालकों को रोगों के प्रकोप से बचाया जा सकता है। बाल रोगों का विचार करने से पूर्व उनके भेद-उपभेदों को जानना आवश्यक है। फलित शास्त्र के आचार्यों ने बालरोगों को दो प्रकार का माना है - 1. जन्मजात एवं 2. जन्म के बाद होने वाले बाल-रोग।

जन्म से ही बालक में लूलापन, लगड़ापन, कुबड़ापन, अन्धत्व, काणत्व, मूकत्व, वधिरत्न, नपुंसकत्व, हीनांग, अधिकांग, एवं विकलांग होना जन्मजात शारीरिक रोग है। जन्म से ही जड़ता, सनक, पागलपन एवं मानसिक पिछड़ापन आदि जन्म जात मानसिक रोग है।

जन्म के बाद होने बाल-रोग भी दो प्रकार के होते हैं - 1. दृष्टनिमित्त जन्य, 2. अदृष्टनिमित्त जन्य। जिन रोगों का निमित्त (कारण) साफ-साफ दिखाई दे वे बाल रोग दृष्टनिमित्त जन्य होते है जैसे - चोट, दुर्घटना, संसर्ग, महामारी, भय, शाप, अभिचार, अग्नि विष, शस्त्र से पीड़ा, दुर्घटना, विस्फोट, युद्ध, महामारी, शत्रुता, मारण इत्यादि प्रत्यक्ष कारणों से पैदा होने वाले बाल रोग है।

अदृष्ट-निमित्त जन्य बालरोगों से तात्पर्य उन बालरोगों से है, जो जन्मान्तरों में किए गए कर्मो के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं जैसे - 1. शिरोरोग, 2. नेत्र रोग, 3. कर्ण रोग, 4. नासा रोग, 5. मुख रोग, 6. कण्ठ रोग, 7. हस्त रोग, 8. हृदय रोग, 9. उदर रोग, 10. गुप्त रोग, 11. गुदा रोग एवं 12. चरण रोग। इसके अतिरिक्त दोषजन्य रोग जैसे - पक्षाघात, शीतपित्त, क्षय, ज्वर, पाण्डु (पीलिया), सूखा, चर्म रोग एवं गण्ड इत्यादि ऐसे बालरोग है जो बालक के निश्चित अंग में न होकर शरीर में होते हैं।

बच्चों में प्राकृतिक प्रकोप के कारण भी बीमारियां हुआ करती है। जैसे -चेचक, हैजा, तपेदिक एवं कुष्ठ इत्यादि प्रमुख है। जन्मकुण्डली में योगों के माध्यम से इसका ज्ञान किया जाता है। बाल रोगों के इन सब भेदों का विशद वर्ण तृतीय अध्याय में दिया गया है।

जातक ग्रन्थों में ऐसे योगों का भी वर्णन मिलता है जो बालारिष्ट योग बनाते है। ये योग बच्चों की मृत्यु के सूचक होते है। परन्तु यादि अरिष्ट भंङ्ग हो जाए तो बच्चों का जीवन सुरक्षित हो जाता है - अर्थात् रोग चिकित्सा द्वारा ठीक हो जाते हैं। बालक मध्यमायु, दीर्घायु अथवा अमितायु प्राप्त कर सकता है।

बालक के जीवन में आने वाली ग्रहों की दशा, प्रश्नकालीन ग्रह स्थित तथा गोचरीय ग्रह स्थिति उसके जीवन में होने वाले रोगों की महत्वपूर्ण सूचना देती है। महादशा, अन्तर्दशा, प्रत्यन्तरदशा, सूक्ष्मदशा, प्राणदशा एवं प्रश्नकालीन या गोचरीय ग्रह स्थिति द्वारा जीवन में समय-समय पर होने वाले बालरोगों की जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

यदि हमें बालरोग एवं बाल-अरिष्ट की पूर्व सूचना मिल जाए तो इस कष्टानुभूति से बच्चों को राहत मिल सकती है। आयुष्य की दीर्घता भी बढ़ सकती है। इसका सम्पूर्ण विवेचन चतुर्थ अध्याय में किया गया है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध ''भारतीय ज्योतिष में बालरोग एवं बालारिष्ट'' अपने आप में एक गूढ़, जटिल एवं शास्त्रीय मर्मो से परिपूर्ण है। अतः इसके गूढ़तत्वों को सरल एवं सुबोध शैली के माध्यम से जन-जन तक पहुँचाने का एक लघु प्रयास इस शोध में किया गया है।

आशा है ज्योतिष शास्त्र के जिज्ञासु तथा विज्ञजन इसका अध्ययन, मनन एवं चिन्तन कर तत्वबोध की दिशा में समवेत रूप से आगे बढ़ने का सफल प्रयास करेंगे।

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

सहायक ग्रन्थों की सूची

संस्कृत ग्रन्थ	सम्पादक/ लेखक	प्रकाशक/ प्रकाशन
अथ बृहदवकहडाचक्रम	पं0 काशीनाथ शर्मा	वाराणसी : आदित्य प्रकाशन, संस्करण द्वितीय, सं0 2039
उत्तरकालामृत	कालीदास	दिल्ली : गोयल एण्ड कम्पनी, 1976
कर्मविपाक संहिता	पं0 श्याम सुन्दर लाल	मुम्बई : खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, 1995
कुण्डली दर्पण	श्री अनुप मिश्र	सं0 बापू श्रीकैलाश नाथ भार्गव काशी : संस्करण-प्रथम 2006
केशवी जातक	देवज्ञ केशवाचार्य	मुम्बई : गंगा विष्णु श्रीकृष्णदास प्रकाशन, 1990
गदावली	चक्रधर जोशी	देव प्रयाग : श्रीलक्ष्मीधर विद्यामन्दिर, संस्करण-प्रथम 1958
गणकतरंगिणी	सुधाकरद्विवेदी	काशी : गवर्नमेन्ट संस्कृत कालेज
गोलाध्याय	भास्कराचार्य	वाराणसी : मोतीलाल बनारसी दास संस्करण-प्रथम, 1988
ग्रहलाघव	गणेश दैवज्ञ	मुम्बई : खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, सम्वत्-2008
चमत्कार चिन्तामणि	श्रीभट्टनारायण	वाराणसी : मोतीलाल बनारसीदास, संस्करण प्रथम, 1975

चरक संहिता भाग-1	आचार्य चरक	वाराणसी : चौखम्बा संस्कृत, सस्थान, 1970
चरक संहिता भाग-2	तदेव	
जातक चन्द्रिका	प्रो0सूर्यनारायण राव	बंगलोर : एस्ट्रोलॉजिकल ऑफिस
जातक चन्द्रिका	जयदेव कवि	दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास संसकरण-प्रथम, 1971
जातक तत्व	पं0 महादेव शर्मा	मुम्बई : खेमराज श्रीकृष्ण दास प्रकाशन, 1977
जातकाभरण		वाराणसी : चौखम्बा संस्कृत सीरिज, प्रकाशन, 1951
जातकालंकार	गणेश दैवज्ञ	वाराणसी : चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, संस्करण-प्रथम, 1997
जातक पारिजात	दैवज्ञ वैद्यनाथ	दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास संस्करण-प्रथम, 1981
जैमिनी सूत्र	काँशीराम	मुम्बई : गंगा विष्णु श्रीकृष्णदास प्रकाशन सम्वत्-2015
ज्योतिष शास्त्र में रोग विचार	डॉ0 शुकदेव चतुर्वेदी	दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास संस्करण प्रथम-1984
ज्योतिष कल्पद्रुम	श्री शम्भुसिंह	मुम्बई : खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, 1994

ज्योतिष तत्व प्रकाश	पं0 लक्ष्मी कान्त कन्याल	लखनऊ : मोतीलाल बनारसीदास, संस्करण-प्रथम-1931
ज्योतिष तत्व	पं0 पन्नालाल ज्योतिषी	जालंधर : जालंधर बुक डिपो, रजि0 अड्डा होशियारपुर, सम्वत-2058
ज्योतिषरहस्य	जगजीवन दास गुप्त	वाराणसी : मोतीलाल बनारसीदास, संस्करण - द्वितीय, 1985
ज्योतिष सर्वसंग्रह	डॉ0 शंकर लाल चतुर्वेदी	मथुरा : नवल प्रकाशन, कोतवाली रोड, 1984
ज्योतिषसर्वसंग्रह	पं0 राम स्वरूप शर्मा	मेरठ : पुस्तक भण्डार संस्करण - द्वितीय, 1991
ताजिक नीलकण्ठी	नीलकण्ठ दैवज्ञ	वाराणसी : चौखम्भा संस्कृत सीरिज, प्रकाशन संस्करण, प्रथम-1950
दैवज्ञकल्पद्रुम	पं0 गंगाराम मुखोपाध्याय	लखनऊ : मोतीलाल बनारसीदास, संस्करण प्रथम ' 1970
दैवज्ञवल्लभा	आचार्यमिहिर	दिल्ली : रंजन पब्लिकेशन्स अंसारी रोड, दरियागजं, 1997
दैवज्ञाभरण		मद्रास : गवर्नमेण्ट ओरियन्टल मेन्युस्क्रिप्ट लाइब्रेरी, 1954
प्रश्नचण्डेश्वर	रामकृष्ण	बम्बई : गंगा विष्णु श्रीकृष्णदास, सम्वत-2012
प्रश्नज्ञान	डॉ0 शुकदेव चतुर्वेदी	दिल्ली : रंजन पब्लिकेशन्स अंसारी रोड, दरियागंज -1995

प्रश्नज्ञान प्रदीप	शम्भुसिंह	बम्बई : गंगा विष्णु, श्रीकृष्णदास संस्करण-प्रथम-1954
प्रश्न भैरव		वाराणसी : आदित्य प्रकाशन, संस्करण तृतीय, सम्वत-2041
प्रश्न मार्ग भाग 1	डॉ0 शुकदेव चतुर्वेदी	दिल्ली : रंजन पब्लिकेशन्स अंसारी रोड, दरियागंज
प्रश्न मार्ग भाग 2	तदेव	तदेव
प्रश्न मार्ग भाग 3	तदेव	तदेव
प्रश्न शिरोमणि	रूद्रमणि	बम्बई : खेमराज श्रीकृष्णदास संस्करण प्रथम - 1962
फलदीपिका	मन्त्रेश्वर	दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास संस्करण द्वितीय - 1975
फलित मार्तण्ड	मुकुन्द वल्लभ मिश्र	दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास, संस्करण-प्रथम, 1968
बृहद्दैवज्ञरंजनम्	रामदीन दैवज्ञ	वाराणसी : मोतीलाल बनारसीदास संस्करण-प्रथम, 1985
बृहज्जातकम्	वराहमिहिर	सं0 जयकृष्ण दास, वाराणसी : चौखम्बा विद्याभवन, सम्वत-2002
बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्	श्री गणेशदत्त पाठक	वाराणसी : ठाकुर प्रसाद एण्ड सन्स, संस्करण-प्रथम, 1972

बृहज्योतिषसार	आचार्य रूपनारायण शर्मा	वाराणसी : श्री ठाकुर प्रसाद पुस्तक भण्डार, 2005
बृहत्संहिता	वराहमिहिर	सं0पं0 अच्युतानन्द झा, वाराणसी : चौखम्बा विद्याभवन, पुनर्मुदित संस्करण, 2000
वृहत्संहिता	वरामिहिर	वाराणसी भट्टोत्पल टीका, सम्पूर्णानन्द संस्कृत वि0वि0 1976
वृहद्यवन जातक	यवनाचार्य	बम्बई : गंगा विष्णु, श्रीकृष्णदास संस्करण-तृतीय, 1953
भारतीय ज्योतिष	डॉ0 नेमिचन्द्र शास्त्री	वाराणसी : भारतीय ज्ञानपीठ संस्करण-प्रथम, 1978
भारतीय ज्योतिष	शं0बा0दीक्षित	लखनऊ : हिन्दी समिति संस्करण-प्रथम 1989
भावकुतूहल	आचार्यजीवनाथ	मुम्बई : खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, 1993
भावार्थ रत्नाकर	आचार्य रामानुज	दिल्ली : रंजन पब्लिकेशन्स
भाव प्रकाश	आचार्य जीवनाथ	वाराणसी : ठाकुर प्रसाद एण्ड सन्स संस्करण - प्रथम, शक् - 1986
भुवन दीपक	स0 शुकदेव चतुर्वेदी	दिल्ली : रंजन पब्लिकेशन्स
भैरव पद्मवती कल्प	डॉ0 शुकदेव चतुर्वेदी	दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास

मन्त्र महोदधि	डॉ0 शुकदेव चतुर्वेदी	वाराणसी : प्राच्य प्रकाशन संस्करण-प्रथम, 1980
माधव निदान	माधव	वाराणसी : चौखम्बा संस्कृत सीरिज
मानसागरी पद्धति	रूपनारायण झा	वाराणसी : चौखम्बा संस्कृत सीरिज प्रकाशन-2000
मुहूर्त चिन्तामणि	दैवज्ञा श्रीरामाचार्य	सं0 केदारदत्त जोशी, वाराणसी : मोतीलाल बनारसीदास संस्करण प्रथम, 1969
मुहूर्त मार्तण्ड		वाराणसी : चौखम्बा संस्कृत सीरिज
मूकप्रश्न विचार	डॉ0 शुकदेव चतुर्वेदी	दिल्ली : रंजन पब्लिकेशन संस्करण-प्रथम, 1977
लग्नचन्द्र प्रकाश	चन्द्र दत्त प्रकाश	वाराणसी : मोतीलाल बनारसीदास संस्करण-प्रथम, 1969
लघुपाराशरी	पाराशर	सं0 मेजर एस0जी0 खोत, वाराणसी : मोतीलाल बनारसी दास, संस्करण-प्रथम, 1976
लघुजातक		वाराणसी : गंगा पुस्तकालय संस्करण प्रथम, 1948
लीलावती	भास्कराचार्य	मुम्बई : खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, 2000
वसंन्तराज शाकुन	श्रीकेशवार्क दैवज्ञ	मुम्बई : खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, 1987

विवाहवृन्दावन	श्री केशवार्क दैवज्ञ	मुम्बई : गंगा विष्णु श्रीकृष्णदास प्रकाशन, संवत्-1964
वीरसिंहावलोक		बम्बई : गंगा विष्णु श्रीकृष्णदास प्रकाशन संवत्-1981
षट्पंचाशिका	पृथुयशा	दिल्ली : रंजन पब्लिकेशन्स प्रकाशन संवत - 2000
संस्कृत निधि	पं0 रामदत्त	मुम्बई : गंगा विष्णु श्रीकृष्णदास प्रकाशन, संवत्-1989
सत्याजातकम		दिल्ली : रंजन पब्लिकेशन्स प्रकाशन सम्वत, 1979
सर्वार्थ चिन्तामणि	पं0 महीधर शर्मा	दिल्ली : पब्लिकेशन्स प्रकाशन संम्वत, 2003
सारावली	श्रीमत्कल्याण वर्म	सं0डॉ0 मुरलीधर चतुर्वेदी वाराणसी : मोतीलाल बनारसी दास, संस्करण-प्रथम-1977
सिद्धान्तशिरोमणि		वाराणसी : महामण्डल शास्त्र प्रकाशन समिति-1913
सुश्रुत संहिता	सुश्रुत	वाराणसी : चौखम्बा संस्कृत सीरिज प्रकाशन : 1913
सूर्य सिद्धान्त	पं0 वलदेव प्रसाद	मुम्बई : गंगा विष्णु श्रीकृष्णदास प्रकाशन संस्करण-प्रथम, 2012
शम्भुहोरा प्रकाश	पं0 महीधर शर्मा	मुम्बई : गंगा विष्णु श्रीकृष्णदास

प्रकाशन संस्करण-प्रथम, 1988

आलोचनात्मक ग्रन्थ (संस्कृत)

ओझा, गोपेश कुमार	सुगम ज्योतिष प्रवेशिका	वाराणसी : मोतीलाल बनारसीदास संस्करण - प्रथम, 1975
ओझा मीठा लाल हिमंत राम	भारतीय कुण्डली विज्ञान	सं0 वसन्त ओझा वाराणसी : देवर्षि प्रकाशन, 2001
ठाकुर, बी0एसल सचित्र	ज्योतिष शिक्षा	वाराणसी : मोतीलाल बनारसीदास संस्करण-प्रथम, 1976

कोश ग्रन्थ

आप्टे, वामन शिवराम	संस्कृत हिन्दी कोश	दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास, संस्करण - प्रथम, 1966
हीरा राजवंश सहाय	भारतीय साहित्य शास्त्र कोश	पटना : हिन्दी ग्रन्थ अकादमी संस्करण - प्रथम, 1973
सिंह अमर	अमरकोश	विश्वनाथ झा दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास, संस्करण प्रथम, 1969

पारिभाषिक शब्दावली

पारिभाषिक शब्दावली

(Technical Terms of Medical Astrology)

अन्तर्दृष्टि	-	Intuition	नाड़ी रोग	-	Tubular Disease
अवेक्षण	-	Observation	नियामक	-	Determining Factor
अनुभूति	-	Perception	दर्शनशास्त्र	-	Philosohy
अन्तर्दृष्टि अभिज्ञान	-	Intuitive Cognition	प्राणी	-	Creature
अन्तर्वस्तु	-	Contents	दूरवीक्षक	-	Telescope
अनासक्त	-	Neutrul	पदार्थ	-	Substance
आवेग	-	Excitement	परमाणु	-	Nuclear
असामान्य	-	Abnormal	परमाणु केन्द्र	-	Nuclear Centre
अवरोध	-	Obstruction	पंचमहाभूत	-	Five Elements
अन्तराक्षेप	-	Interuption	प्रविधि	-	Technique
अपराधवृत्ति	-	Criminiality	प्रतिक्रिया	-	REaction
अंग	-	Part of Body	प्रकृति	-	Nature
आन्तरिक संरचना	-	Internal System	बन्धुता नियम	-	Law of Affinity
ऊतक	-	Tissues	ब्रह्माण्ड रश्मि	-	Cosmique Rays
उद्वेग	-	Perplexity	ब्रह्माण्ड	-	Universe
एकैकक्रम	-	Onebyone	वौद्धिक	-	Intellectual
कोशिका	-	Cells	भूकम्प	-	Earth Quake

क्रियाशीलता	-	Activity	मानसिक	-	Mental
खमध्य	-	Zenith, Meridian	मापदण्ड	-	Measurement
खिचांव	-	Extraction	यान्त्रिक उपकरण	-	Appratus
जीवनशक्ति	-	Vigour	रक्त संचार प्राणाली	-	Blood Circulation System
नियम	-	Law	रसायनिक बनावट	-	Chemical Construction
निम्ब बिन्दु	-	Low Point	अग्निदाह	-	Burning
लवण	-	Salt	अजीर्ण	-	Indigestion Dyspepsia
विद्युतकण	-	Electrons	अंधापन	-	Blindness
विद्युत	-	Electric	आमाशय	-	Stomack
वायुदाब	-	Boromatric Pressure	अनिद्रा	-	Insomania
वैद्य	-	Valid	आत्महत्या	-	Suicide
शारीरिक	-	Physical	अपराध	-	Crime
क्षमता	-	Capability	अंगभंग	-	Dislocation of Body Parts
सौरजगत	-	Solar System	अपचन	-	Indigestion
सिद्धान्त	-	Principle	आगन्तुक	-	Stranger
समाहार	-	Mixing	आकस्मिक	-	Contingency
संक्षेम	-	Disturbance	अश्मरी	-	Calculus
सूक्ष्म मापक	-	Microsope	आमवात	-	Rheunatioid Arthiritis

संवेग	-	Sentiments	आधा सीसी	-	Migrain
अर्श	-	Haemorrhoids, Piles	उदर	-	Abdomen
अस्थि विकार	-	Diseases of Bones	उत्तेजना	-	Exitement
अस्थि रोग	-	Diseases of Bones	उष्णवात	-	Ganorema (Urethritis Chronic)
अस्थि भंग	-	Bone Fracture	उन्माद	-	Psychosis - Mania
अस्थिरता	-	Unstability	उत्साह	-	Anxiety
असन्तोष	-	Frustration	उपदंश	-	Syphillis
असाध्य रोग	-	Incurable Disease	उदरशूल	-	Pain Abdomen
आत्मनियन्त्रण	-	Self Control	कपाल	-	Skull
अपस्मार	-	Epilepsy	कान	-	Ear
अविश्वास	-	Lack of Confidence	केश	-	Hairs
अगला मस्तिष्क	-	Conscious Mind	कफ	-	Cough
अतिसार	-	Diarrhoea	कपोल	-	Cheek
अंग सन्धि	-	Body Joints	क्रियाशक्ति	-	Power of Action
कर्ण रोग	-	Diseases of Ear	खाज	-	Itch, Eczema
कामला	-	Jaundice	खुजली	-	Itching
कुष्ठ	-	Leprosy	गर्भाशय	-	Uterus
कमजोरी	-	Weakness	गुर्दे के रोग	-	Kidney Diseases

कुक्षिशूल	- Appendicular Ache	गुप्त रोग	- Venereal Diseases
कैन्सर	- Cancer	गूंगापन	- Aphonia
कृमि	- Parasites - Worms	गंजापन	- Baldness
कुण्ठा	- Complex	गैस	- Gastic
रक्त कुष्ठा	- Blookd Leprosy	गठिया	- Arthirities
श्वेत कुष्ठ	- Lucoderma	गुल्म	- Abdominal Swellings
नीलकुष्ठ	- Blue-Patch Leprosy	गलगण्ड	- Goitre
गलित कुष्ठ	- Xeroderma	गण्डमाला	- Lymphadenopathy
कानापन	- One-Eyed	गर्भस्त्राव	- Abortion
कण्ठ रोग	- Throat Disease	गर्भपात	- Miscarriage
कान दर्द	- Ear Ache	घुटने	- Knee
कम सुनाई देना	- Low Pitch	घबड़ाहट	- Confusion
कुक्षि रोग	- Disease of Appendicular	घाव	- Ulcer/Wound
क्रोध	- Anger	चर्म रोग	- Skins Diseases
कफ रोग	- Cough Disease	चर्बी	- Fats
खसरा	- Measles	चोट	- Wound
खांसी	- Cough	चिबुक	- Chin
चैतन्यता	- Consciousness	जड़ता	- Insensibility

चेचक	- Small Pox	तिल्ली	- Seasamum
छाले	- Blisters	ताजगी	- Freshness
छर्दि	- Vomitting	तनाव	- Tension
छूत की बीमारी	- Communicable Disease	तुतलाहट	- Dysarthria
जननेन्द्रिय	- Reproductive Organ	तपेदिक	- Tuberculosis
जिव्हा	- Tongue	तालु रोग	- Disease of Palate
ज्वर	- Fever	तृष्णा	- Thirst due to Toxaemia
जलोदर	- Dropsy-Ascites	त्रिदोष	- Vaata-Pitta-Cough
जिगर	- Liver	तन्द्रा	- Stuper
जोड़ा का दर्द	- Joint Pain	दमा	- Asthama
जटिल रोग	- Chronic Disease	दाह	- Toxaemia
जन्मजात	- Hareditory	दन्त रोग	- Diseases of Gums & Teeth
जन्मान्धता	- Blindness by Birth	दाद का दर्द	- Pain in Jaw
जन्मजात मूकता	- Dumbness by Birth	दुर्घटना	- Accident
जन्मजात बधिरता	- Deafness by Birth	दाद	- Ringworm
धैर्य	- Patience	पागलपन	- Insanity
धातुक्ष्य	- Semenloss	पक्षाघात	- Paralysis
धृति	- Patience	प्रमाद	- Error

नासा रोग	- Diseases of Nasal Cavity	प्राणशक्ति	- Life Strength
निराशा	- Dipression	फेफड़ा	- Lung
नपुंसकता	- Importency	फुफ्फस	- Lung-Pleura
नेत्र रोग	- Diseases of Eye	फुर्ती	- Haste, Hurry
निद्राटन	- Sleeping Walk	फोड़ा	- Boil
निमोनिया	- Pneomonia	फुन्सी	- Pimple
पित्त रोग	- Bile Diseases	बधिरता	- Deafness
प्रदर	- Leucorrhoea	बन्ध्यापन	- Barren
पैर	- Foot	वस्ति	- Urinary System Bladder
पीलिया	- Jaundice	बाल रोग	- Children Diseases
पाण्डु	- Anaemia	बुद्धिहीनता	- Unwise
प्रमेह	- Urinary Disorder	बुद्धि	- Mind
पंगु	- Paraplegia	भगन्दर	- Fistula
पाचन क्रिया	- Digestive System	भ्रम	- Vertigo
प्रलाप	- Dilirium	भय	- Fear
प्लीहा	- Spleen	भ्रान्ति	- Confusion
भीरूता	- Cowardise	यकृत	- Liver
भेंगापन	- Squint-Eyed	रक्त संचार प्रणाली	- Blood Circulation System
भुक्ति विरोध	- Fast-Hunger	रक्त स्त्राव	- Bleeding

मेदा	-	Stomach	रक्त धमनी	-	Blood Artery
मन	-	Mind	रतिज	-	Venereal
मस्तिष्क	-	Brain	रतौंधी	-	Night Blindness - Menorrhagia
मूत्राशय	-	Viseera-Bladder	रक्त पित्त	-	Blood-Bile, Hemorrhagic Diseases
मज्जा	-	Bone-Marrow	रति रोग	-	Venereal Disease
मज्जा तन्तु	-	Marrow Fibre	लूलापन	-	Maimed
मूर्च्छा	-	Syncope-Fainting	लंगड़ापन	-	Lamb
मिरगी	-	Epilepsy	वाणी	-	Speech
मूत्र विकार	-	Urine Disease	व्रण	-	Ulcer
मुख रोग	-	Disease of Mouth	वीर्य	-	Semen
मानसिक रोग	-	Psycological Disorder	वात	-	Air
महामारी	-	Pestilence Epidemic	वेदना	-	Pain
मधुमेह	-	Diabtics	वीर्य विकार	-	Seman Disorder
मेदो रोग	-	Dyspsia	विषजन्य रोग	-	Toxication, Poisonous Disease
मतिभ्रम	-	Obesity	वायु विकार	-	Air-Disease
मानसिक पिछड़ापन	-	Behaviour Disorder	वात व्याधि	-	Nervouse Disease
मूत्र-कच्छ	-	Mental Backwardness	वक्ष रोग	-	Breat Disease

वमन	- Vomitting	विद्रधि	- Abscess
विकलांगता	- Amputaled	विसर्प	- Arysipeles
वृषणवृद्धि	- Orchitis	वाकदोष	- Defects of Speech
वन्ध्यात्व	- Primary Sterility	विषाणुजन्य	- Viral
वहम	- Negative Approach	श्वास	- Dysppoea
विस्फोट	- Impetigo	शोफ	- Non Inflammatory Swelling
विषरोग	- Poisoning Disease	क्षय	- Tuberculoses
श्लेष्मा	- Mucus	क्षुद्र रोग	- Miscellaneous Disease
श्लीपद	- Filariasis - Elephantiasis	स्नायुमण्डलं	- Nerve System
शीतपित्त	- Urticaria	स्तन	- Breast
श्वासनली	- Respiratory Vessel	स्वरभेद	- Hoarseness
शिरोरोग	- Sinusities	सिर दर्द	- Head Ache
शुक्राणु	- Sperms	स्त्रिसंसर्गजन्य रोग	- Veneral Diseases
शल्यक्रिया	- Surgery	सूजन	- Swelling
शूल	- Ache-Colic	स्वर	- Voice
शीघ्रपतन	- Seminal Disorder	संवेगशक्ति	- Telepathy
शिथिलता	- Relaxation	सर्पदशं	- Snake Bite
शूक	- Affection of Penis	संग्रहणी	- Sprue

स्नायुरोग - Bervous Disease

सन्निपात - Delirium

सन्धिवात - Arthirities

स्त्रीरोग - Gyne Cological Disease

सन्धि शूल - Arthirities / Joint Pains

सूखा - Sapless

स्थौल्य - Obesity

स्मृति - Memory

साहस - Courage

सनक - Psychonerosis

साध्य रोग - Curable Diseases

समय साध्य - Timely Currable

सुख साध्य - Easily Curable

सुख साध्य - Easily Curable

हाथ - Hand

हृदय रोग - Heart Disease

हिम्मत - Courage

हकलाहट - Stammer

हैजा - Cholera

हिक्का - Hiccough